Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

जून १९७५

समांतर कहानी विशेषांक-९

आम आदमी के आसपास: आज की कहानियां

नवलेखन अंक: खंड एक

17/6/75
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

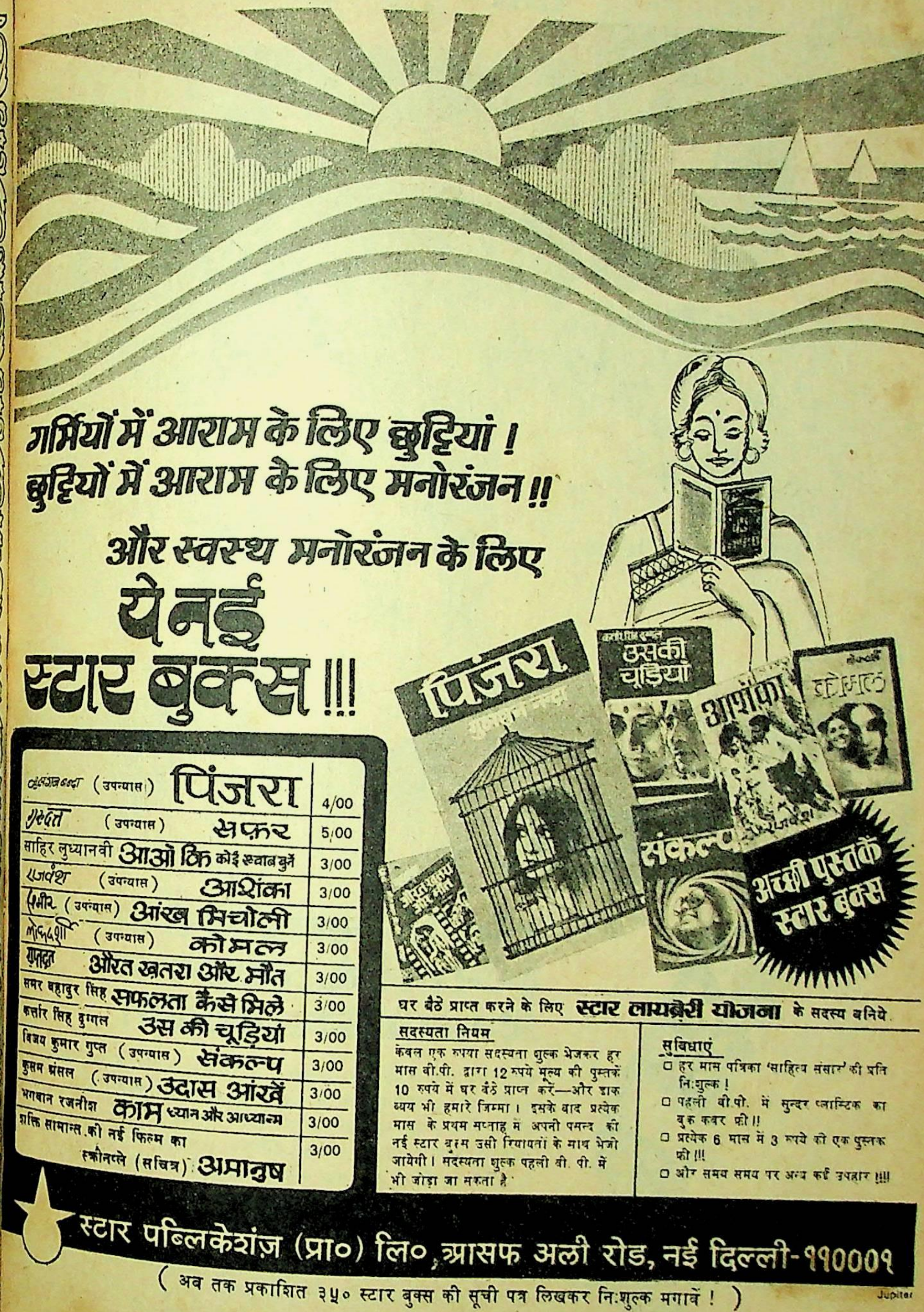

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

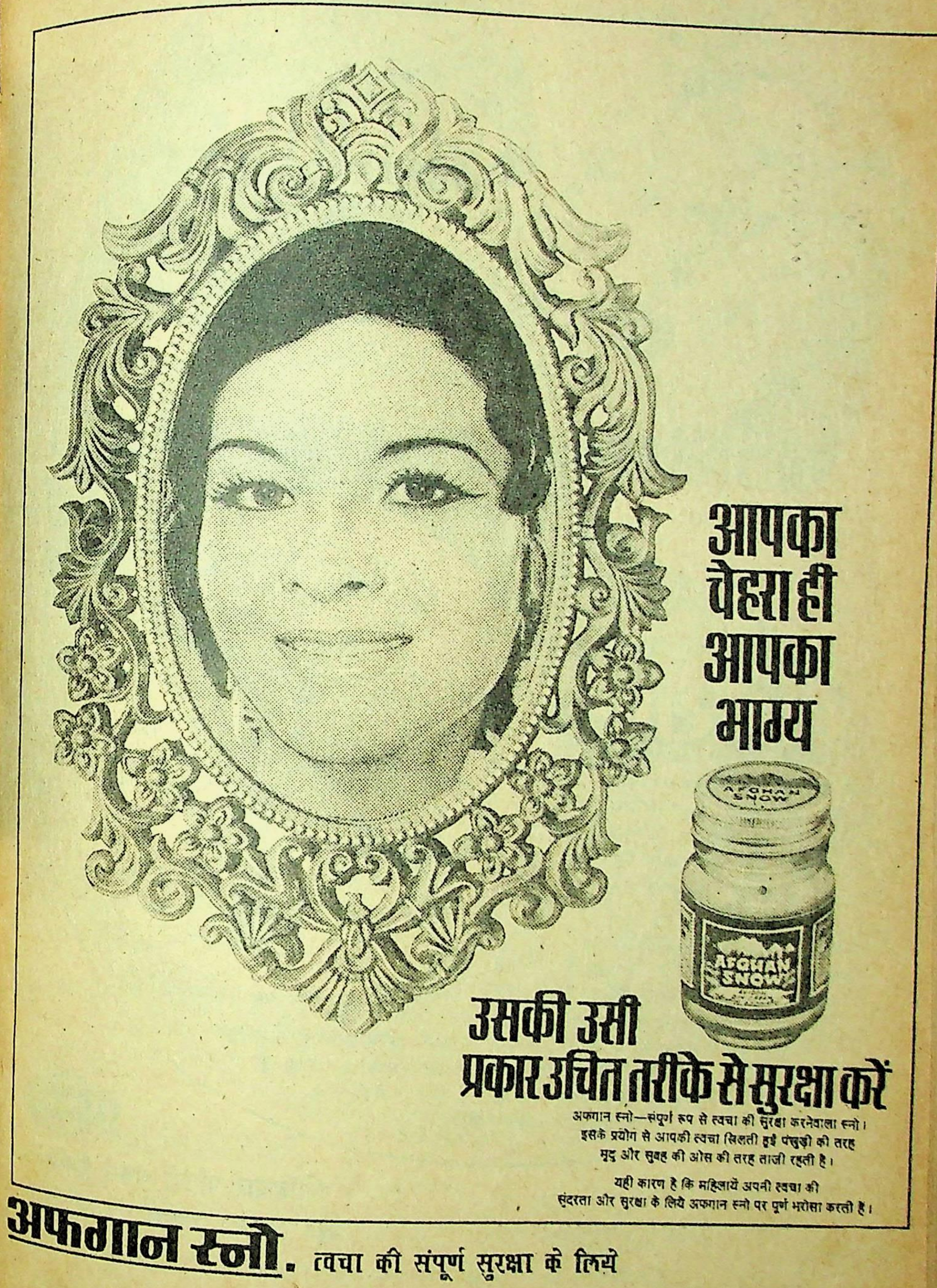

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

जून, १९७५

वर्ष : १५; पूर्णांक : १७०

समांतर कहानी विशेषांक-६
नवलेखन अंक-१

कहानियां

प्रभुनाथसिंह आजमी : कुछ कदमों का फासला : १२
अजय अग्रवाल : विक्षिप्त : १६
उषा व्यास 'छवि' : सलाखों के आर-पार : २४
श्रीकेशव : अंधा सूरज : ३२
शैलाभ : मशीन : ३६
सोमेश भरत : दौड़ : ४२
ज्ञान चतुर्वेदी : जंगल में : ४४
नरेंद्र मौर्य : मैया सा'ब का पटाक्षेप : ४८
अरुण मिश्र : अंधे कुएं का रास्ता : ५२
सच्चिदानंद धूमकेतु : फफोले : ६०
रामलगन यादव : यहीं—सब जगह : ६४
कृष्णकांत प्रवासी : तह के नीचे : ६८
नर्मदेश्वर : गिद्ध : ७२
मंदा पांडे : वापसी : ७६
गौरीशंकर कपूर : परिक्रमा : ८०
सुरेंद्र सुकुमार : अगिहाने : ८४

लघुकथाएं

अशोक कुमार सिंह : पे-कमीशन की रिपोर्ट : १५
मधुप मगधशाही : महंगाई-विरोधी : १९
श्रीकांत चौधरी : काव्यपाठ और सरकारी आचार-संहिता : ३०
शंकर पुणतांबेकर : नेता की टोपी; सफाई : ३१
शैलेंद्रनाथ : शंका-समाधान : ८७

एक रिपोर्ट

अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन :
एस. कुमार : ५८

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : (संयोजक : न. मा.) : ६
मेरा पन्ना : कमलेश्वर : १०
कबिरा खड़ा बजार में : हरिशंकर परसाई : २०
कृतियां : त्रि. जे. : ७९
चंद सतरें और : अनीता औलक : ८८
विविधा : समांतर कहानियों पर एक समांतर
परिचर्चा : सुभाष पंत : ९०
व्यंग्य-विचार : कालिदास सेन : ९३
● आमुख : विद्यावत

सारिका

चंदे की नयी रियायती दरें

एक वर्ष— १० रुपये

दो वर्ष— १९ रुपये

तीन वर्ष— २७ रुपये

संपादक : कमलेश्वर

● मुख्य उप-संपादक :
आनंदप्रकाश सिंह

● उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल, सुदीप

● कार्यालय सहयोगी :
श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकीय

समांतर कहानी विशेषांक —५ और ६

काफी प्रतीक्षा के उपरांत **'सारिका'** का फरवरी अंक प्राप्त हुआ. सभी कहानियां जहां आज के समर्थ और सही लेखन का प्रमाण हैं, वहां कमलेश्वर जी ने भी **'मेरा पन्ना'** के माध्यम से कहानियों को अमूल्य बना दिया है. इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि कमलेश्वर जी ने आज के यथार्थ को अपनी कलम द्वारा नंगा करके पाठकों के सम्मुख ला कर खड़ा कर दिया है.

इस अंक की सभी कहानियां आक्रोश से भरी हैं. मुद्राराक्षस की **'निहत्थे'** राशन.के लिए तड़पते हुए सुखबीर जसे लोगों का यथार्थ चित्रण करती ही है. राम सुरेश की कहानी **'मदारी'** भी कॉलेज जीवन की यथार्थवादी कहानी है.**'एक चालू आदमी'** कहानी में लेखक ने अच्छा व्यंग्य कसा है. प्रभातकुमार त्रिपाठी की कहानी **'ऋषि'** भी अच्छी रही. कुल मिला कर अंक सुंदर रहा. चाहे वह कामतानाथ की **'तीसरी सांस'** हो, नवतेजसिंह की **'अन्न और स्वप्न'** हो, **'नयी तलाश'** या फिर **'दर्द की मछली'**—सभी कहानियां आज के कटु सत्य की तस्वीर पेश करती हैं.

☐ **जयसिंह आर्य, चंडीगढ़**

'सारिका' का 'समांतर कहानी विशेषांक—५' पढ़ा. सभी कहानियों ने सामयिक परिस्थितियों से जूझते हुए व्यक्तित्वों को बड़ी मार्मिकता से उकेरा है. चाहे कामतानाथ की **'तीसरी सांस'** हो, या अकुलेश परिहार की **'छुट्टी का एक दिन'** या दिनेश पालीवाल की **'एक चालू आदमी'**—सभी कहानियां अपने में सशक्त हैं. **'मेरा पन्ना'** की प्रशंसा शब्दों में नहीं की जा सकती. **'चंद सतरें'** और **'कबिरा खड़ा बजार में'** भी प्रशंसनीय हैं.

☐ **सुनील स्वप्निल, कटनी**

फरवरी अंक पढ़ कर यूं लगा कि अब ये कथाएं आम आदमी के आसपास की ही नहीं, बल्कि सामान्य जन-जीवन की अंदरूनी पीड़ा, तड़प, विडंबनाओं व विसंगतियों की विशद व सम्यक तस्वीर, अपने विशाल पाठक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत करने की क्षमता भी रखती हैं. ये कथाएं इस कथन को सार्थक करती हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है. ओम गोस्वामी ने **'दर्द की मछली'** में जिंदगी के दल-दल में पड़ी हुई, अपनी वेदनाओं के साथ तालू में कांटा फंसाये तड़पती व जिंदगी को अर्थ देने की नाकाम कोशिश में संलग्न मछलियों की दुख-गाथा को एक धर्मू की पत्नी में समेट कर यथार्थ की जमीन का एहसास कराया है. आज आदमी की दो किस्में हो गयी हैं— पेशल व चालू (**'एक चालू आदमी'** : दिनेश पालीवाल). अभावों की मार से पिटा हुआ आदमी, अपने अधिकारों की बात अपनी जन्मजात भाषा में न कह कर विदेशी भाषा (अंग्रेजी) में कहने की कल्पना करता है. अपनी कही गयी बात गंदी हवा के समान निरर्थक लगती है (**'निहत्थे'** : मुद्राराक्षस). इस अंक की अन्य कहानियां भी आम आदमी की निरीहता, लड़ाई, त्याग का प्रतिनिधित्व करती हुई अपने उद्देश्य के निकट पहुंची लगती हैं.

☐ **देवेंद्रकुमार पाठक, भुड़सा**

'समांतर कहानी विशेषांक : ५' पढ़ा. प्रत्येक कहानी शुरू करने से पहले हृदय में एक दहशत-सी बनी रहती है कि कहीं यह हमारे जीवन के किसी पहलू का कच्चा चिट्ठा न हो. ये सिर्फ कहानियां ही नहीं, बल्कि आम आदमी की दिनचर्या का पर्याय हैं.

हमारी पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था ने हमें भयंकर आर्थिक विषमता के कगार पर खड़ा कर दिया है. मजदूर, किसान एवं मध्यमवर्गीय परिवार आर्थिक शोषण के शक्तिशाली शिकंजे, एवं वर्तमान सड़ी-गली व्यवस्था के दलदल में फंसे, गटर के कीड़े की तरह रेंग-रेंग कर एक अजीब हास्यास्पद एवं नंपुसक स्थिति को पहुंचते जा रहे हैं, जहां समय-असमय वे चिचियाते तो हैं, परंतु किसी भी विस्फोटक स्थिति से अपना दामन बचाये रखते हैं. क्यों? गाली खाने के बाद भी हम क्यों नहीं उत्तेजित होते? बहुत दिनों से यह प्रश्न दिलो-दिमाग पर छाया था. फरवरी अंक में **'मेरा पन्ना'** इसका सटीक एवं संतोषजनक उत्तर दे गया.

क्रूर फौजी शासन की सुरसा, आर्थिक न्याय की मरीचिका में खोये न जाने कितने **'निहत्थे'** (मुद्राराक्षस) सुखबीरों को निगलेगी? कानों को सुन्न कर देती है **'तीसरी सांस'** (कामतानाथ) के केबिनमैन की शांतिमय विस्फोटक मौत! उफ! कितनी दर्दनाक है, **'दर्द की मछली'** की नसीबो का अपना शरीर बेच कर अपने बूढ़े श्वसुर एवं बच्चों के पेट की धधकती ज्वाला को शांत करने की दिनचर्या! पारिवारिक संबंधों को नापते आर्थिक मापदंड का सिलसिला एवं आर्थिक परतंत्रता के संत्रास से त्रसित वर्तमान पढ़ा-लिखा युवा चिंतन किस दिशा में अग्रसर हो रहा है, प्रभातकुमार त्रिपाठी की कहानी इसका ज्वलंत उदाहरण है.

आम आदमियों के जीने के ढंग का सफल चित्रण कर पाने का श्रेय सिर्फ **'सारिका'** को ही है. यह साधारण आदमियों की व्य... का अद्वितीय संग्रह है.

☐ **ओमप्रकाश गुप्ता, लखन...**

इसे मैं अपना सौभाग्य ही मानता हूं कि मैं **'सारिका'** का पाठक हूं. पहले **'सारिका'** पढ़ता था सि... शौक से. लेकिन अब अध्य... करने लगा हूं. आम आद... हो कर भी 'आम आदमी' के दर्द ... वाकिफ नहीं था. यह **'सारिका'** ... ही प्रयास है कि अब खुद को प... चानने लगा हूं. अपने ही अस्ति... के संबंध में जो हीन भावना ... जाती रही है. अब यह अच्छी त... समझने लगा हूं कि अपनी ही ... बेबसी और लाचारी को कि... की बात समझ बैठा था, वह कि... की बात नहीं, बल्कि साजिश ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम है. 'सारिका' को धन्यवाद कि यह हम आम आदमियों को 'आदमी' का दर्जा दिलाने के लिए प्रयत्नशील है.

'समांतर विशेषांक–६' भी पिछले अंकों की तरह बेहद पसंद आया. फिर भी **'दमनचक्र'** (सुधा अरोड़ा), **'एम. एल. ए. साहब'** (राही मासूम रजा), **'इतने अच्छे दिन'** (कमलेश्वर), **'व्याख्याकार'** (कृष्ण भावुक) मानस-पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ चुकी हैं.

□ **रामदेव सिंह, इसरायणकलां**

इस अर्थ-प्रधानता की वजह से पारिवारिक ढांचे चरमरा गये हैं. निजी से निजी संबंधों ने भी अपनी अर्थवत्ता खो दी है. सुधा अरोड़ा की **'दमनचक्र'** के भाई-बहन-पिता किस कदर दूर-दूर रहते हैं. एक पुत्री का अपने पिता के अस्तित्व के बारे में इस हद तक सोचना संभव हो गया है— 'बाबा को गलत दवा दे दूं, या चाय में स्लीपिंग पिल्स की पूरी शीशी उंड़ेल दूं. . .'

कहानी पाठक को शुरू से ही बांध लेती है. बीच में वह कहीं बिदकता नहीं. शिल्प कसा हुआ है और पाठक की आत्मा पर अपेक्षित तनाव बनाये रखने में सफल है. अंक की अंतिम कहानी **'इतने अच्छे दिन'** (कमलेश्वर) परिणति के रूप में उभर कर आयी है. **'अग्निरेखा'** और **'सांप'** भी बहुत अच्छी कहानियां हैं.

□ **ऋषिदेव शर्मा, इलाहाबाद**

कुल मिला कर 'समांतर कहानी विशेषांक–६' अपने नाम के अनुरूप रहा. वस्तुतः सारी कहानियां आज की वैयक्तिक सापेक्ष नैतिकता (के धर्म) को उजागर करती हैं. खासकर प्रदीप पंत की कहानी **'आम आदमी का शव'** ने अत्यधिक प्रभावित किया. सांस्कृतिक क्रांति का चित्रण आज की पूरी व्यवस्था को झकझोर देता है. अन्य कहानियों में सुदीप की **'अंतहीन–दो'**, कृष्ण भावुक की **'व्याख्याकार'**, राजेंद्र किशोर की **'अग्निरेखा'** तथा सुधा अरोड़ा की **'दमनचक्र'** अति सराहनीय हैं.

□ **'अमलतास', पटना**

. . .आज से नहीं, युग-युगांतर से चली आ रही आम व्यक्तियों की उत्कंठा उन्हें बहुत कुछ नवीनता की ओर धकेलती है. अब तक तो मैंने अपने सर्वेक्षण में यही पाया है कि समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग **'सारिका'** की कहानियों को कहानी मानने से ही इनकार करता है. कुछ दायरों के अंतर्गत सही भी है उनका सोचना. आज तक उन्होंने जो कुछ भी पढ़ा, लिखा और सोचा है, वह कल्पनाकाश की ही चंद तस्वीरें रही हैं, जिनका वास्तविकता से दूर का सलाम है. वास्तविकता से वे उतना ही कतराते हैं जितना एक नेता चुनाव के बाद 'जनता जनार्दन' से. हमारी मनोवृत्ति हो गयी है कल्पनातीत बातों को यथार्थ के परिवेश में सोचने की. यही कारण है कि आज अत्यंत रोमांटिक, जासूसी और नग्नता पूरित साहित्य ज्यादा बिकता है. **'सारिका'** एकमात्र वह पत्रिका है (मेरी नजर में) जिसने सही मूल्यांकन किया है कथा-साहित्य में विषयों का. **'सारिका'** ने वे अवगुंठन खोले हैं जिसकी वर्षों से प्रतीक्षा थी, पर साहस का पूर्णतः अभाव.

'नैतिकता' एक साधारण-सा शब्द दीखते हुए भी कितना कुछ समाये है अपने आप में! आवश्यकता है नैतिकता के व्यक्ति-केंद्रित प्रश्नों को बदल कर समयगत न्याय की धारणा के संदर्भ में उठाने की. हजार, दस हजार सत्तारूढ़ लोगों को मात्र बदल देना नैतिकता नहीं. आवश्यकता है प्रतिमानों को ही बदलने की, जिससे सत्ता, संस्था या संपूर्ण राष्ट्र अपना अस्तित्व कायम रख सके. पर दुख तो है कि हम (सुधा अरोड़ा– **'दमनचक्र'**, रामस्वरूप अणखी – **'एमरजेंसी'**, बसंतकुमार – **'सांप'**, प्रेम कासलीवाल– **'विदेश'**, सुदीप—**'अंतहीन-दो'**) व्यवस्थागत नैतिकता एवं अन्याय के कटीले एहसास को सी-सी करके भोगने को तो तत्पर हैं, पर स्वयं उठ नहीं सकते. साहित्यकार वर्ग की एक और विशेषता है—चीन या पाकिस्तान ने हमला कर दिया– बरसात में मेढकों के समान ढेर सारे कवि पैदा हो गये; लेखक पैदा हो गये. कहने लगे—हमें छेड़ो मत. हम सोये हुए नाग हैं! ठीक है हम नाग हैं, फिर नाग क्या चिल्ला कर दुनिया को सुनाते हैं कि हम नाग हैं? नाग हैं तो अपने गरल का एक कतरा भी उगलते क्यों नहीं? पर खैर. साहित्यकार वर्ग को ही क्यों दोष दें? यह तो जन साधारण की धारणा है— बस सब कुछ सहो, मगर पांव मत हिलाओ. प्रभावित किया है तो स्वयं कमलेश्वर जी ने (**'इतने अच्छे दिन. . .'**) मानव के पतन के पीछे ओट से झांकते उसके जीवन के प्रति मोह तथा मनोभावों का कितना सच्चा चित्रण. . .!

□ **कुमार अरुण, गया.**

एक पाठक का पत्र

मुझे उस समय बड़ा ही आश्चर्य हुआ जब मेसर्स जे. के. साटो एग्रीकल्चरल मशींस लिमिटेड (चकरपुर, कानपुर स्थित) फैक्टरी के रेजिडेंशियल क्वार्टर्स में अपने पुराने दोस्तों से मिलने मैं गया, तो एक बात जो हर क्वार्टर में समान थी, वह थी **'सारिका'** का नया अंक. पूछताछ करने पर मुझे बताया गया कि प्रत्येक कर्मचारी **'सारिका'** का इस हद तक प्रेमी है कि 'पहले मैं, पहले मैं' की छीनाझपटी से बचने के लिए एक ही अखबार वाले से ४७ प्रतियों को उन्होंने इकठ्ठा ही मंगाना शुरू कर दिया है. मार्च, १९७५ अंक की कहानियां तो सभी पसंद आयीं, मगर **'दमनचक्र'** जैसी सशक्त, यथार्थवादी रचना के लिए सुधा अरोड़ा सचमुच प्रशंसा की पात्र हैं. वर्तमान युग के संदर्भ में युवा आक्रोश और नारी की, सामाजिक, आर्थिक उत्तरदायित्व को पूरी तरह निभाते हुए भी, कितनी मजबूरियां हैं, इन विषयों पर बरबस ही ध्यान खिंचता है.

□ **स्वतंत्र शर्मा, जहांगीराबाद, भोपाल**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज का यथार्थ : समांतर संसार – ९

अवरुद्ध क्रांति, राजनीतिक अनिश्चितता, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था, सामाजिक विषमता, भविष्य की दिशाहीनता, शांतिपूर्ण विकास की तथाकथित सैद्धांतिकता, पूंजीवादी व्यवस्था की प्रतियोगिता और तथाकथित समाजवादी समाज की प्रतियोगिता-हीन कल्याण-कारिता के एक-दूसरे को काटते मंसूबों के बीच आज का आदमी और उसका साहित्य सांस ले रहा है.

क्रांति के लिए वचनबद्ध और आस्था-केंद्रित साहित्य ऐसे में क्या करे, जब एक ही दिक् और काल में अनेक दिशाएं और अनेक काल समाये हुए हों? जब-जब यह प्रश्न उठाया जाता है तो कुछ विशुद्धता-वादी लोग चौंकते हैं और यथा-स्थितिवादी नाक-भौं सिकोड़ते हैं कि साहित्य का संबंध इस तरह के प्रश्नों से क्या है? साहित्य तो मानव-कल्याण का प्रेरक और जनक है, उसके मूल्य अलग हैं. यानी ऐसे लोग साहित्य के मूल्यों, मानव-मूल्यों और जीवन-मूल्यों के बीच एक व्यवधान हमेशा बनाये रखना चाहते हैं.

जब-जब साहित्य और जीवन-मूल्यों के बीच की दूरी समाप्त करने की कोशिश की जाती है, तब-तब इन निहित स्वार्थों की ओर से यही आवाज उठायी जाती है कि साहित्य का मुहावरा बहुत चालू हो गया है. यह निहित स्वार्थों वाला वर्ग हर क्षेत्र में मौजूद है. यह बराबर इल्जाम लगाता है कि विद्रोह, आक्रामकता, विक्षोभ, असंतोष, आक्रोश, अस्वीकृति आदि की भंगिमा ने साहित्य को सतही और छिछला कर दिया है. . .यह शिकायत विशेष रूप से उनकी है जो आज के साहित्य के मंसूबों को अपने मंसूबों के साथ नहीं पाते. वे तब बड़ी तकलीफ से कहते हैं कि यह साहित्यकार के अनुभव की कमी है! असल में इन्हें अनुभव की यह कमी तब दिखायी पड़ने लगती है, जब साहित्य इनकी विगलित, भावनात्मक दुनिया के बारे में संवेदनात्मक अनुभव करना बंद कर देता है और मानव मात्र की मुक्ति और स्वातंत्र्य का सवाल उठाता है. यानी जब इन्हें यह अनुभव दिया जाता है कि तुम्हारी स्वतंत्रता जन सामान्य की पराधीनता का कारण है, तुम्हारे अतिरिक्त और गलत तरह से अर्जित सुख दूसरों के दुखों का कारण हैं, तो इन्हें साहित्य सतही और बेमानी दिखायी देने लगता है. साहित्य में सन्नाटा नजर आने लगता है. बौद्धिक विपन्नता दिखायी देने लगती है.

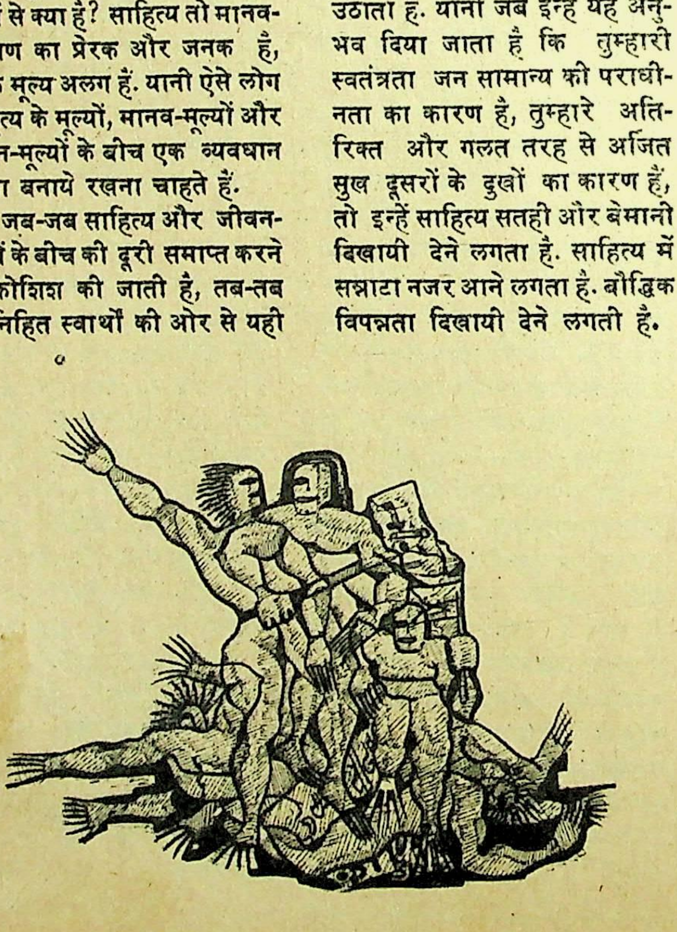

• नारद कांबली

साहित्य सिर्फ कुछ र[...] है, पैदा करता है (वह भी [...] सौंदर्य किस्म की चीज) पर साहि[...] आदमी के बदले हुए मंसूबे [...] कित करता है और उन्हें बदल[...] भी है, यह बात इनके गले [...] उतर पाती.

आज का साहित्य जब प[...] वर्तन की बात करता है और [...] साफ मंसूबे ले कर जिरह करता [...] तो यह कह कर टालने की कोशि[...] की जाती है कि ये साहित्यिक प्र[...] नहीं हैं. लेकिन उन निहित स्वा[...] वाले छद्म लेखकों में से कोई [...] नहीं बताता कि यदि ये आज [...] साहित्यिक प्रश्न नहीं हैं, तो कौ[...] से प्रश्न हैं जो साहित्यिक हैं?

यानी प्रश्नों को वे व्यक्ति[...] प्रश्नों की सीमा तक तो जैसे-[...] स्वीकार करते हैं, पर समयगत प्र[...] को सामने देख कर साहित्य [...] साहित्य मानने से ही इनकार क[...] लगते हैं.

यह मुद्रा वह बुर्जुआ मुद्रा [...] जो मुक्ति या स्वातंत्र्य को एक नि[...] पेक्ष इकाई मानती है. संघर्ष, [...] और श्रम से अलग रखना चाहती [...] क्योंकि उसकी स्वतंत्रता का [...] कर्म, संघर्ष और श्रम नहीं है, [...] बुर्जुआ वर्ग की स्वतंत्रता का [...] निहित है—जन सामान्य के [...] और श्रम को परतंत्र रखने में.

जब साहित्य इस परतंत्र[...] व्यापक मानव-स्वातंत्र्य के लि[...] तोड़ने की बात करता है और [...] आदमी की बुनियादी जरूरत[...] बात करते हुए अगले आ[...] सवाल भी उठाता है, तब [...] पर 'राजनीति करने' का [...] रोपण होता है.

इस प्रसंग में तब य[...] दिया जाता है कि इस देश क[...] त्रता से ले कर अब तक [...] उन्हीं निहित स्वार्थों की रा[...] के वर्ष रहे हैं. ये सारे वर्ष [...] या साहित्य के नहीं रहे हैं, [...] दौरान राजनीति ने जो नि[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और देश ने उन राजनीतिक निर्णयों के तहत जो आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक शक्ल अख्तियार की है, उस शक्ल को उजागर करने की भूमिका यदि साहित्य नहीं निभाता और उसका विकल्प पेश नहीं करता, तो और वह कौन-सा माध्यम है, जो इन भयानक अंतर्विरोधी स्वार्थों की टकराहट को सामने लायेगा, जो मनुष्य की मुक्ति के प्रश्न को उठायेगा?

मनुष्य की मुक्ति या उसके आत्मिक-सामाजिक स्वातंत्र्य का सवाल अब दार्शनिक और आध्यात्मिक फार्मूलों से नहीं सुलझाया जा सकता, क्योंकि मनुष्य की स्वतंत्रता सीधे-सीधे आज की आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक विषमता और सांस्कृतिक विपन्नता के दुष्चक्र में फंसी हुई है और उसके सीधे तथा बेबाक उत्तर वही माध्यम दे सकता है, जो व्यावहारिक भी हो और जिसके अपने मूल्य आदमी के आकांक्षागत जीवन-मूल्यों के विरुद्ध न जाते हों. अतः समय-सापेक्ष मूल्यों को ले कर चलने वाला साहित्य और उन मूल्यों को व्यावहारिकता में फलित करने वाली राजनीति, यही ऐसे माध्यम हो सकते हैं जो शोषित और दलित विराट मनुष्यता को उसकी मुक्ति का आधार दे सकते हैं.

यानी सीधे-सीधे मसला 'स्वतंत्रता' का है—यह सोचने का कि कानूनी राजनीतिक आजादी के समांतर और कितनी आजादी आदमी ने प्राप्त की है? आदमी कितना निश्चित हुआ है? उसकी आत्मा का बोझ कितना कम हुआ है? चलते-फिरते, उठते-बैठते, काम करते एक घटक के रूप में उसकी इज्जत क्या है? समाज-परिवार में उसकी औकात को क्या दर्जा हासिल हुआ है? दफ्तर, कारखाने, स्कूल आदि में उसकी 'जरूरत' का मूल्य कितना है और वर्तमान तथा भविष्य के निर्माण में उसके श्रम और भावनाओं की क्या कीमत आंकी जा रही है? यानी कुल मिला कर आदमी की कद्र कितनी है?

यहां पर सवाल सामाजिक प्रतिष्ठा का नहीं है, सवाल है एक तरह की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक जरूरत, औकात और कद्र का! यानी यह व्यवस्था कहीं दूर दानापुर, बिहार में रहने वाले एक इंजन-ड्राइवर को अपने लिए कितना जरूरी समझती है और उसकी आंखों में उस ड्राइवर की क्या कद्र है? केवल एक श्रमिक या रेलगाड़ियों को चालू रखने वाले, तनख्वाह पाने वाले एक पुर्जे के नाते ही नहीं, बल्कि एक साधारण श्रमशील आदमी होने के नाते!

यहां पर सवाल सिर्फ आर्थिक विपन्नता या संपन्नता का भी नहीं है, बल्कि आदमी की (इस व्यवस्था में) घटती या बढ़ती औकात का है. क्योंकि यही उसकी घटती या बढ़ती स्वतंत्रता का पैमाना है.

'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' एक सरासर शहरी और सतही कॉन्सेप्ट है. अपने को अभिव्यक्त कर लेने से 'स्वतंत्रता' घटती या बढ़ती नहीं, बल्कि स्थापित व्यवस्था में आदमी की घटती या बढ़ती औकात ही उसकी अभिव्यक्ति की शक्ति को तय करती है, और यह शक्ति ही उसकी कारगर स्वतंत्रता का अंदाज दे सकती है.

कानूनी स्वतंत्रता और कारगर स्वतंत्रता का अनुपात क्या है, उसके अनुपात के ग्राफ की स्थिति क्या है, यह व्यवस्था के स्वरूप और चरित्र को गहराई से टटोल और समझ कर ही तय किया जा सकता है, क्योंकि अंततः मनुष्य की आधारभूत आत्मिक और भौतिक स्वतंत्रता को ईश्वरीय शक्तियां तय नहीं करतीं, बल्कि व्यवस्थागत राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक शक्तियां ही आदमी के आत्मिक और भौतिक स्वातंत्र्य तथा उसके 'ईश्वर' को तय करती हैं.

हमारे और आपके मन में 'ईश्वर' को ले कर संशय हो सकता है कि वह है या नहीं, पर धर्मगुरु या मुल्ला संदेह रहित रूप में जानता है कि 'ईश्वर' नहीं है. हमारे और आपके मन में 'व्यवस्था के चरित्र' को ले कर (उसके कभी भले और कभी बुरे होने के बारे में) संदेह हो सकता है, पर व्यवस्था के गुरु और मुल्ला संदेह रहित रूप में जानते हैं कि यह वह व्यवस्था नहीं है, जिसकी वे कसमें खा रहे हैं.

आम आदमी के मासूम मन का यह उजला, पर दुखद, संशय ही तमाम अनिर्णयों और अवरोधों का मूल कारण है. इसीलिए क्रांति अवरुद्ध है, राजनीतिक अनिश्चितता का कुहासा है, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का नागफांस है, सामाजिक विषमता का दुष्चक्र चालू है और उसकी बुनियादी स्वतंत्रता पर घेरा पड़ा हुआ है. जो संदेह रहित रूप में जानते हैं, वे तमाम बुनियादी स्वतंत्रताओं का उपभोग कर रहे हैं. वे कर्म, श्रम और संघर्ष से ऊपर उठ कर यथा-स्थिति के लिए सन्नद्ध हैं, क्योंकि दूसरों के कर्म और श्रम का आत्मिक और भौतिक लाभ उठा सकने का यही कारगर जरिया है.

आम आदमी की बुनियादी स्वतंत्रताओं की प्राप्ति के लिए उसकी कारगर स्वतंत्रता के अनुपात को निरंतर बढ़ाते रहने या उसकी स्वतंत्रता में होने वाली घटोतरी के विरुद्ध सक्रिय और सचेत रहने का महानतम मानवीय दायित्व सिर्फ वही साहित्य निभा सकता है, जिसकी संशयग्रस्त नियति यह दायित्व निभाते रहने की नहीं है, बल्कि जिसका संदेह रहित निर्णय यही दायित्व निभाने का है!

कमलेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ कदमों का फासला

● प्रभुनाथ सिंह आज़मी

● बलदेव

महानगरों में फिरकापरस्त लोगों से बच कर दो आत्मीय बातें कर लेने की जगह या तो कार वालों को सुलभ हैं या फिर फुटपाथ पर उपेक्षित ढंग से जी रहे लोगों को. दुर्भाग्य से हम दोनों ही इन दोनों से अलग हैं. कुछ खास बातें कर लेने का साहस पिछली पांच-सात मुलाकातों से जुटा रहा था. आज जुटे हुए साहस का उपयोग करने के लिए, सही जगह की तलाश में हमने लगभग एक मील बिना कुछ बोले पैदल काट डाला. इस तरह चुपचाप चलने का अज्ञात सुख अपने-आप मेरे अस्तित्व में गुदगुदी कर रहा था. इस गुदगुदी में अचानक उसका पूछना एक टीस की तरह चुभ गया—कहां चल रहे हैं. . .?

प्रश्न सही था. उत्तर कठिन. आखिर मैं कहां जा रहा था? मैं भी नहीं समझ पा रहा था. अपनी कमजोरी और असमर्थता को बदले हुए सवाल में बड़ी चालाकी से छुपा दिया—क्यों. . .? जल्दी है क्या. . .?

—नहीं, जल्दी तो नहीं. . .ऐसे ही पूछ रही थी. उसके जवाब में परिचितों की आंख का भय स्पष्ट था. मैं भी इसी डर का डरा हुआ था.

—अच्छा, आओ, कॉफी-हाउस चलते हैं. मैंने सही जगह की तलाश में अपनी असफलता स्वीकार कर ली थी. किसी पार्क में बैठ कर आत्मीयता कुरेदना अभ्यस्त लोगों का काम है. हम-से अनाड़ी और नये लोग व्यर्थ ही आसपास के लोगों को छेड़ बैठते हैं. बाद में इसका परिणाम कुछ घूरती आंखें हो जाती हैं जो हम नहीं [illegible] सकते थे.

—नहीं, वहां बहुत भीड़ होती है. उसका [illegible] ठीक था. कॉफी-हाउस में बहुत भीड़ होती है. इस [illegible] में हर मेज एक अलग भीड़ होती है. अलग-अलग [illegible] में सूनेपन का मजा अकेले बैठ कर ही लिया जा [illegible] था. उसका उत्तर पर्याप्त था. शाम के छह बजे [illegible] रिवोली की आगत-निर्गत जनता का पहला धावा [illegible] कॉफी-हाउस पर होता है. फैमिली-केबिन्स भी मेरी [illegible] स्थिति वाले क्यू लगा कर इंगेज कर लेते हैं. हम [illegible] लगा कर प्रतीक्षा करने की स्थिति में नहीं थे.

—अच्छा, चलो, सुपर बाजार की कैंटीन चल[illegible] मैं कार वालों की पक्ति में आने को बाध्य हो [illegible] उस आने में 'एक ही दिन के लिए' का भाव भरा था [illegible] मेरे चेहरे पर उतरने में अभी देर थी. न वह कुछ [illegible] न मैंने उसके बोलने की प्रतीक्षा की. मैं एकाएक पह[illegible] अपेक्षा कुछ तेज चलने लगा. कुछ गिने कदमों की [illegible] उसने भी उसी गति से तय की, किंतु उसके साधा[illegible] चेहरे पर असाधारण-सी बेचैनी मैंने महसूस की. छो[illegible] सांवले-से रंग में कुछ गाढ़ापन भी आ गया था. [illegible] पैरों में बड़ी गति को समेटते हुए कुछ चिड़चिड़ी-सी [illegible] लगी थी वह.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—अब तो लगता है, आपको ही ज्यादा जल्दी है! उसके अनुमान में स्वयं उसका पूरा सर्वेक्षण था. उसके इस अनुमान में मेरा भी सहयोग था. सचमुच मुझे जल्दी थी. वापस लौटने की जल्दी नहीं, ढेर सारे सवाल पूछ जाने की जल्दी. आखिर क्यों वह बार-बार मुझे टेलीफोन करती है? बिना बात ही मेरी आवाज सुनना उसे क्यों पसंद है? मुझसे बिना कुछ बात किये वह क्यों बार-बार मिलती है, मिलना चाहती है? मेरे अजान भविष्य को इतनी जिद से संवारने में उसे क्या मिलता है? इत्यादि-इत्यादि. ये सवाल पूछ डालने का काम टेलीफोन पर भी हो सकता था, लेकिन मैं पूछना नहीं चाहता था. दफ्तर का टेलीफोन एक पी. बी. एक्स. है जिस पर आया हर इंडिकेशन किसी और जिम्मेदार आदमी तक जाने का हकदार होता है. अपने लिए आया हुआ टेलीफोन या तो कोई खास सूचना हो सकती है या फिर मात्र औपचारिक अभिवादन. घर का टेलीफोन मेरे पड़ोसी की, जो डाक-तार विभाग में ई. एस. टी. हैं, दया या कृपा का एक्सटेंशन है जिसे मेरे शौक और दिलचस्पी को देख कर उन्होंने मेरे कमरे में रखवा दिया था. शुरू-शुरू में बहुत बातें करता था. बातें करने वाला ढूंढ़ता रहता था. किंतु अब उस पर बात करने की इच्छा नहीं होती. आत्मीय बातें करने की तो बिल्कुल नहीं. कभी-कभी तो जी चाहता है कि उनसे इस टेलीफोन को उठवा देने को कहूं, लेकिन उनकी सहृदयता मेरा मुंह रोक देती है. उसे टेलीफोन करके कुछ कह देना मिलने की सूचना हो सकती है, बात नहीं.

इन सारे सवालों को एक बेतरतीब ढंग से मैंने अपने-आपसे भी पूछा है. . .क्यों उसकी पहली आवाज में ही अपनापन ढूंढ़ने लगा? क्यों उसके बार-बार टेलीफोन करने पर भी झल्लाने-चिढ़ने की बजाय सुन जाने लायक मुसकराहट से पेश आया? क्यों उससे मिलने की इच्छा पहले मुझे हुई? उसके पति की चर्चा की तो क्यों मेरी जबान और उसका गला सूख गये? इत्यादि-इत्यादि.

—क्यों, क्या हुआ? उसकी टिप्पणी के पीछे छिपी सभी बातों को जानते हुए भी अभ्यस्त प्रेमी की तरह चौंक कर मैंने पूछा, जैसे कोई प्रेमी, प्रेमिका की उंगली दबा कर उसके 'सी' करने पर पूछे—क्यों, क्या हुआ?

—थोड़ा स्लो चलिए न. . .आप तो. . .! उसके शब्दों में सताया गया क्षण आ बैठा था. तेज चल सकने की असमर्थता थी. लेकिन मेरे अंदर कहीं-न-कहीं. दबी हुई उंगली की जरूरत से ज्यादा उठती हुई 'सी' गुदगुदी कर रही थी.

—बस, इतना भी नहीं चला जाता. . .? इसमें दुबारा छेड़ का-सा मजा आया. . .मुझे भी, उसे भी. उसके निचले होंठ ऊपरी होंठों से दब गये. मांसल गालों पर तिरता हुआ सांवलापन एक कचोटती हुई लाली से दब गया. आंखों में मुसकान का सागर तैर गया.

अपनी कमजोरी पर जीत के लिए मेरे पैरों पर पल भर में उसने विश्वास कर लिया. मजाक में कही गयी बात गंभीर हो गयी. मुझे तेज और दूर तक चलने के लिए उसकी हार की प्रतीक्षा नहीं करनी होगी. उसका मौन और उसकी मुसकान, दोनों में मेरे मजाक का मूल्य वसूलने की शक्ति थी.

—आप घर कब जा रहे हैं? थोड़ी देर की मुसकराती चुप्पी के बाद उसने पूछा. यह सादा-सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न मेरे लिए पूछे जाने वाले सवालों में एक और सवाल बन गया.

--दीवाली पर जाने की सोच रहा हूं.

--कब तक लौटेंगे. . .?

--दसेक दिन में लौट आऊंगा. . .क्यों?

--कुछ नहीं. . .ऐसे ही पूछ रही थी! वह कैसे पूछ रही थी, इसका उत्तर गुमनाम-सा मेरे ही भीतर कहीं था.

* *

हम घेरेदार सड़क के गिर्द सजी हुई बड़ी दुकानों के सामने छोटे-छोटे स्टालों के पास से गुजर रहे थे. पुरानी पुस्तकों के स्टाल पर के. पी. टिप्पर की 'थ्योरी आव एरियल' दिख गयी. इस किताब की मुझे आवश्यकता थी. ए. एम. ए. ई. एस. आई. के सेक्शन 'सी' के बचे तीन पेपर्स में से एक यही था. उठा कर देखने लगा. वह भी तत्परता से मेरे हाथों से पलट रहे पन्ने निहारने लगी. इस तरह की पुस्तकें देखते हुए जब वह मुझे देखती तो उसके चेहरे पर आये हुए गौरव को देख कर मुझे बड़ा संतोष मिलता था. पिछले अटेंप्ट में जब दो पेपर क्लियर किये थे, तो शायद मुझसे भी ज्यादा उसे खुशी हुई थी. उसका इस तरह खुश होना मेरे लिए एक सुलझा हुआ सवाल था. इसी तरह के सुलझे सवालों ने बचे सवालों को पूछ डालने को प्रेरित किया था.

--क्या प्राइस है? मैंने दुकानदार से पूछा. दुकानदार मेरे पुस्तक उठाने पर थोड़ा स्तब्ध होता-सा लगा था. उसे शायद मेरा उस तरह की पुस्तक उठा कर कीमत पूछना अपने अंदाजे से उलटा लगा था. पीले आवरण में मोहर-बंद पुस्तकें बेचते हुए उसकी मानसिकता भी पीली होती-सी लगी थी.

--थट्टी टू रुपीज ओन्ली! एक पूरी व्यावसायिक भाषा और रटे-रटाये स्वर में उसका जवाब मानवता के मशीनीकरण का प्रतीक था.

मैंने उत्तर सुना.मेरे दिमाग में सुपर बाजार का कॉफी हाउस कौंध गया. कुल चालीस रुपये का ओवरटाइम-- दो बनियान, चार नोट बुक्स, एक टिफिन करियर और सुपर बाजार के कॉफी हाउस में आत्मीयता की तलाश में बिताये गये चंद क्षण.

पुस्तक को यथास्थान सजा दिया. दुकानदार को परेशान करके यदि उसका सामान यथास्थान न रखा जाये, तो चलते-चलते दूर तक उसके कुछ बुदबुदाते शब्द कानों में रेंगते जाते हैं.

--चलो. . . ! धीरे-से उससे बोला.

--क्यों, किताब ठीक नहीं है क्या. . .?

--नहीं, बाद में लूंगा. उसे कौन बताये कि उस पुस्तक को 'ठीक' मंतव्य देना पुराना पड़ चुका है. उसे कौन बताये कि दिन की आपरेटरी, रात के कालेज की पढ़ाई और भोजन से अधिक कुछ भी करने की इजाजत नहीं देती. कॉफी-हाउस और किताब अलग वस्तुएं हो कर भी रुपये की नजर में एक ही हैं.

--ठीक हो, तो ले लीजिए. . .पैसे मैं दे देती हूं. उसके नये जवाब से लगा, जैसे मैं उसे किसी रंगीन चश्मे से देख रहा था कि शीशा टूट गया. चिटखी हुई धूप में उसका नया-चेहरा मेरी आंखों को चुंधिया रहा था. है, वह नौकरी करती है, स्वयं समर्थ है, किंतु मेरे किये गये श्रम से उसे कौन-सा संतोष मिलता है?

--पैसों की बात नहीं है, सेकंड हैंड किताब बोल रहा है! मेरा उत्तर निर्बल था, किंतु था साफ सटीक एवं स्पष्ट.

--चलिए दो रुपया कम दीजिए, हटाइए! दुकानदार को दो रुपये के उतार पर सौदा पटता नजर आ था. उधर मैं उसकी इस सौदेबाजी पर हंसना चाहता शायद खुद पर हंसना चाहता था. हंसा नहीं, बल्कि झल्ला गया.

--चलो भई. . .! झल्लाहट में ही बोला, इस जैसे मैं दुकानदार के व्यवहार से रूठा होऊं. किंतु रुठना कहां से था, मैं दबा गया.

--रुकिए तो एक मिनट! उसने आत्मीय कहा था. एक पूरे पारिवारिक वातावरण का एक भोग गया था. जाने क्यों, बड़ा प्यार-प्यारा -सा लगा वह क्षण.

उसने पर्स से तुड़े-मुड़े दस-दस के तीन नोट दुकानदार को दिये, पुस्तक उठायी और मेरी ओर बढ़ा दी.

मैं अपने पिछले व्यंग्य बस, इतना भी नहीं जाता. . .पर स्वयं पिट गया था. उसके हाथ में मेरी बढ़ी हुई किताब मेरे चेहरे पर शाम की लाली रही थी. मैं उसकी ओर बनावटी चिढ़ से घूर रहा

किताब थामते हुए मुझे एक अटेंप्ट में उस पेपर क्लियर करने का उत्तरदायित्व भी मन-ही-मन थाम पड़ा. हम फिर उसी तरह के स्टालों से गुजरने लगे. फ्लैस की तेज रोशनी के बावजूद रात का असर बाल्टियों की तरह एक ही दिशा में चल रहे लोगों पर गया था. परिचित भी बिना पहचान चले जा रहे थे. की थकान के बाद हर मेरे जैसा आदमी मेरे जैसा हो हैं. हर चेहरा एक आकृति में समा जाता है. उसे भी चानी आंखों का भय कम हो चला था.

--इस किताब को खरीदने म तुम्हारा क्या इंट था? चलते-चलते अपने बीच पैदा हुई खामोशी तोड़ हुए मैंने पूछ लिया.

--कुछ नहीं. बोल कर उसने अपनी जीभ किसी में समेट ली. इस तरह 'कुछ नहीं' बोलना उसका ढंग यह ढंग मुझे कुछ-कुछ रूमानीअदा का-सा आनंद देता है. उसका कुछ अस्फुट बोलना, मेरा 'क्या' पूछना, उसका 'कुछ नहीं' बोल कर जबान को मुंह में कहीं गुमा देना परिचित व्यवहार है.

मैं फिर नयी खामोशी पैदा होने देता हूं, लेकिन इस बार वह बरदाश्त नहीं कर पाती--फर्स्ट क्लास मार्क्स आने चाहिए. . .आजकल आप घूमने ज्यादा लगे हैं! बोल कर वह अपनी दृष्टि किसी चाट की दुकान की ओर मोड़ लेती है. मैं उसके 'कुछ नहीं' के पीछे इस आशा का आश्वासन ढूंढ़ता हूं. यदि मैं फर्स्ट-क्लास मार्क्स लाता हूं, तो उसे क्या मिलेगा! यदि नहीं पढ़ता, तो उसे क्या मिलने से रह जायेगा!

--मत बुलाया करो, घूमना कम हो जायेगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभुनाथ सिंह आजमी (जन्म : १८ जुलाई, १९४८ आजमगढ़, उ.प्र. में) विज्ञान के छात्र रहे हैं; फिर भी लिखने की इच्छा बचपन से ही रही है. अब तक कुछ रचनाएं छोटी पत्रिकाओं में प्रकाशित.

—जैसे कि मेरे न बुलाने पर आप कहीं जाते ही नहीं थे. . . ! सही था. लेकिन सोचने के लिए इससे भी सही यह था कि उसे अपने मिलने के सिवा मेरे और कहीं जाने पर आपत्ति थी. इस एक पक्षीय दृष्टिकोण से मुझे एक नये उत्तरदायित्व की गंध आ रही थी.

—सुनो! उसको किसी विज्ञापन की ओर निरुद्देश्य देखते हुए देख कर अपनी ओर आकृष्ट किया.

—जी.

—तुम्हारे वो कहां रहते हैं, क्या करते हैं, बताओ तो कुछ? इस तरह चुप-चाप रहने से कैसे चलेगा? पहले यह सवाल पूछते हुए मेरी जबान और उसका गला, दोनों सूखते थे, किंतु आज के सहज-आर्द्र वातावरण में मैं बिना झिझके कह गया. पहली बार यह सवाल इतना नंगा और साफ हुआ था. इस बार उसके चेहरे पर 'नहीं' नहीं उभरा एक समर्थ और सत्य भाव, किंतु पिछले बीते क्षणों की मधुरता को बेधता-चीरता-सा.

—यहीं रहते हैं—दूसरी शादी कर ली है—मैं उन्हें पसंद नहीं. . .मेरी शक्ल भी नहीं देखना चाहते—आप भी. . .अब मत आना मिलने. . .! उसके इतने-से कहने में आदि और उखड़े-उखड़े अंत में कोई मेल नहीं जमा पाया. उसके हलक में अभिशप्त-सी हिचकी धंसी हुई थी. अंतिम वाक्य का एक-एक शब्द अलग-अलग जोड़ना पड़ा था.

साथ-साथ तो हम पहले से चल रहे थे—वह जवाब देते हुए और भी साथ आ गयी थी. मैं जवाब सुनने के बाद और साथ आ गया. हिचकी में फटा वाक्य 'आप भी. . .' मेरे अस्तित्व में उफान ला रहा था. शब्द गले से रास्ता नहीं पा रहे थे. दाहिने हाथ से उसके कंधे समेत हाथ को अपने से सटा लिया. एकदम सहज-सा स्पर्श. निर्विरोध. आपत्तिहीन निकटता. मैं अंधेरे में मुड़ी 'के' ब्लाक की गली में आ गया.

स्पर्श की सहजता के बावजूद एक उत्तरदायित्वपूर्ण अनुभूति हुई. मैं फुसफुसाया—तलाक ले लेना. . .मैं दीवाली पर घर नहीं जाऊंगा. . .एप्लिकेशन टाइप करवा लूंगा. . .साइन कर देना.—अब आने-जाने का चक्कर ही खतम कर देना है!

उसके गालों पर गीला-गीला कुछ छू कर देखा. अपने होंठों पर कुछ खार-खारा चख कर देखा. गली समाप्त हो चुकी थी. एक ठेले पर रुके. चाट खायी. एक-दूसरे को हाथ हिला कर विदा किया. सुपर बाजार, कॉफी-हाउस कुछ ही कदम रह गया था. □□□

द्वारा—श्री रामजीप्रसाद अवस्थी 'शिक्षक',
गुप्तेश्वर रोड, जबलपुर (म. प्र.)

एक लघुकथा

पे-कमीशन की रिपोर्ट

□ अशोककुमार सिंह

जब श्री रामचंद्र 'गबन' और 'सरकारी घपलों' के मामले में काफी 'इन्वाल्व' हो गये और अपोजीशन पार्टी ने भी इस 'गंभीर गबन के प्रकरण को' लोकसभा में रेज कर दिया. और विरोध में वाकआउट भी किया, तो सरकार को मजबूरन श्री राम का ट्रांसफर पंचवटी ऐसे सूने-साने स्थान पर कुछ दिन के लिए कर देना पड़ा. कमाई की स्कोप यहां कुछ ज्यादा ही थी—किंतु स्थान बहुत बोरिंग था, मिस्टर और मिसेज राम दिन भर बैठ 'अवध की शाम' 'सरजू-बीच,' 'हंटिंग' इत्यादि के बारे में बातें किया करते थे.

एक दिन शाम को मिस मारीच, मिसेज सीता से मिलने आयीं. जिन्हें देख सीता बहुत ही खुश हुईं. मिस मारीच बहुत ही सुंदर कीमती साड़ी पहने थीं, जिसे देख सीता आश्चर्य से भर उठीं. कहने लगीं—कितनी प्यारी-सी, कितनी स्वीट-सी है ये साड़ी, इसका कलर कितना बढ़िया है. ये तो इंपोर्टेड-सी लगती है. क्या प्राइज है इसका?

मिस मारीच बोलीं—यह बस लगभग एक हजार रुपये की है. मेरे बर्थ-डे पर मेरे क्लासफेलो ने दी थी—कस्टम में हैं.

तब मिसेज सीता ने कुछ हठात स्वर में मिस्टर राम से कहा, कि देखिए, मिस मारीच की साड़ी कितनी सुंदर है. मेरे लिए भी मंगवा दीजिए न ऐसी साड़ी. मिस मारीच की एप्रोच भी है.

सीता के दुबारा फिर से कहने पर मिस्टर राम ने कहा—देखो डार्लिंग, इस महीने ट्रांसफर इत्यादि से कितना बर्डन पड़ गया है, और फिर कार-फ्रिज, स्कूटर, सब साकेत में अभी तक पड़ी हैं. प्रिये, ये साड़ी क्या, इससे सुपीरियर क्वालिटी की साड़ियां चाइना से आ जायेंगी. लेकिन तुम्हें कुछ दिन प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, पे कमीशन की रिपोर्ट बस पब्लिश ही होने वाली है. □□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्षिप्त • अजय अग्रवाल

उस दौरान वैसी एक घटना रूप ले रही थी, मैं तो यह सोच भी नहीं सकता था.

जिस रोज इस शहर में आया था, रात को ठीक से नहीं सो पाया था. एक तो नयी जगह पहली रात थी, दूसरे पहली-पहली नौकरी की खुशी के कारण काफी तनाव की स्थिति में था. आदत भी थी और कुछ इस तनाव को हल्का करने के लिए मैं काफी सुबह घूमने चल दिया था. सड़कें वीरान थीं. उसे आता देखा, तो बड़ा अच्छा लगा—चलो, मुझ-सा कोई है तो सही. मुझ पर उसका काफी रोब पड़ा था. चेक की बढ़िया शर्ट पर फबती हुई टाई. सिर पर फ़ैल्ट हैट. धूल की पतली-सी परत के नीचे डार्क टैन रंग के चमचमाते जूते अच्छी तरह की गयी पॉलिश से चमक रहे थे. उस दिन वह मुझसे बिल्कुल अनभिज्ञ बेंत झुलाता निकल गया.

हम दोनों के ताल्लुकात बड़े क्रमिक ढंग से एक-दूसरे को देख कर मुस्कराने तक पहुंचे थे. पर कॉलोनी में जब-तब टुकड़ों में जो कुछ सुनने को मिलता, उससे उसकी असामान्यता भी मुझ पर जाहिर होती चली गयी थी.

पता चला कि वह कहीं अच्छा-खासा अफसर था. अचानक दिमागी गड़बड़ के कारण नौकरी छूट गयी. उत्पात वगैरा उसने कभी कुछ नहीं किया. बस, बातें ऐसी-वैसी करता है, वह भी हमेशा नहीं. जिस कोठी में रहता है, वह उसके चाचा की है, जिसका कारोबार बाहर है. कुछ दिन उसी के पास रहा, पर फिर जिद करके कोई डेढ़ साल पहले यहां आ गया. बीवी और दो बच्चे चाचा के पास हैं. महीने में एकाध बार आ कर वह पैसे का हिसाब कर जाता है. एक नौकर काम-धाम कर देता है.

इन बातों से मुझे उसमें काफी दिलचस्पी पैदा हो गयी थी. मैं इसी उधेड़बुन में था कि कैसे एक दिन उससे बात शुरू की जाये कि उसने ही पहल की. एक रोज मुसकरा कर आगे बढ़ जाने की जगह उसने 'हलो' कहा और रुक गया. फिर बोला—मैं आपके साथ थोड़ी देर घूमूं, तो आपको बुरा तो नहीं लगेगा? और जवाब की प्रतीक्षा किये बिना ही साथ हो गया. फिर बड़ी बेतकल्लुफी से सिगरेट मांग ली.

—नाइस वेदर हां. . .? कश खींच कर उसने कहा था

—री'ली नाइस! बहुत ही सुखद! मैंने जवाब दिया था.

बस, उस दिन तो दस-एक मिनट के साथ में यही वार्तालाप हुआ, सिवा अलग होते समय की 'ओके देन' के.

फिर वह रोज मिलता और हम साथ घूमते. धीरे-धीरे वह खुलता गया. पहले मेरे बारे में जानकारी लेता रहा, फिर अलग ही ढंग की बातें करने लगा. कभी कहता—यू नो, आइ एम ए मैन हूं अ ऽऽ. . .तुम कह सकते हो, जमीन के ऊपर चलने में विश्वास रखता हूं, आधा जमीन के भीतर रह कर नहीं. किसी दिन कहता—यंग मैन, हो सकता है, मैं तुम्हें सिरफिरा लगूं, पर तुमने कठपुतली का नाच तो देखा होगा. हम सब वैसे ही नाचते हैं. डोर हमारी एक-दूसरे से बंधी है. किस-किस की हर[illegible] से किस-किस के हाथ-पैरों में बंधी डोरियां खिचती [illegible] ढीली पड़ती हैं, इसी का नाम व्यवस्था है. खाली सूत्र[illegible] तो कोई नहीं है. कोई भी नहीं.

उसकी ये बातें मुझे अच्छी लगतीं. मैं चाहता, [illegible] बोले ही जाये. लेकिन हर बार वह अचानक रुक जा[illegible] शंकालु दृष्टि से इधर-उधर देखता. फिर आश्वस्त [illegible] कर सांस छोड़ता.

* *

बीच में तीन-चार दिन मैं घूमने नहीं गया था. आ[illegible] में कुछ ज्यादा वक्त लग जाता था. सुबह देर तक सो[illegible]

जब वह फिर मिला, तो एक तरह की बेताबं[illegible] बोला—कहां रहे? मैं बड़ा परेशान था. मुझे डर [illegible] रहा कि हमारी बातें किसी ने सुन न ली हों. फिर थोड़ा [illegible] कर बोला था—बुरा तो नहीं मानोगे अगर पूछूं कि [illegible] कि कहीं तुमने तो किसी को कुछ नहीं बता दिया है?

मेरे बहुत विश्वास दिलाने पर ही वह संतुष्ट [illegible] था. बोला था—तो ठीक है. भविष्य में भी तुमसे [illegible] रखूंगा कि तुम्हारी-मेरी हरेक बात हम तक ही रहे[illegible]

अगले दिन इतवार था. नींद देर से खुली, इस[illegible] घूमने नहीं गया. पर शाम को मैं घूमता हुआ रिवो[illegible] सामने से जा रहा था कि वह दिख गया. मैं उसे गेला[illegible] ले गया. इतने बड़े शहर में किसको किसे जानने की [illegible] सत है, इसलिए मुझे उसके साथ वहां जाते किसी [illegible] का संकोच नहीं हुआ. बकझक या उलटा-सीधा कुछ [illegible] करेगा, इतना विश्वास मुझे उस पर हो चला था.

लेकिन अंदर घुस कर वह कुछ अजीब-से ढंग से [illegible] कोने की टेबल पर ले गया. मेरे पूछने पर कि क्या लि[illegible] जाये, उसने कई चीजों का आर्डर दे दिया और बैरे [illegible] सब चीजें एक साथ ले आने की हिदायत दी. बैरे के [illegible] कर जाने के बाद वह बोला—गुड मॉर्निंग सर! [illegible] फिर सहमा-सहमा-सा सामने बैठ गया.

—यह क्या. . .! आराम से बैठिए न! [illegible] होकर. यह देख कर मेरे मुंह से निकला था.

—ज्-ज् जी हां, आपकी इनायत है! आराम से [illegible] बैठा हूं सर!

—यह आप 'सर-सर' क्या कह रहे हैं?

—'सर' नहीं तो क्या कहूं आपको, सर? [illegible] स्वर बेहद नरम और दीन था.

मेरी समझ जवाब दे रही थी.

—सर, वो 'निगम एंड को' की फाइल. . .[illegible] तो अभी नहीं हो पायी है! क्या बताऊं, हेड बाबू ने [illegible] रसीदें. . .

—ओ हो, यह आपको हुआ क्या है? देखिए, [illegible] सब मंगाया है. . . ! मैं खुद पर काबू नहीं रख पा[illegible]

—सर, कल तक का वक्त दीजिए. जरू[illegible] जायेगी. . .जरूर!

फिर वह उठ कर चल दिया था. मैं खासे [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेश में पड़ गया था. अभी कुछ हुआ तक न था. कुछ सोच कर मैंने पांच का एक नोट टेबल पर रख दिया और उसके पीछे-पीछे गया. पास पहुंचा, तो उसे बड़बड़ाते सुना—अफसर क्या हो गये, खुदा हो गये! बात न चीत, सिर पर चढ़ेंगे! आफ्टर आल मेरा भी तो कुछ आत्म-सम्मान है.

मैंने उसे उस हालत में अकेला छोड़ देना ही बेहतर समझा.

अगले दिन भी घूमने नहीं गया. शहर का रंग मुझ पर चढ़ने लगा था. आलसी होता जा रहा था. उठ कर भी नयी पत्रिका के पन्ने ही पलटता रहा था.

शाम को आफिस से लौटते हुए कुछ सामान लिया. ले कर स्कूटर का इंतजार कर रहा था, जब उसने मेरा कंधा छुआ. मैं घूमा, तो वह मुसकराया और कहने लगा—चलो, आज मैं तुम्हें दावत देता हूं. साफ है, पिछले दिन की बात उसे याद नहीं थी.

पास के ही रेस्तरां में वह मुझे परिवारों के लिए बने एक केबिन में ले गया. मैं उठ कर टॉयलेट गया. लौटा तो इस बीच बैरा सर्व भी कर गया था. मैंने देखा, वह दोनों हाथ टेबल पर टिकाये तनी आंखों से मुझे घूर रहा है. तभी वह बोला—आइए, तशरीफ ले आइए!

—आपका लंच-आवर कितनी देर का होता है? उसके स्वर में व्यंग्य था.

फिर वही बेहूदगी. इससे पहले कि मैं यह सोच पाता कि उससे किस तरह पेश आऊं, वह गरजा —न नो गाड डैम एक्सक्यूज! कोई बहाना नहीं चलेगा, बाबू हरिश्चंद्र हेड क्लर्क! मैं अभी सठिआया नहीं हूं! आखिरी वार्निंग दे रहा हूं. समझ लीजिए. . . आप जा सकते हैं!

मैंने सन्न बैठे-बैठे देखा, एकाएक उसकी आंखें खाली हो गयी थीं. कोई भाव नहीं रह गया था वहां. बड़े डरावने ढंग से वह जड़ बना बैठा था. फिर एकदम हिला और बोला—अरे, आपने शुरू नहीं किया! मैं बैठा इंतजार कर रहा हूं.

मेरे मन में तो आया, कहूं—तुम इंतजार नहीं बकवास कर रहे थे. पर नहीं, कुछ सोच कर मैं चुपचाप कॉफी सिप करने लगा.

* *

उस दिन जन्माष्टमी की छुट्टी थी. सुबह वह मेरे घर चला आया. घूमने की मेरी आदत छूट गयी थी, इसलिए उससे मिले कई दिन हो गये थे. मैं उस समय ब्रेकफास्ट कर रहा था और बाहर जाने के लिए तैयार बैठा था.

वह मेरे सामने आ कर बैठ गया और बोलने लगा—नरेशजी, (उसने मेरा नाम कैसे जान लिया, इसका मुझे ताज्जुब हुआ.) वैसे तो हर आदमी को दूसरे से काम पड़ता है, पर मेरे पास बड़ों-बड़ों के काम अटके हैं. सब मेरे पास गिड़गिड़ाते आये हैं. इस तरह मेरे सामने बैठे हैं, जैसे आप बैठे हैं. . .बैठे रहे हैं और मैं काम में व्यस्त रहा हूं. हमारे यहां कस्टम है कि ऐसा-वैसा पैसा नीचे से दिया जाता है. इसलिए जब मैं काम खत्म कर लेता हूं,

● अरुण बोहरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

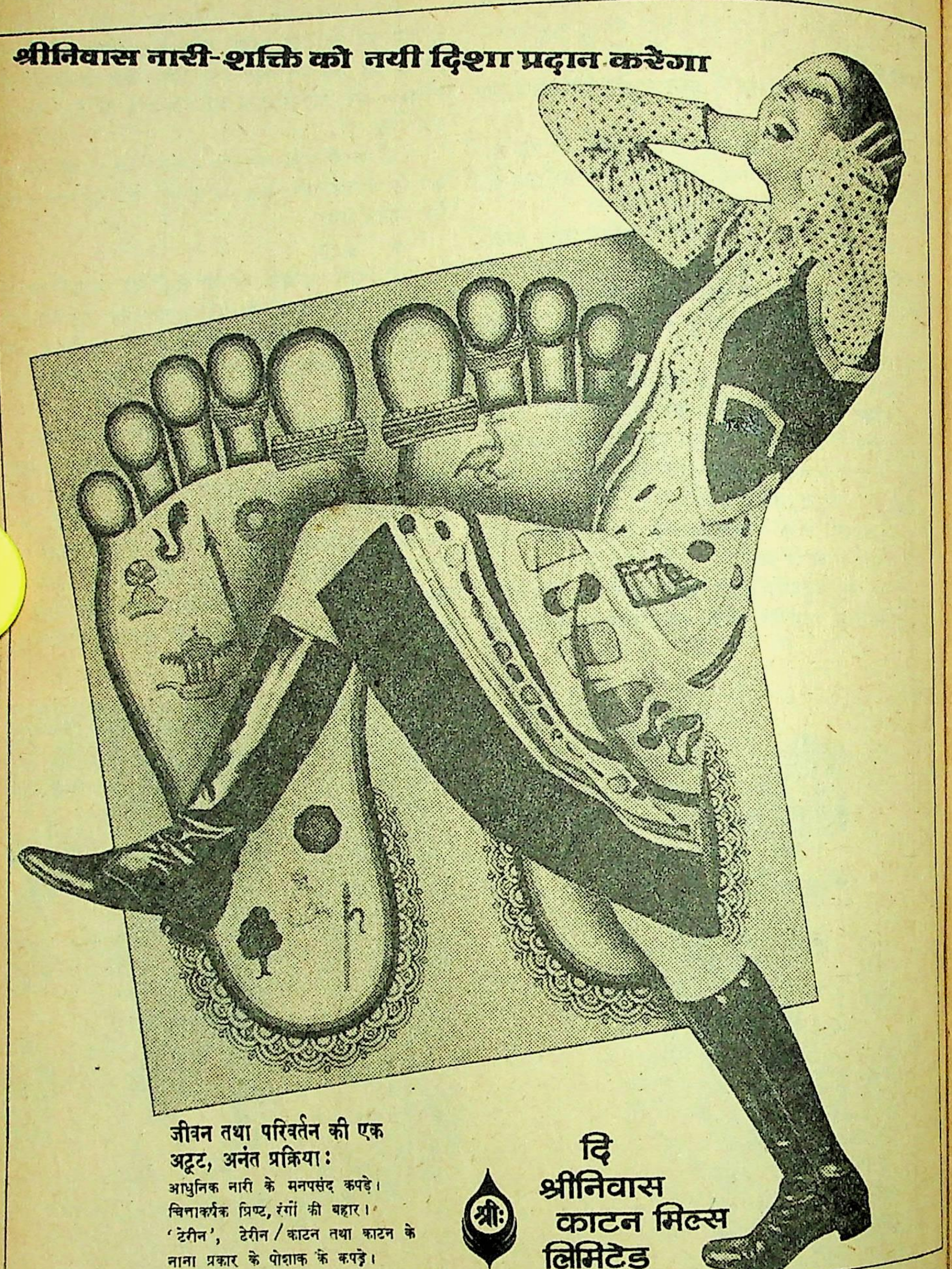

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजय अग्रवाल ने अभी बहुत कम कहानियां लिखी हैं; फिर भी अपनी संवेदना और समय-संगत चेतना के कारण उन्होंने पाठकों को प्रभावित किया है. पेशे से इंजीनियर हैं.

तो इत्मीनान से अपने दोनों हाथ नीचे कर लिया करता हूं. जिसकी जितनी श्रद्धा होती है, ले कर काम बनवा देता हूं. देखिए, मैं ऐसे हाथ नीचे करता हूं. . .

और उसके हाथ टेबल के नीचे चले गये थे. तब मुझे भी पता नहीं क्या हुआ, मेरा हाथ पैंट की जेब में चला गया और बाहर निकला, तो उसमें कुछ नोट थे. इसके बाद मेरा हाथ नीचे गया, एक क्षण के लिए मेरी-उसकी उंगलियों का स्पर्श हुआ और रुपये उसकी उंगलियों ने समेट लिये. फिर उसने बेतहाशा हंसना शुरू किया था और नोटों की चिंदी-चिंदी करके उड़ा दिया था. मैं देखता ही रह गया था.

कुछ क्षणों के बाद वह हंसना बंद कर एकदम गंभीर हो गया और बोला—नरेशजी, कोई बात मन में रह जाये, तो बड़ी बेचैनी होती है. मुझे तो लगता है, आदमी का जीवन ही इसलिए होता है कि उसके साथ घटनाएं घटें, हादसे हों. जिंदा वह इसलिए रहता है कि उनके बारे में दूसरों से कहे. कह देता है, तो हल्का और अच्छा लगता है. नहीं कह पाने की मजबूरी होती है, तो आदमी पागल तक हो सकता है. कभी ऐसी स्थिति भी आ सकती है कि कहने के लिए कुछ बाकी ही न रह जाये. . .इतना कह कर वह वापस चला गया था.

उसकी अधूरी बात का मर्म तो दरअसल तब मालूम हुआ, जब उस दिन शाम को लौटते हुए उसकी कोठी के सामने भीड़ देखी. पता चला कि उसने नींद की गोलियों से खुद को खत्म कर लिया है. भीड़ की बातचीत से यह भी मालूम हुआ कि उसने एक पत्र छोड़ा है, जिसमें लिखा है—मेरी जिंदगी मेरी अपनी होनी चाहिए थी. नहीं थी. क्यों नहीं थी? क्यों मेरे साथ ऐसी बातें होती रहीं, जिन्हें न मैं चाहता था, न जिनका कोई औचित्य था? क्यों मैं बार-बार वह सब करने के लिए तैयार होता रहा, जो मन नहीं चाहता था? . . मुझे जितना कुछ कहना था, जिसे मैं अपने से कई गुना शक्तिशाली दुनिया के डर से नहीं कह पाता था, उतना एक औसत आदमी को पागल कर देता. . .

—पागल अपने को पागल थोड़े ही समझता है! भीड़ में से किसी ने कहा.

मुझे लगा कि उस व्यक्ति ने कुछ बहुत ही गलत कहा है, पर क्या, यह समझ में नहीं आ रहा था. □□□

२/१ पवन बाग, मालाड (पश्चिम)
बंबई-४०००६४

महंगाई विरोध

● 'मधुप' मगधशाही

तय हुआ कि बढ़ती हुई महंगाई के विरुद्ध आंदोलन छेड़ा जाय. अगले दिन सबेरे ही मार्केट को घेर लिया गया. सबके हाथों में सरकार द्वारा निर्धारित अधिकतम मूल्यों की सूची थी, और वे उसी मूल्य पर वस्तुओं के विक्रय के लिए जोर डालने लगे. दुकानदार गिड़गिड़ाये—बाबूजी, हमने खुद इस मूल्य पर सामान नहीं खरीदा. वे कुछ भी सुनने को तैयार नहीं हुए. कई सामान उठा कर जाने को हुए तो रोक लिया, और खड़े हो कर जबरदस्ती बिकवा दिया. किंतु शाम को देखा गया तो पूरा मार्केट खाली.

शाम व्यतीत हुई. पहला दिन बीता. दूसरा दिन भी बीता. तीसरे दिन उपभोक्ताओं यानी जनता के बीच विक्षोभपूर्ण आवाजें उभरने लगीं, लोग आपसी बातचीत में उन युवकों को दोषी ठहरा कर कोसने लगे—महंगा ही सही, सामान तो मिल जाता था!

उनकी दुबारा बैठक हुई जिसमें मुख्य मंत्री के पास प्रतिवेदन उपस्थित करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ.

चौथे दिन वे प्रतिवेदन ले कर मुख्य मंत्री से मिलने पहुंचे. मुख्य मंत्री अन्यत्र व्यस्त थे. अतः उस दिवस नहीं मिल सके. पांचवें दिन भी नहीं मिल सके. और छठे दिन भी.

सातवें दिन मुख्य मंत्री मिले, सिर्फ तीन मिनट के लिए. उन्हें आश्चर्य हुआ कि उनके सूचना देने के पूर्व ही मुख्य मंत्री को घटना की पूरी खबर थी. उन्हें तब और भी अधिक आश्चर्य हुआ जब उनके प्रतिवेदन को उपेक्षा से थामने के बाद उनके उत्तर की जगह मुख्य मंत्री स्वयं ही प्रश्न करने लगे. उन्होंने कहा—महंगाई को रोकने में जो आप लोगों ने टांग अड़ाई है, क्यों न इस अपराध में आप लोगों पर कानून-भंग का मुकदमा चलाया जाय?

वे बुरी तरह हतप्रभ हुए क्योंकि उन्होंने जो कदम उठाया था, वह सरकार के महंगाई विरोधी वक्तव्यों और जन-सहयोग के आह्वानों से उत्साहित और प्रेरित हो कर ही.

आठवें दिन मार्केट की पूरी दुकानें खुल गयीं और दुकानों के मालिक पहले से ऊंचे भाव में चिल्ला-चिल्ला कर सामान बेचने लगे. जनता खुश थी तो इसलिए कि उसकी जरूरत के सामान मिलने लगे थे, और असंतुष्ट थी तो इसलिए कि युवकों के बचकाने आंदोलन के कारण वस्तुओं के मूल्य पहले से ज्यादा ऊंचे हो गये थे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबिरा खड़ा बजार में (१६)

• हरिशंकर परसाई

इस बार कबीरदास की भेंट डाक्टरों से

कबीरदास राजनेताओं से मिलता था. मजे की बातें होती थीं. राजनारायण सिंह से मिलने का मजा गया नहीं था. सोच रहा था कि गुजरात जाऊं या बिहार जाऊं. पर एक गैर-राजनैतिक काम में फंस गया--मानवीय काम में. इसका यह मतलब नहीं कि राजनीति अमानवीय होती है. पर यह एक व्यक्तिगत काम आ गया.

मैं बाहर निकला, तो कनछेदी बरामदे में बैठा दिख गया. कबीर ने पूछा--कहो कनछेदी, क्या कर रहे हो?

कनछेदी ने कहा--कुछ नहीं. आसमान में मानसून की राह देख रहे हैं और फिर छत को देखते हैं. मानसून अच्छा, आये, तो किसान से ले कर कृषि मंत्री तक खुश होते हैं पर मेरा दिल बैठने लगता है. सारा घर टपकता है. हर बरसात में लगता है कि अब घर की जगह झील बन जायेगी.

मैंने कहा--तो मरम्मत कराओ.

कनछेदी ने कहा--मरम्मत तो कराता हूं. पर छत हो तो उसकी मरम्मत हो. यह जो है, छत दिखता है, पर छत है नहीं. एक छेद ढांको तो दूसरा खुल जाता है--जैसे सरकार एक पोल ढांकती है, तो दो नयी खुल जाती हैं. देखो, तुम्हारी ही झीनी-बीनी चदरिया है. अगर वह फट कर तार-तार हो जाये, तो पैबंद कहां लगाओगे?

कबीर ने कहा--सो तो ठीक है, कनछेदी! इस देश की चादर भी तार-तार हो गयी है. देश के भाग्य-विधाता चादर बदलना नहीं चाहते. उसी तार-तार चादर में पैबंद लगाने की कोशिश करते हैं. खैर, तुम दूसरा मकान ले लो.

कनछेदी ने कहा--साधु, तुम होगे ज्ञानी, पर दुनियादारी नहीं समझते. सस्ते अच्छे मकान सरकारी नौकरों को मिल जाते हैं. वे 'रेंट कंट्रोल' में आते हैं. नये मकान का किराया अपने बस का नहीं. एक नये मकानवाले से पूछा तो उसने कहा--यह मकान तुम्हारे लिए नहीं है, सरकार के लिए है. तुम हद से हद सौ रुपये दोगे, पर सरकार किसी दफ्तर के लिए पांच सौ में ले लेगी. सरकार की तरफ से कोई मोलभाव नहीं करता, क्योंकि किराया अफसर की जेब से नहीं जाता. खैर, इस बरसात में मकान गिर जाये और मैं दबकर मर जाऊं, तो यहां तुम 'कनछेदी स्मारक' बनवा देना. जीते जी जो नहीं मिला, उसे मर कर ले लूंगा. पर तुम कहां जा रहे हो?

मैंने कहा--कनछेदी, अपने अखाड़े का यह भगत है न, रामदास, उसके इलाज का इंतजाम कराने जा रहा हूं. उसके पेट में जोर का दर्द उठा और सुना, वह अस्पताल में भर्ती हो गया है.

कनछेदी ने कहा--गोया डाक्टरों के चक्कर में पड़ गये! अरे, रोग से आदमी बच जाता है, पर डाक्टरों से नहीं बचता. इधर एक बड़ा डाक्टर है. पिछले साल मेरे चचेरे भाई बीमार पड़े. उस डाक्टर को बुलाया. जब तक डाक्टर पहुंचे, भाई मर चुका था. पर डाक्टर ने उस मुर्दे को ही एक इंजेक्शन दे दिया और ३५ रुपये ले लिये. खैर, जाओ. साधु समझ कर कुछ दया कर दें.

* *

कबीर अस्पताल पहुंचा, तो देखा रामदास वा[र्ड] के सामने एक झाड़ की छाया में पड़ा कराह रहा है. मेरा खयाल था, वह भरती कर लिया गया होगा. मैंने पूछा--क्यों रामदास, वार्ड में भरती नहीं हुए?

रामदास ने कहा--भरती करते ही नहीं हैं. कहते हैं, बेड खाली नहीं है. मेरा तो पेट फटा जा रहा है.

मैं वार्ड में गया. देखा, सात-आठ बेड खाली हैं. कबीर भरती करनेवाले डाक्टर के कमरे में पहुंचा. वहां दरवाजे पर एक चपरासी बैठा बीड़ी पी रहा था. उसने मुझे भीतर जाने से रोका. मैंने झट झोले में से गांजा निकाला और उसे देते हुए कहा--क्या कोरी बीड़ी पी रहे हो! यह लो गांजा! थोड़ा गीला करके मलकर बीड़ी में भर लो और कश खींच कर बोलो--लेना हो शंकर!

उसने कहा--वाह महात्मा, क्या परसाद दिया है! कल से ये खतम हो गया था. जाओ, भीतर जाओ, महाराज!

वह गांजा मलने में लग गया. मैं भीतर घुस गया. डाक्टर नीचा माथा किये, अपने आप कह रहे थे--क्या डल सीजन है! साला 'हेल्दी सीजन' चल रहा है. प्रैक्टिस आधी रह गयी है.

डाक्टर साहब ने सिर उठाकर मुझे देखा और मुंह से कहा--कौन हो जी? किसने आने दिया? हर को[ई] साधु, भिखमंगा चला आता है! क्या काम है?

मैंने कहा--एक रामदास नाम का आदमी झाड़ के नीचे पड़ा है. उसे भरती कर लीजिए न!

डाक्टर ने कहा--बेड खाली नहीं है.

मैंने कहा--मैं खुद देख कर आ रहा हूं कि सात-आठ बेड खाली हैं.

डाक्टर ने खीज कर कहा--होंगे खाली! पर वे बेड उसे लेते नहीं हैं, तो मैं क्या करूं? जिस बेड [को] डालो, वही उछालकर फेंक देता है. जाओ, तुम्हीं कि[सी] बेड को मना लो!

मैंने पूछा--मरीज आप तय करते हैं या बेड?

डाक्टर ने कहा--बेड तय करता है. क्या करता यह तुम्हारा मरीज?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा—गरीब आदमी है. थोड़ी-सी खेती है.

डाक्टर ने कहा—गरीब है तो घर पर क्यों नहीं मरता? इधर मरने क्यों आया? वह भरती नहीं होगा.

कबीर को क्रोध आ गया. मैंने कहा—मैं आपकी रिपोर्ट करूंगा.

डाक्टर ने कहा—किससे रिपोर्ट करोगे? इस दुनिया में तो कोई सुननेवाला नहीं है! तुम्हारी तो भगवान ही सुनता है. पर भगवान को मैंने अभी ताकत के इंजेक्शन दिये हैं. और पिछले साल जब शंकर को 'टाइफाइड' हुआ था, तब मैंने ही उन्हें 'क्लोरोमाइसटीन' दी थी. तुम्हारी सुनेगा कौन? निकल जाओ यहां से!

कबीर बदहवास कमरे से बाहर निकला.

तब वही चपरासी जो गांजा फूंक चुका था, मिला. उसने कहा—गुरू, ऐसे काम नहीं होगा. डाक्टर साहब के बंगले जाओ—और कुछ 'कलदार' टेंट में लेकर जाओ. तब बेड खाली होगा.

मैंने रामदास से कहा—थोड़ा धीरज रखो. शाम तक सब ठीक हो जायेगा.

* *

मैं बड़ा दुखी लौटा. तभी कनछेदी आ गया. पूछने लगा—कहो, कैसा है रामदास?

मैंने कहा—झाड़ के नीचे पड़ा तड़प रहा है. भरती नहीं किया गया.

कनछेदी ने कहा—तुमने ऊपर रिपोर्ट क्यों नहीं की?

मैंने कहा—रिपोर्ट किससे करता? सबसे ऊपर तो भगवान है. पर डाक्टर कहता है कि भगवान खुद मुझसे ताकत के इंजेक्शन लेते हैं.

कनछेदी खूब हंसा. कहने लगा—भगवान को भी ताकत के इंजेक्शन लगते हैं? वाह रे भगवान! देखो कबीर, कल जब अस्पताल जाओ तो रामदास के कफन-दफन का इंतजाम कर के जाना. हमेशा इस तैयारी से अस्पताल जाना चाहिए.

मैंने कहा—नहीं कनछेदी, मैंने आशा नहीं छोड़ी है. शाम को डाक्टर से बंगले पर मिलूंगा. भगवान से ऊपर भी एक सत्ता है.

—तुम्हारे पास सौ रुपये होंगे?

कनछेदी ने कहा—दो सौ ले जाओ. पर उस गरीब रामदास को बचाओ.

* *

शाम को कबीर बड़े डाक्टर के बंगले पहुंचा. बंगले के बाहर फाटक पर एक तख्ती लगी थी—'कुत्ते से सावधान!' मेरा खयाल था, इस बंगले में आदमी रहता है! पर मैं घुस गया. कुत्ता भयंकर था, पर एक बार गुर्रा कर शांत ही गया. यह ज्यादा समझदार निकला.

डाक्टर के कमरे में घुसा. उनके सामने फार्मों की एक थप्पी लगी थी. वह उन्हें देख कर दस्तखत करते जा रहे थे.

मुझे देखकर भड़क पड़े—तुम फिर आ गये भिखमंगे! मैंने कह दिया न कि वह तुम्हारा रामदास भरती नहीं होगा.

मैंने जेब से पचास रुपये निकाल कर रख दिये. कहा—यह बात करने की फीस है. ये जो फार्म है, काहे के हैं?

डाक्टर ने कहा—ये 'रिइंबर्समेंट' के फार्म हैं. तुम इस कठिन काम को क्या समझोगे?

मैंने कहा—समझता हूं. सरकारी नौकरों और उनके परिवार के इलाज के बिलों पर आप दस्तखत कर रहे हैं. मैंने ऐसे सरकारी नौकर भी देखे हैं, जिनके बीवी-बच्चे सब लगातार हर महीने बीमार रहते हैं. पता नहीं, ये मरते क्यों नहीं! यह आपके इलाज की क्या कृपा है, परिवार बीमार पड़ा है, दवा केमिस्ट की अलमारी में है, डाक्टर घर बैठा है—बस, सिर्फ बिल बन रहे हैं. इसी दवा से लोग स्वस्थ हो जाते हैं. यह तो विज्ञान नहीं जादू है!

अब डाक्टर चौंका. बोला—तुम कौन हो जी? क्या तुम सी. बी. आई. के आदमी हो?

मैंने कहा—हुज़ूर, मैं जानता ही नहीं कि सी. बी. आई. क्या है! मैं तो भीख मांगने वाला हूं. भीख मांग कर पचास आपको दिये. पर मैं यह मानता हूं कि आपके ऊपर इन फार्मों का ही इतना बोझ है कि इलाज करने या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

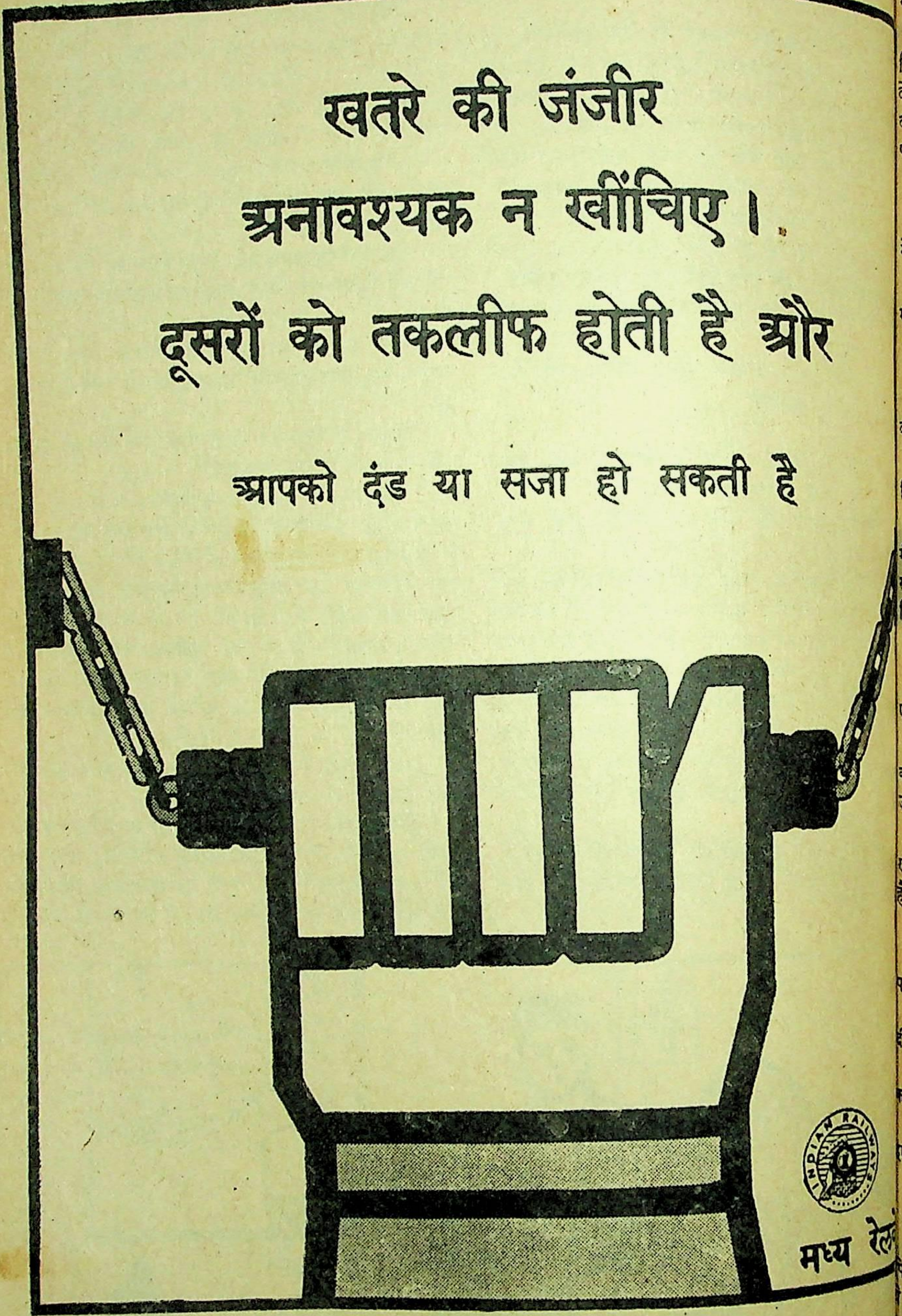

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरीज की तरफ ध्यान देने का आपको समय नहीं मिलता. आप सचमुच दया के पात्र हैं. आप पर इनकम-टैक्स चोरी का मुकदमा चल रहा है और वह फौजदारी भी है. जमानत का इंतजाम तो कर लिया होगा वरना मैं भीख मांग कर जमानत ले लूंगा. आप देवता हैं.

डाक्टर घबड़ाया. उसने मुझे पचास रुपये वापस किये. फिर भीतर गया और पांच सौ रुपये लाया. मुझे देकर कहा—यह और लो. मैं सब समझ गया. कल रामदास की भरती कर लूंगा. बाकी कृपा बनाये रखना. पर आपका 'रैंक?' पद?

कबीर ने कहा—सुपरिटेंडेंट स्पेशल ब्रांच.

डाक्टर ने कहा—अरे बाप रे! आप जाइए! जरा मेरे कुत्ते से बचकर जाइए.

मैंने कहा—कुत्ता आपसे ज्यादा समझदार है. उसने मुझे छेड़ा ही नहीं. कुत्ते भी तरह-तरह के होते हैं.

* *

लौट कर कबीर ने कनछेदी से कहा—लो अपने दो सौ. ऊपर से डाक्टर के दिये पांच सौ मेरे पास हैं.

कनछेदी ने पूछा—डाक्टर ने तुम्हें रुपये क्यों दिये?

मैंने कहा—कनछेदी, हर चादर मैली है. पहले 'मूरख' मैली करता था, अब बुद्धिमान मैली करता है. डाक्टर समझा कि मैं सी. बी. आई. का आदमी हूं और उनके हिसाब की जांच करने आया हूं.

खैर, दूसरे दिन रामदास भरती हो गया.

मैंने उसके वार्ड के डाक्टर से कहा—इसके पेट का एक्सरे करा दीजिए.

उसने कहा—तुम क्या डाक्टर हो? आ गये एक्सरे कराने! एक्सरे मशीन इनकार कर रही है. जाओ मनाओ उसे!

कबीर गया और एक्सरे मशीन के चरणों पर पचास रुपये रख कर कहा—हे देवि, तू मान जा. यह तेरी भेंट है. अब तू गरीब रामदास की फोटो उतार दे.

मशीन खुश हो गयी. रामदास का एक्सरे हो गया.

मैंने पूछा—डाक्टर साहब, क्या मशीनों में विल पावर (इच्छा शक्ति) होती है?

वह मेरी तरफ देखने लगा. मैंने कहा—जवाब दीजिए.

उसने कहा—तुम हो कौन जो इस तरह की बातें करते हो? तुम कहीं. . .

मैंने कहा—यों ही गंवार हूं. पर एक बात तो बताए—इनकम टैक्स में तो आप नहीं फंसे हैं?

उसने कहा—तुम्हें मतलब?

मैंने कहा—कोई मतलब नहीं.

डाक्टर थोड़ी देर एक कोने में खड़ा सोचता रहा. फिर आ कर मुझे पचास रुपये वापस किये और कहा—ले जाओ. तुम शायद 'वो' हो.

अब [illegible] ठीक चलने लगा.

पर एक दिन रामदास को बेहद दर्द होने लगा. मैंने एक डाक्टर से कहा, तो उसने जवाब दिया—वह डाक्टर प्रसाद का पेशेंट है. मैं नहीं देखूंगा.

मैंने कहा—अगर वह मर रहा हो तो?

उसने कहा—तो मर जाये. डाक्टर प्रसाद का केस है. वही बदनाम होगा.

किसी तरह रामदास ठीक हो गया. तब मैंने डाक्टरों से कहा—मैं कबीरदास हूं—संत कवि!

वे चौंके—अरे वही संत कबीर—'घूंघट के पट खोल रे, तोहे पिया मिलेंगे' वाले!

मैंने कहा—हां वही. पर तुम्हारे घूंघट के पट कब खुलेंगे?

* *

रामदास घर लौट गया.

कनछेदी ने कहा—कहो कबीरदास, अब क्या सोचते हो?

मैंने कहा—सोचता क्या हूं! गालिब को याद करता हूं—

पड़ जाइए बीमार तो कोई न हो तीमारदार,
और जो मर जाइए तो नोहाख्वां कोई न हो।

कनछेदी भी काइयां है. कहने लगा—यह कैसा रहेगा?

लाई हयात, आये, कजा ले चली चले,
न अपनी खुशी आये थे, न अपनी खुशी चले।

कबीर ने कहा—अच्छी बात है, कनछेदी! अच्छा, 'गुड मार्न, डाक!'

कनछेदी ने कहा—यह 'गुड मार्न डाक' क्या है जी?

मैंने कहा—कनछेदी इसका मतलब है—गुड मार्निंग डाक्टर! एक-दूसरे से सब ऐसा ही अभिवादन करते हैं. यह अंगरेजों के जमाने से चला आ रहा है. अभी हिंदी-वीरों का ध्यान इस तरफ नहीं गया.

कनछेदी उठा. बोला—अच्छा, गुड मार्न डाक!

मैंने कहा—कनछेदी, फिर तुम गलती कर गये. जाते वक्त यह नहीं कहा जाता. □□□

पाठकों के लिए एक सूचना

सारिका के मई १९७५ अंक की सज्जा अप्रैल अंक की तरह ही प्रख्यात चित्रकार जे. पी. सिंघल के चित्रों की पारदर्शियों द्वारा की गयी थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सलाखों के आरपार

उषा व्यास 'छवि'

बूंदों की बांसुरी में मल्हार की तरह ढल-ढल कर आसमान चुप हो गया है. बंद फुहारों के ठहरे पानी में कांपती होटल की बत्तियां. रोशनी की रंगीन लहरों पर थिरकती थर्ड फ्लोर से आती रवींद्र संगीत की ध्वनि. झूल-झूल कर बत्तियां झाड़ते युक्लिप्टस. उनकी लंबी हिलती परछाइयों के बीच उड़ती जुगनू की हरी लकीर. नीचे लान में बच्चे खो-खो खेल रहे हैं.

—रघू. . . ऽ ऽ ऽ! जाने कहां मरा रहता है सारे दिन और यहां यह हालत. . . !

शैलाभ का तल्ख स्वर सुन कर चौंकती हूं. शायद आज फिर कुछ. . .

—क्यों रे, सुनता क्यों नहीं? सौ बार कहा. अंधेरे में छिप कर आज फिर बीड़ी पी रहा था? कितनी बार मना किया. उधर चल कर देख, रसोई में तेरा सिर जल रहा है, कमबख्त! सारी सब्जी जल कर बेकार हो गयी! खजुआ कुत्ता आज फिर सारा दूध पी गया. फर्श पर फूटे बरतनों का ढेर लग रहा है. इस घर में यही कुछ होगा अब. . . ?

तड़ाक् से उसके गाल पर तमाचा देते हुए वह फिर गरजे—धोबी कपड़े लाया था?

—हूंजी. रघू मिमियाया.

—तो तुमने उसे मेरी खोयी कमीजों के लिए क्यों नहीं कहा? ऐसे हो तुम सच्ची, हथेली पर छाले की तरह रखो, तो भी ढंग का काम करना नहीं जानोगे! और वाणी तो इस निकम्मे छोकरे पर यों जान छिड़कती है, जैसे मर वो खुद नहीं यह रहा है! हुंह. . .!

टैरेस पर खड़ी उनकी खूबसूरत असिस्टेंट मीनल पांडेय साड़ी का छोर घुमा कर कंधे पर फैलाते हुए कह रही थी—चलो, छोड़ो भी अब. . .! तुम भी क्या औरतों की तरह झल्ला रहे हो! जब भी कभी आओ तुम और तुम्हारा नौकर मिल कर बोर करते हो! चलो, मुझे स्टेशन छोड़ आओ.

—इतनी जल्दी? अभी तो सिर्फ सात बजे हैं. तुम्हारी ट्रेन छूटने में पूरे दो घंटे और. . .

—तब तक कहीं काफी पी कर थोड़े घूम लेंगे.

लेटे-लेटे सब सुनती हूं. पसीने से नम दोनों मुट्ठियां खोलती-बंद करती हूं. एक शब्द. . .एक शब्द नहीं बोला जाता मुझसे. लगता है, अभी बाहर रसोई में बिस्फोट का जोरदार धमाका होगा. आग लगेगी. एंबुलेंस आयेगी. मैं डबडबायी आंखों से हमेशा के लिए बेकार हो गयी टांगों को घूरने लगती हूं. पहियों पर घूमती जिंदगी का अहसास विद्युत की तीव्र लहर-सा जिस्म में सरसरा उठता है.

कमरे में अंधेरा है. कोई बत्ती जलाने नहीं आया. अंधेरे में कार्निस पर रखी कनु की गुड़िया की बटनों वाली आंखें धीरे-धीरे दिप उठती हैं. कुरसी फिसलाते-फिसलाते स्विच बोर्ड तक आती हूं. हाथ ऊपर नहीं पहुंचता. उठना चाहती हूं, पर पट्टियों से ढपे ठंठ-से पांव सह... नहीं देते. अपनी निरीह तिलमिलाहट के ज्वार में डू... डूबने को हो आती हूं. ओह! चाह कर भी मैं अपने... को रोशनी नहीं दे सकती!

बाहर सिसकारी भरने के दबे-दबे स्वर उभर... हैं. रघु रो रहा है शायद. वह इनसे बात-बेबात अ... पिट जाता है. आज फिर पिट गया.

कमरे में अब भी अंधेरा है. रघू को पुकारना चा... हूं, पर बोल मेरे गले में ही अटक गये हैं. सारी आ... भीतर-ही-भीतर जम गयी हैं. . .यही क्या, जैसे जि... की पीठ पर किसी ने बेरहमी से कीलें ठोक दी हैं. कि... बार सोचा है, काश, सामने की, सड़क की ओर खु... वाली खिड़की की सलाखें न होतीं. . .

—जल्दी चलो, शैल, नहीं तो पानी बरसने लगे... मीनल कह रही है.

—रुको, वाणी के कमरे में अंधेरा है, उधर ... जरा रोशनी. . .

अपने कमरे में रोशनी करने आ रही शैल की पहच... पदचाप सुनने लगती हूं. एक अरसे के बाद उन्हें ... सामने, अपने पास देख पाने की लालसा. . .एक विचि... सी पुलकन से मन भर उठता है. आह!

पर नहीं, वे दरवाजे तक आते-आते रघू को पुका... वापस लौट गये हैं!

—रघू! उधर कमरे में बत्ती जला आओ. ... सुनो, अब चौके में बैठ कर बीड़ी नहीं पीना. क... कनु? पकड़ कर लाओ और दूध पिला कर सुला दो. ... दिन ठंड में घूमती है. डाक्टर आयें तो वाणी के लिए ... सारी दवाएं और इंजेक्शन उनको दिखाना. समझे?

—हूंजी, रघू ने सिसक कर कहा.

सड़ाक्-से स्टडी का दरवाजा भिड़ने और ... उतरने की ध्वनि क्रमशः लुप्त होती चली गयी है.

सलाखों के पार सड़क पर देखती हूं. शैलाभ ... का हाथ थामे मुग्ध भाव से चले जा रहे हैं. वह ... रहे हैं और वह हंस रही है. पुरुष को आकर्षण में ... रखने की अपनी असमर्थता और अपमान की तीव्र ... भूति कहीं गहरे बींध गयी. अच्छा है, बत्ती बंद है, ... तो. . .नहीं तो. . .एक विवश आक्रोशजनित पी... स्याह पड़ता अपना जिस्म क्या देख पाती!

मेरे दोनों हाथों में सलाखें कसती चली जा... मैं पूरी शक्ति से उन्हें मोड़ना चाहती हूं. वे नहीं ... हार कर, सिर उन पर पटक कर वहीं बैठी रहती ... मौन, हतप्रभ, करुणाकुल, आंखों में छलछलाहट ...

रघू ने आ कर चुपके-से बत्ती जला दी है. ... छिपाते हुए आंखें पोंछ डालती हूं. वह पास आ कर ... मोड़ता है. पलंग पर लेटने में मेरी सहायता ... फिर कुर्सी को कोने में ठेल कर पलंग की पाटी ... मेरे सामने चुपचाप खड़ा हो जाता है. देखती हूं, ... होठ भिचे हुए हैं. आंखें सूजी हुई. दायें गाल ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

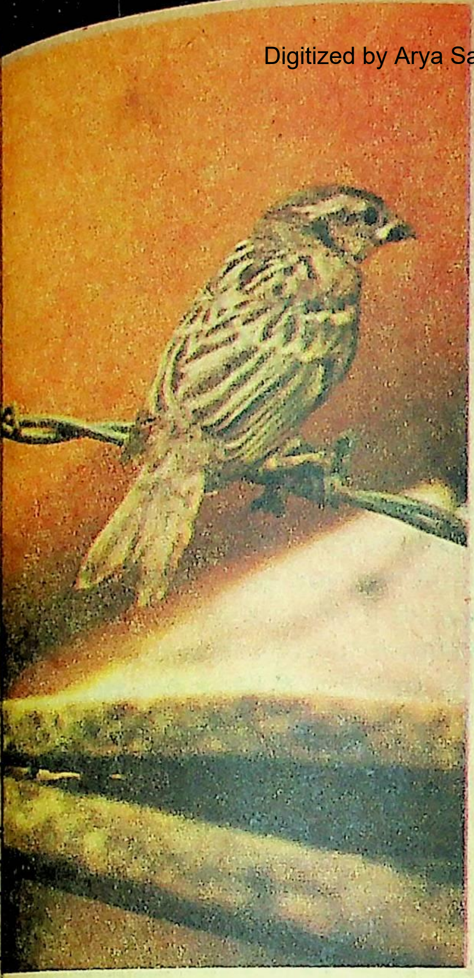

● महेंद्र

सुर्ख लंबे निशान. . .

—क्यों, रघू, क्या बात है?

—बी-बी-जी, अब मैं यहां नहीं रह सकता. . .! वह फूट-सा पड़ा.

—क्यों, क्या हुआ?

—बाऊजी. . .बाऊ. . .ने आज फिर मुझे. . .! उसकी आवाज सिसकियों में बिखर गयी है.

मैं उसे पास खींच कर गले से लगा लेती हूं. उसका गाल सहलाते हुए फफक पड़ती हूं—रघू, तू भी चला जायेगा, तो मुझे कौन देखे-भालेगा पगले!

वह कुछ नहीं बोलता. हिचकियों के वेग में डूबते उतराते संवेदना का सांझा पुल हमें जोड़ जाता है.

* *

नंगी बांह पर कुच्च् से सुई खुभो कर डाक्टर ने जब स्पिरिट का फाहा जोर से दबा दिया, तो पलकों पर ठहरी पारदर्शी तराइयों के परे मैंने देखा, बाहर बरामदे में कुर्सी पर बैठी कनु ने अपने दोनों नन्हें हाथ आंखों पर रख लिये थे. वह इंजेक्शन से बेहद डरती है. जब से उसने पहचानना, 'मां' कहना शुरू किया, कभी मुझे चलते नहीं पाया. तभी से उसके अबोध मन में एक वहम-सा पल गया है कि मेरे पैर ही नहीं उगे. जानते हुए भी बावलों की तरह पूछ बैठती हूं—डाक्टर साहब, क्या सचमुच अब मैं कभी नहीं चल सकती?

मेरे होठों पर फैलती सिसकियों की बेतरतीब लहरों को निहायत ठंडी कोमलता से छू-छू कर सहलाते डाक्टर माथुर कह देते हैं—आपके रोने से तो बच्ची और भी डिप्रेशन फील करेगी, मिसेज थापर! उसके सामने तो कम-से-कम आपको ऐसा नहीं करना चाहिए. . .जस्ट शी इज ए बर्ड टू लल योर ग्रीफ. . .! फिर कनु को गोद में ले कर चुमकारते हुए बोले—अच्छे बच्चे तो कभी नहीं रोते हैं बेटे, तुम तो रानी गुड़िया हो! हमारे घर एक बहुत प्यारा खरगोश है. रघू के साथ देखने आना अच्छा! जेब से चाकलेट निकाल कर उसे थमाया और उसे वापस कुर्सी पर बिठा कर लौट गये.

खट्-खट्-खट् खट्-खट्-खट्. . .

सारे दिन कमरे में पड़े-पड़े कई-कई बार चढ़ने-उतरने वाली अलग-अलग ध्वनियों से खासी पहचान हो गयी है.

दस बज चुके हैं. शैलाभ अभी भी नहीं लौटे. कनु सो चुकी है. सारे घर में व्याप्त एक निगल लेने वाला मौन और उसमें टूटते-जुड़ते सिर्फ मैं और रघू. तेरह बरस के इस भोले-से भद्रवाही बालक के साथ मुझे एक अज्ञात-सा मोह है. कदाचित इसलिए भी कि इसकी शक्ल टीपू से काफी मिलती है.

पगला, टांगें दबाते-दबाते ही सो गया! नींद में झूम रहे उसके माथे को देख कर मुझे एक अजीब दहशत-सी लग आती है, जैसे वह अभी नीचे फर्श पर गिर जायेगा. उसके नाक-मुंह से स्याह खून की धार फूट पड़ेगी और रघू मर. . .कंधा झकझोर कर जगा देना चाहती हूं.

—रघू, नीचे दरवाजा बंद कर आओ और अंदर जा कर आराम से सोओ!

वह हड़बड़ा कर आंखें खोलता है और जल्दी-जल्दी मुझे कंबल ओढ़ा कर उठ पड़ता है.

शैलाभ अभी भी नहीं लौटे. उनमें कहीं भी मानवीय संवेदना नहीं बची है. उनके लिए रोज मेरी प्रतीक्षा अकारथ हो जाती है. बाहर से लौट कर वह चुपचाप अपने कमरे में चले जाते हैं. कभी ढंग की बात नहीं करते. ओह, शादी के बाद किसने सोचा था कि मेरा सहसा विकलांग हो जाना हमें एक-दूसरे के प्रति इतनी जल्दी अपरिचित-अनसमझा कर देगा!

ओह, सलाखों से जुड़ी, टूटी पथरीली दीवार-सी यह कोरी जिंदगी और यह भिखमंगे दिन. . .! आंखों में अजीब-सी चिनमिनाहट-सी लग रही है. पलकें मूंद लेती हूं. . .पता नहीं, काली भूरी-उभरती गोलाइयों में कैसी कैसी तसवीरें बनने-बिगड़ने लगी हैं.

* *

लगातार पांच दिन सौर में कड़ुवे तेल का दिया जलते रहने के बाद घर में मेहमानों का आना शुरू हो गया था. उस दिन मुझे बहुत सवेरे ही नहला-धुला कर नये कपड़े पहना दिये गये थे. सारे गांव में खीर-बताशे बंटने से पहले हमारे यहां बेशुमार पकवान बने थे, जिनका भोग सबसे पहले कोठरी में चांदी की चौकी पर रखी मैली जंग लगी सांकलों के जुत्थ को लगा था जिन्हें बापू अपने पुरखे बताते थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोबर से लिपा आंगन, आटे का पुरा चौक. नाक में बड़े-बड़े हरे मोतियों वाली बेसर पहने दूध से भरी भरी छातियां लिये चंदन की चौकी पर फुलकारी ओढ़े बैठी मां. उसकी गोद में कच्चे सूत के डोरे लपेटे नन्हे-नन्हे हाथ-पैर हिलाता नवजात शिशु. सारे माहौल में तैरती उबटन संठोल, कड़छुल में दहकते कोयलों पर तिनतिनाती कच्ची अजवाइन की महक. मां के दूध घुले बालों में रेशमी डोरे गूंथती, ठिठोली करती नाइन और बिहाई गाती औरतें. मुझसे छह वर्ष बाद मेरे यहां भाई हुआ था.

पाशी की अम्मा ने कहा— बड़ी मागें आली ऐ कुड़ी कंजक! जी घरे आली दी कुक्ख गै सुन्ने दी होई जे पुत्तरे दा मुंह दिक्खेया! बड़ी सच्ची रे सुकराला देबी जिन्न ऐह जीव बक्स्केया! पीढ़ियां तरी जागन. . . पीढ़ियां. . . .! सुने करना बदरी नाथ. . .! तब हर्षविभोर बापू ने अपने दोनों जुड़े हाथ माथे से लगाते हुए कहा— तेरा गै पुन्न परताप ऐ भामी! खबरै कोदी असीस लग्गी कहेड़ा पुन्न सहायी होआ. ऐह तेरे पैरें दी मैल. . . .तेरे पैरें दी. . .

और मां की हल्दी रंगी हथेलियों पर भीगे चने, चावल, दूब रखते-रखते मैं सोच रही थी कि क्या यह असीस दो साल पहले ठाकुरद्वारे में आने वाले अंधे एक साधू की असीस थी, मां जिसकी रोटी बनाती, बरतन मलती, कपड़े खंगालती और जिस्म में पड़े सफेद दुमदार कीड़े निकालती घाव पोंछती थी. पास से गुजरने वाले लोग मारे दुर्गंध के नाक पर कपड़े का दब्बू रखते, मां को घूरते चुपचाप निकल जाते थे.

उन्हीं दिनों हमारे गांव में भगवती का जगराता करने वालों की मंडली रामकोट से आयी थी. दो प्रतिद्वंद्वी टोलियों के होड़ लगी, तो रात भर ढोलक बजाने में मां के हाथों पर छाले कितनी बार उठे और फूटे, पर उसने अपने गांव की इज्जत नहीं जाने दी. शादी ब्याह में भी कभी उसे नाचना-गाना होता, तो उसके गले और पैरों में कैसी घिरनी बंध जाती थी! पर बापू को कभी यह सब पसंद नहीं आया था.

गांव के आखिरी सिरे पर कच्ची-सी बैठती दीवारों का हमारा छोटा-सा घर. पिछले पीतल के सैलाब की तरह फैली हुई दोपहर. पिछवाड़े में बंधे मिमियाते मेमने. ओखली पर धरे मिट्टी के प्यालों में पड़े पानी के पंख फुला-फुला कर नहाती चिड़ियां. खाट पर लेटे-लेटे पोपले होंठ हिलातीं, सुमिरनी पर उंगलियां चलातीं नेत्रहीना वृद्धा देवकी बुआ. अंधेरी कोठरी में एक अरसे से दुकान बंद किये खांस-खांस कर कराहते पीलियाग्रस्त बापू. अंगन में फैली कचनार और सुहांजने के फूले पेड़ों की छांव में पीढ़े पर बैठी चरखा कातती गाती मां—

बाजरे दीं राखी करी, डंगर चरायी करी,
चिड़ियां डुआई करी कियां कियां कत्तना।

* *

दशहरा के दिनों में जब गांव वाले बसोहली जाने की तैयारी कर रहे थे, मां ने मेरे लिये नया लहंगा-ओढ़नी बनवायी और दीपू के लिए तिल्लेदार टोपी सिलवायी थी. उन्हीं दिनों पुतली का तमाशा करने वालों ने आ कर चौगान में डेरे डाल दिये थे. सांझ होते सब चबूतरे पर इकट्ठे हो जाते और बड़ी रात गये तक तमाशा होता. काले भूत-सा लंबोतरा चेहरा, आंखों में ढेर-ढेर काजल डाले, पान रचे हौठों से पिपिहरी बजा कर चुलबुला बनवारी पुतलियां नचाता.

राजा का दरबार लगता. फूलों के हिंडोले में राजा की भेंट के लिए मोतीबाई उतरती. उसके घुंघरुओं की छम-छम के साथ कोने में बैठे म्यूजिक-मास्टर पाटे घुटनों पर रखी ढपली फटा-फट बजाये जाते. पर्दे के पीछे ढोलक की ढपक-ढपक के साथ औरतों के गाने की आवाज आने लगती, जिसमें तीखी मार करती मां की निराली मीठी आवाज अलग ही सुनाई पड़ती—
हवा में उड़ता जाये मेरा लाल दुप्पट्टा मलमल का. . .

इसके साथ ही चबूतरे पर बैठे लोगों में मां को लेकर होने वाली खुसर-पुसर शुरू हो जाती थी. उनकी बातों का पूरा अर्थ मैं नहीं समझ पाती थी, पर फिर भी उनका ऐसा करना कोंच जाता था.

दशहरा को सिर्फ दो दिन बाकी रह गये थे. उस रात मां बड़ी रात गये तक ट्रंकों की उठा-पटक करती रही थी. . . शायद बसोहली जाने की तैयारी में. वह मोटा ताला पड़ा काला ट्रंक, जिसके अगले हिस्से पर सुनहरी पालिश के दो बड़े मोर बने हुए थे, मेरे लिए जादू की पिटारी जैसा रहस्यमय हो गया था.

देवकी बुआ सो गयी थी. कोठरी में बापू को खांसी का बड़े जोर का दौरा उठा था. रह-रह कर वीच-वीच पुकार उठते— राज रानी, पानी पिला. . .!

मां ने बिना कोई उत्तर दिये चूल्हे की आग मंद करके पतीली नीचे उतारी. कांसे की दो नन्ही तश्तरियों में भात डाल कर मेरे और दीपू के सामने रख दीं. कितनी सुंदर थीं वे चमकती पेंदी वाली तश्तरियां, जिन्हें बापू पुरखों के पिंडदान के लिए कश्मीर से लाये थे.

हमें चटाई पर बिठा खाने का आदेश दे मां गली में चली गयी थी— तुम लोग खा कर चुपचाप सो जाना, मैं थोड़ी देर में आऊंगी. रोना नहीं. और हम मां की प्रतीक्षा में नींद में वहीं रात भर लुढ़के रहे थे.

अगली सुबह सेंध लगे घर का-सा उजड़ापन ले कर आयी थी. आंगन में जमा हो गये गांव भर के लोगों का हुजूम. उसके बीच बेसुध गिरे हुए बापू. सिल की तरह मौन बैठी हुई देवकी बुआ. भीड़ को देख-देख कर चीखता, गुस्से में, तश्तरी में बचे सूखे भात को मुट्ठी भर-भर लोगों पर फेंकता दीपू. उन बिखरे दानों पर कांव-कांव करते टूट पड़ते कौवे. टूटे किवाड़ की ओट में खड़ी मैं निपाट सूना पड़ा चौगान देख रही थी, जहां रात ही रात में पुतली वालों के डेरे उठ गये थे.

ढहे चूल्हे, बिखरे चीथड़ें और कागज बहता हुआ राख के ढेर. फटे प्याले और हंडियों के ढूह. उखड़े खूंटों के गड्ढों से धूल उड़ाते, रेंकते गधे. . . .

क्या मां सचमुच उन तमाशे वालों के साथ. . . .

* *

दवा-दारु के अभाव में बापू की तबीयत दिन-ब-दिन गिरने लगी. उनकी खुली-खुली मोटी पीली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बढ़ी हुई खिचड़ी दाढ़ी को ... करते रहती. वह पानी मांगते, गिलास दीपू के हाथ में थमा ... वह अपना नन्हा हाथ उनके हाथ ... अंदर धकिया देती. वह अपना नन्हा हाथ उनके हाथ पर फिरा कर कहता— बापू जी, अम्मा कदूं औग ? और वह बिना उत्तर दिये मुंह घुमा लेते. बड़ी देर तक बड़बड़ाते, मां को गाली बकते रहते.

सुबह होते ही दीपू फटे कागजों और छोटी-छोटी खपचियों का ढेर जमा करके मेरे पास बैठ जाता और हाथ जला-जला कर मेरी मदद करता.

हम लोग उजड्ड और आवारा हो गये थे. कड़ी दोपहर में भी जब देवकी बुआ सो रही होतीं तो हम उनकी पूजा वाली गिद्दी उठा कर खड्ड पर मछलियां पकड़ने निकल जाते. बरें पकड़-पकड़ कर उनकी माला बनाते थे. रोज शाम को घर लौटने से पहले ऊंचे टीले पर चढ़ कर बिलावर की ओर जाती हुई काठ के पुल को धड़धड़ाती बस को देखते, जो हर बार मां के आने की हमारी आस के भोले उजास पर पेट्रोल की गंध भरा धूल का गुबार छोड़ निर्दयता से अकड़ती हुई निकल जाती थी.

नीली-पीली लाल सिर और पूंछ रंगी भेड़ों के खेड़ कूद-कूद कर ढक्की चढ़ते. उनके पीछे चलती वह गद्दन कितनी खूबसूरत थी! गोरी-चिट्टी, लंबी. हजार कुशट के घाघरे पर लहराती फूलदार ओढ़नी. तेल से चप-चप माथे पर झूलती घने काले केशों की मीडीयां. कमर में बंधे रस्से. ढेर-ढेर गहनों से दिपता रूप. . . अपने गीति से मेले में आयी औरतों की बात कह रही थी, जिनके घाघरों ने उसके घाघरे की शोभा फीकी कर दी थी— ...रा दा चली तो मेरा घग्गरा लगा लाटी मुंजन. पलाह ...गे पुज्जी तां किश भुसला-भुसला लग्गै. मंज पुरे दे पुज्जी ...ां होई गेया बसो बस्स' . . .

गद्दी ने अपने झोले से दूध की बनी दो कलाड़ियां हमें दे कर जल्दी घर लौट जाने के लिए कहा था. चबूतरे के नीचे पहुंचते हुए दीपू चीख कर गिर गया. उसके नाक और मुंह से एकदम काले खून की धार फूट पड़ी. ओह, उसे तो सांप ने डस लिया था ! मेरी गोद में घर-घरा कर हिचकी लेते हुए उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले कर कहा— बोबो जी, अम्मा कदूं औग. . .? और मैं सहमी-सहमी-सी सूनीं आंखों से काठ का पुल देखने लगी थी.

उस साल मैंने राड़े नहीं बोये थे. मिंजर नहीं गूंथी थी. लोहड़ी पर हमारे लिए नारियल और सूखे मेवे के हार नहीं बने थे. दीपू का छज्जा यों ही कील पर सूना-सा टंगा रह गया था. उस पर हर साल की तरह कागज के फूल-पत्ते नहीं टंके थे.

दीपू के बाद जब बापू भी नहीं रहे, तो बुआ ने गुरो जी नवीस को बुलवा कर शहर चिट्ठी भिजवा दी. ...क गांव आ कर हमें साथ लिवा ले गये थे.

नौकरों के साथ काम में जुटी-जुटी उनके खूबसूरत ...मती पोशाकों में सजे चिड़चिड़े ढीठ बच्चे पीठ पर ...दे-लादे मैं बड़ी होने लगी. कितनी बेशरम थीं ताऊ ...के दोनों लड़कियां जूली और बुली ! वे अकसर मुझे ...ला-दिखा कर मिठाई खाती थीं. मैं उनके कमरे से

उषा व्यास 'छवि' डोगरी की नयी पीढ़ी की कथाकार हैं. उन्होंने आम आदमी की विवशताओं, सामाजिक और आर्थिक विसंगतियों के परिणामों को अपनी कहानियों में स्वर दिया है.

बाहर जाते ही खूबसूरत रैपर उठा कर बस्ते में रख लेती और अकेले में उनकी गुड़ियां बना-बना कर संतोष करती, खुश होती थी.

ओह, वे दिन ज्यादा भिखमंगे थे कि यह दिन ! निर्णय नहीं कर पा रही हूं. छाती में आवेग का गोला-सा उठ आया है.

आंखें खोल कर देखती हूं, बाहर पीला बेजान जमा हुआ-सा कुहरा फैला हुआ है. सलाखों के पार सड़क पर बुझे लैंपपोस्ट के नीचे खड़ा हो कर कोई सिगरेट पी रहा है शायद. अंधेरे में उसका सुलगता अगला हिस्सा अंगूठी के लाल मोटे नग-सा रह-रह कर चमक उठता है.

शैल अभी भी नहीं लौटे. कितनी रात हो गयी है ! शायद वह भी मितल के साथ उसके घर. . .रसोई का दरवाजा फिर खुला रख गया है रघू. बरतन गिरने और बिल्लियों के लड़ने की आवाज सन्नाटे में बड़ी डरावनी लग रही है.

★ ★

बाहर बर्फ के आंचल में लिपटी दूध में नहायी रात और भीतर अंधेरे में पलंग पर पसरा नीले कांच की बंद खिड़की से उतरता फिरोजी चांदनी का सिर्फ एक चौखटा. आधा कुतरा बिस्कुट मुट्ठी में भींचे पैताने सोयी कनु का चेहरा हलकी रोशनी में और भी मासूम लग उठा है. बावली है. जरा-सी उदासी भी भांप जाती है, तो गले में नन्हा-सा हाथ लपेट कर कहती है— अच्छे बच्चे तो कबी नहीं लोते ऐं ममी ! तुम तो लानी गुलिया हो ! दवा पी लो. तुमाले पैल उग दायें दे.

मैं उसके पैरों को नन्हे लाल जूतों से मुक्त कर उसे धीमे-से चूम लेती हूं !

कमरे की बत्ती भक्-से जली. शैलाभ थे. हाथ में दूध का प्याला लिये पास चले आये. बेहद खुश.

बोले— कैसी तबीयत है अब ?

—ठीक है. मैं अनमनी-सी कहती हूं.

—डाक्टर कहते थे, तुम जल्दी अच्छी हो जाओगी और उन्होंने दूध का प्याला मेरे सामने रख कर मेरे होठों को उंगली से छू दिया.

वह छुअन, जैसे तपते लोहे का टुकड़ा किसीने चुमो दिया हो. मन में टीसती हुई हूक उठी. सहसा अपने को संयत रखना कठिन हो गया. मन हुआ, चीख कर, पिछले दो सालों में सिर्फ आज तीसरी बार औपचारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीज़ब्रो-पॉण्ड्स इन्कॉर्पोरेटेड (सीमित दायित्व सहित यू. एस. ए. में संस्थापित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाल पूछने आये इस आदमी से कहूं—शैल, कहां है तुम्हारा वह आदमी, जो मेरी सारी अच्छाइयों-बुराइयों को एक साथ एकांतिक, एक निष्ठ प्यार करता था? वह आदमी, जिसे एक दिन कालेज से लौट कर ताऊ की भव्य हवेली की मखमली सीढ़ियां उतरते देख मेरी आंखों में ढेर-ढेर बादाम के फूल खिले थे! और वह आदमी भी क्या तुम्हीं थे, जिसने एक दिन मीनल के सामने मुझे 'सड़ी हुई मछली', 'एक अपाहिज औरत' कहा था?

—सुनो, कल कुछ मेहमान आ रहे हैं. तुम भी कोई ढंग की साड़ी-वाड़ी बदल लेना. कहीं वे तुम्हें देखने इधर ही न आना चाहें.

—कौन मेहमान? न चाहते हुए भी पूछ लेती हूं.

—मीनल के पेरेंट्स. कल यहां एक समारोह में आ रहे हैं. घर पर भी आयेंगे.

और वह सोयी हुई कनु को कंधे से लगा कर चुपचाप बाहर चले गये. मैं अवाक्-सी देखती रह जाती हूं. क्लाक के पीछे अधबना घोंसला. घोंसले में रुई-तिनके ले जाने के विफल प्रयास में तीसरी बार फर्श पर गिरी टूटी टांग की चिड़िया. जलते अगरु की सुवासित लकीर. फर्निस पर रखी शादी के बाद पहली बार शैलाभ के साथ खिची अपनी तसवीर.

★ ★

उधर बड़े वाले कमरे में से बरतनों की खनक, हंसी के ठहाकों में बातें करने की ऊंची आवाज अब थम गयी थी. बरतन वापस रसोई में ढोता रग्घू झलक गया. शायद वे लोग खाना खा चुके थे.

नितांत आधुनिक वेश-भूषा में सज्जित गरदन के पीछे हाथ घुमा कर बालों में फूल खोंसती औरत का सिर्फ आधा चेहरा ही मैं देख सकी. स्टडी में आलमारी के सामने खड़ी पूछ रही थी— इतनी किताबें! इतनी किताबें कौन पढ़ता है शैल? तुम्म?

—नहीं, वाइफ को ही शौक है. यह सब उनकी ही हैं. मेरे पास इतना वक्त. . .

—पर भई, हमारी मीनल को तो पढ़ने-लिखने का जरा भी शौक नहीं है. उसने तो जैसे-तैसे बी. ए. करके छुट्टी पा ली है. वह तो कहती है, नौकरी में मजे हैं ममी. इट्स ओनली वेस्टेज आव टाइम एंड मनी. . .

फिर एक ठहका. शैलाभ के साथ, छड़ी घुमा-घुमा कर फर्श पर टेकते वह सज्जन भीतर आ गये. भूरी आंखें. नाटा, भरा हुआ शरीर. कुंवारा सूत कात रहे ताजे भुट्टे जैसी मूंछें. एकदम गोरा रंग. सब मिला कर एक रोबीला व्यक्तित्व.

कानों में बड़े-बड़े आवेज पहने, गले में पड़े चौदह हीरों के कीमती नेकलेस को उंगलियों से छूती मीनल की मां थी. शैलाभ परिचय देते हैं— रुपेश डांसिंग क्लब के डाइरेक्टर मिस्टर कुमारन पांडेय और आप मिसेज राजुल पांडेय, द प्रोमिनेंट आर्टिस्ट. पिछले साल इन्होंने बैंगलोर में स्नेक डांस का बड़ा ग्रैंड शो दिया था.

अभिवादन में हाथ जोड़ते मुझे लगा, जैसे बिजली का बल्ब बार-बार जल-बुझ रहा है. ग्यारह बजे का अलार्म दे रहे क्लॉक का हिलता पेंडुलम मस्तिष्क पर हथौड़े की चोट-सा घन्ना उठा. आंखों में बड़े-बड़े रेतीले पत्थर उग आये.

—मां. . .! भीतर से एक चीख उगी और पाले की सर्द तह की तरह होंठों पर जम कर रह गयी. उंगलियों को तकिये में धसंते महसूस किया.

—वाणी, क्या बात है? इस तरह उधर क्या देख रही हो? तबीयत ठीक नहीं तो लेट जाओ. एक भीगी हुई ठंडी हमदर्दी में शैलाभ ने मुझे कंधे से पकड़ कर हिलाया और तकिया पीठ से टिका दिया.

वह औरत बिंदी पुंछ जाने के भय से पसीना पोंछने के लिए नन्हा-सा रूमाल धीरे-धीरे माथे पर फिराती पति के निकट जा खड़ी हुई. बोली— जल्दी चलो न, ग्यारह तो बज गये. हमारी ट्रेन छूट जायेगी. . .बहुत देर. . .

—ओ, सो सैड! बेचारी! मिस्टर पांडेय ने घूम कर एक दयादृष्टि मुझ पर डाली और पत्नी की पीठ पर हाथ रखे बाहर चले गये. पीछे-पीछे शैलाभ भी.

सहसा कुछ दबे-दबे-से बेहद धीमे स्वर सुनाई पड़े.

—वेल शैलाभ, तुम और मीनल अगर. . . कुछ शब्द सुनाई नहीं देते. . . फिर कुछ शब्द उभरते हैं—

. . .मिसेज को तो अच्छा है किसी अच्छे नर्सिंग होम में भिजवा दो. . . और बच्ची उसकी जिंदगी होस्टेल में रह कर ही बन सकती है. इस तरह तो बरबाद हो जायेगी. . .

—हां, यही ठीक रहेगा. मीनल की मां कह रही है—हमारी मीनल को तो घर में खुद पानी का गिलास ले कर पीने की आदत नहीं. . . .

उठ कर बैठ जाती हूं. लगता है, कच्चे दलान में ढेर सारा धुंआ फैल गया है. उस धुएं में मेरी सांस घुट रही है. कोठरी में बापू फिर कहीं जोर-जोर से खांस उठे हैं. . . राजरानी, पानी पिला. . .

दो तश्तरियों में फैला भाप उठाता भात सफेद दुमदार कीड़े बन कर मेरी टांगों के नंगे जख्म चाटने लगा है. चीख कर पुकारना चाहती हूं, रग्घू, मुझे बाहर ले चलो. .. मुझे बाहर. . . हांफते हुए गिनने लगती हूं, खट् खट् खटा-खट् खटा-खट्. . . . तीन जोड़ी पैरों की आहट सीढ़ियां उतर कर दूर कहीं आगे निकल गयी है. व्हील चेयर पर अपने को डालने की कोशिश में बार-बार सोच उठती हूं, काश, इस खिड़की की, सामने वाली खिड़की की सलाखें न होतीं! □□□

द्वारा, श्री दीनानाथ व्यास,
गांधी चौक, कठुआ
जम्मू (कश्मीर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

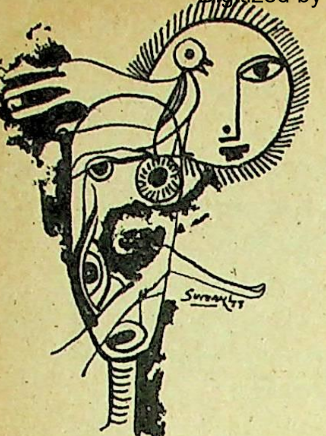

• चि. सुमन

काव्यपाठ और सरकारी आचार संहिता

• श्रीकांत चौधरी

राजा विक्रमार्क किसी कुर्सीवादी नेता की तरह दृढ़ प्रतिज्ञ था. उसने हठ न छोड़ा. वह फिर वापस गया और बैताल के शव को उतार कर कंधे पर डाला और अपनी इंपाला पर बैठ राजधानी की ओर रवाना हो गया.

बेताल का शरीर तो राष्ट्र को अर्पित हो चुका था—बेताल की अंतरात्मा अभी बची थी. उसने बोलना प्रारंभ किया—राजन्, मैं तुम्हें उस युग की कथा सुना रहा हूं, जब बड़े-बड़े आई. ए. एस. अफसर लोग न सिर्फ साहित्य समझने, वरन लिखने के मुगालते में रहने लगे थे.

ऐसे ही, इस प्रसंग में एक दिन की बात है कि एक मिनिस्टर ने शहर, गांव के हर ऐरीगैरी नत्थू खैरी चीजों का उद्घाटन करने के बाद 'निराला जयंती' पर अपने बंगले पर एक काव्य गोष्ठी का आयोजन कर डाला. मिनिस्टर साब स्वयं कवि नहीं थे, परंतु एक तो कविताओं पर 'वाह-वाह' बहुत तरीके से करते थे—दूसरे उन दिनों यह प्रचलन था कि जो भी मानव देहधारी काव्य गोष्ठी आयोजित कर ले वह हिंदी साहित्य का महान हितैषी और अपूर्व साहित्यप्रेमी मान लिया जाता था. मिनिस्टर साब के यहां सभी लोग समय पर पहुंच गये. गोष्ठी में भाग लेने वालीं कुल मिला कर २५ विभूतियां थीं, दो लोकल कवि थे. चीफ सेक्रेटरी, एक कमिश्नर, एक कलेक्टर और शेष २० द्वितीय श्रेणी के अफसर. सभी इस तरह सभ्य शिष्ट बने बैठे थे जैसे काव्य गोष्ठी में नहीं, किसी परिवार-जन की अंत्येष्टि में भाग लेने आये हों.

थोड़ी देर में काव्य गोष्ठी प्रारंभ हुई. कमिश्नर, कलेक्टर, और चीफ सेक्रेटरी ने नतसिर हो कर संचालन भार ग्रहण करने का पुरजोर आग्रह मंत्री महोदय से किया. शेष २० अफसरों और लोकल कवियों ने भी हार्दिक समर्थन किया. सबसे पहले एक व्यक्ति ने कविता पढ़ी—२५ लोगों ने वाह वाह की फिर दूसरे ने पढ़ी तो २४ लोगों ने वाह वाह की. फिर तीसरे ने पढ़ी तो २३ लोगों ने वाह वाह की. शेष दो चुप रहे. फिर चौथे ने पढ़ी तो एक चुप रहा शेष २४ ने वाह वाह की. फिर पांचवे ने पढ़ी एक चुप रहा शेष २४ ने वाह वाह की. हे राजन्! तुम्हें यह बता देना उचित है कि जब कोई बड़ा मंत्री या अफसर कवि या काव्य रसिक हो तो उसके मातहत आधे कवि और आधे काव्य प्रेमी हो जाते हैं. इस गोष्ठी में एक सुयोग्य अफसर की तरह, चीफ सेक्रेटरी, कमिश्नर और कलेक्टर घर से ही कवि हो कर चले थे.

परंतु हे राजन्! काव्य गोष्ठी के दौरान वाह वाही की आवृत्ति में जो धांधली रही, वह मेरी समझ के परे है. पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवे नंबर पर कविता पाठ करने वाले कौन थे. ? और इन में से, अलग अलग-नंबर पर वाहवाही की संख्या अलग-अलग क्यों थी ? राजन् यदि तुमने इन प्रश्नों का उत्तर जानबूझ कर या अनजाने ही नहीं दिया तो म्युनिस्पैलिटी की सड़क पर कार दौड़ा कर तुम और तुम्हारी कार दोनों वीर गति को प्राप्त होंगे और मैं समझ जाऊंगा कि तुम राजनीति और नौकरशाही दोनों के साहित्य में मिसफिट हो.

राजा ने उत्तर दिया—प्रिय बैताल! पहले नंबर पर चीफ सेक्रेटरी ने कविता पढ़ी थी क्योंकि मिनिस्टर साब को छोड़ कर वही, वहां पर सबसे बड़ा अफसर था. यही कारण था कि उसकी कविता पर सभी ने वाहवाही की. दूसरे नंबर पर कमिशनर ने कविता पढ़ी, कमिश्नर की कविता पर चीफ सेक्रेटरी भला कैसे वाहवाही कर सकता है ? वह कमिश्नर से ओहदे में ऊंचा है. अतः कुल २४ लोगों ने वाहवाही की. तीसरे नंबर पर कलेक्टर ने काव्य पाठ किया था तो पद की गौरवानुभूति के अनुसार कमिश्नर और चीफ सेक्रेटरी चुप रहे. वाहवाही करना पद की तौहीन थी. इसलिए कुल २३ लोगों ने वाहवाही की. शेष चौथे और पांचवे नंबर पर लोकल कवि थे. लोकल कवियों से अफसरों को पद की डिगनिटी का सवाल ही नहीं उठता, लेकिन दोनों के काव्य पाठ करते पर वाहवाही करने वालों की संख्या २४ थी उसका कारण यह है कि लोकल कवि, दूसरे लोकल को हमेशा घटिया, सड़क- छाप कवि मानता है. वरन जहां तक बनता है वह दूसरे को कुछ भी नहीं मानता. अतः दोनों एक दूसरे के काव्य पाठ के समय सराहना के अपराध से बच गये. उत्तर सुन कर बैताल मंत्री पद मिलने के प्रति आश्वस्त विधायक की तरह संतुष्ट वापस पेड़ की ओर उड़ गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो लघुकथाएं • शंकर पुणतांबेकर

नेता की टोपी

एक नेता महोदय चुनाव-प्रचार के दरम्यान जीप में सवार एक गांव से दूसरे गांव जा रहे थे. गाड़ी जब एक पुल पर से चली जा रही थी अचानक ऐसी हवा चली कि उनके सिर की टोपी उड़ कर नीचे नदी में जा गिरी. नेता हैरान. हैरानी उचित ही थी उनकी, क्योंकि भाषण टोपी में ही तो समाया हुआ था. नहीं, भाषण ही नहीं उनका पूरा व्यक्तित्व ही उसमें समाया हुआ था. उन्होंने फौरन ड्राइवर से जीप रोकने के लिए कहा.

उन्होंने पुल की मुंडेर से नीचे पानी की ओर झांका. लेकिन टोपी नहीं दिखाई दी. उन्हें आश्चर्य हुआ. टोपी डूबनी तो नहीं चाहिए. अब तक कभी डूबी नहीं है.

टोपी डूबी नहीं है. नदी ने अपने मुंह में छिपा लिया है. यह सोच नदी से टोपी पाने के लिए वे वहीं मुंडेर पर बैठ गये और जोर-जोर से रोने लगे. वे जानते थे रोने में बड़ी शक्ति है. बचपन में मां के पास जब भी मिठाई के लिए रोये थे, उन्हें वह बराबर मिली थी. स्कूल में मास्टरों के सामने जब-जब रोये थे, उनके अंक बढ़ गये थे. आगे राजनीति में पड़ने पर जब तब टिकट के लिए रोये थे, कुर्सी के लिए रोये थे.

वे बड़ी देर तक रोते रहे. उन्हें विश्वास था नदी जरूर पसीजेगी.

और सचमुच नदी पसीज गयी. वह देवी के रूप में उनके सामने प्रकट हुई और उनसे पूछा—क्यों रो रहे हो बेटे ?

उन्होंने जब कारण बताया तो नदी ने कहा—ठीक है, मैं तुम्हारी टोपी ला देती हूं !

इतना कह नदी अंतर्धान हो गयी और कुछ ही देर में एक टोपी लिये हुए प्रकट हुई. बोली—देखो, यही है न तुम्हारी टोपी ?

नेता ने देखा. वह टोपी बाहर से काली और अंदर से सफेद है. अतः कहा— नहीं, नहीं, मेरी टोपी यह नहीं है.

यह सुन नदी फिर अंतर्धान हो गयी और एक ऐसी टोपी ले आयी जो बाहर से सफेद और अंदर से काली थी. इस टोपी को देखते ही नेता महोदय एकदम बोल उठे—हां, हां, यही. . .यही है मेरी टोपी.

नदी ने टोपी नेता के हाथों पकड़ाते हुए कहा—तुम बड़े ईमानदार हो. पहली टोपी में जानबूझ कर गलत लायी थी. तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए. मैं तुम्हारी प्रामाणिकता पर प्रसन्न हूं, और आशीर्वाद देती हूं इस टोपी से साथ तुम आज की तरह भविष्य में भी राज करते रहोगे. □

सफाई

चुनाव निकट थे. एक उद्योगपति को संदेश पहुंचा कि दो मंत्री आपका कारखाना देखना चाहते हैं. उद्योगपति को उनके स्वागत में लाजिमी तौर पर खानपान की व्यवस्था करनी पड़ी. खानपान के बाद मंत्रियों ने उद्योगपति से एकांत में बात करनी चाही. वह उन्हें एक अलग कमरे में ले गया. काफी देर तक उन लोगों के बीच बातचीत चलती रही. जब बातें समाप्त हो गयीं, उद्योगपति ने तिजोरी में से नोटों की कुछ गड्डियां निकालीं और उनमें से एक को दीं. उसने वे अपने पास न रख कर दूसरे की जेब में डाल दीं. न जाने कैसे इस बात की भनक एक विरोधी दल के नेता के कानों में जा पड़ी और उसने सदन में इस बारे में सवाल उठाया. काफी हंगामा मचा. आखिर मंत्रियों ने अपनी सफाई देते हुए एक ने कहा—'आरोप झूठा है. मैं शपथ पूर्वक कह सकता हूं कि मेरी जेब में कोई रकम नहीं आयी है. और दूसरे ने कहा— मैं भी शपथपूर्वक कह सकता हूं कि मैंने किसी उद्योगपति की रकम को हाथ तक नहीं लगाया है. □

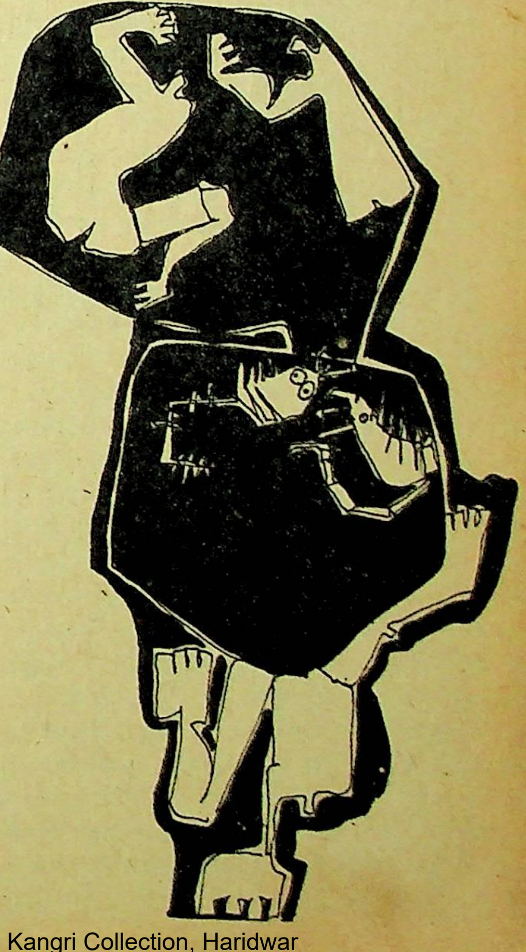

• एम. के. चौधरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंधा सूरज

● श्री केशव

तब ब्राह्मण झूठ नहीं बोलते थे, न गायें ही गू खाती थीं. कोई जाने-अनजाने भी राह-सड़कों के गाछ-वृक्ष नहीं जलाया करते थे. लेकिन उस दिन फुलिया ने अपने हाथों आग लगा दी और वह देववृक्ष जल गया. पर वह जल न सकी. फुलिया नहीं जली. वह अब भी जीवित है. इतने बड़े संसार में, इतने बड़े आकाश के नीचे, इतनी बड़ी धरती पर. नहीं भाई. यह अनिश्चय का घेरा क्यों? और कैसा? इसी गांव में वह अपनी सांसें जी रही है. यहां की धरती फटी नहीं कि वह उसमें समा जाती. धरती नहीं फटी, क्योंकि वह सीता नहीं, फुलिया है. आकाश में कहीं आग नहीं लगी. वह नहीं जली. वह फुलिया जो है. उसने कोई शिकायत नहीं की—जीने से और जिंदगी से भी. वह जीवित है. अपने में कोई परिवर्तन किये बिना—एक छोटा-सा परिवर्तन छोड़ कर कि अब वह अंगिया नहीं पहनती, अपनी छातियां खुली रखती है. हर-हमेशा. है न एक छोटा-सा परिवर्तन? मिठुआ झेंप जाता है, जब कभी उसे देखता है. कुछ भी नहीं कहता. . .कुछ भी कह नहीं सकता. क्या उसे कुछ कह भी सकेगा? वह इस छोर से उस छोर तक खुली-छाती घूमती है. भावहीन-सी. सब उसे देखते हैं. वह किसी को नहीं देखती. बस घूमती है. . . क्या सच ही द्रौपदी ने अपनी चोटी खोल ली थी दुर्योधन की जंघा पर बैठ दुःशासन के खून से गूंथने के लिए?

..क्या कहा. . . ? समझता हूं महाशय. यहां आते-आते सब फुलिया की कहानी ही सुनना चाहते हैं पर आप क्या समझे! इस संदर्भ में उस गाछ को क्या नजरअंदाज किया जा सकता है?

हां, हां, वही. . . वह जला हुआ काला दाग उसी देववृक्ष का अवशेष है. वह किसी इंद्रपुरी का कल्पवृक्ष नहीं था. वह तो महज एक पीपल का बूढ़ा गाछ था. विशाल-विराट. पर झाड़-झंखाड़. हां, जब से मैंने होश संभाला, उसे ऐसा ही देखा. . .ऊपर सूखा हुआ, नीचे जड़वाला भाग हरा-भरा पत्रविहीन. विचित्र रंग में विकृत डालियां. भयावह अंधेरे कोटरों से भरा पड़ा. जाड़े के कोहरे भरे सीले दिन में खांसते जर्जर बूढ़े-सा. बिलकुल ही मौन... अपनी खामोशी में घुटता हुआ.घुटन में चीखता-चिल्लाता. पिताजी कहा करते थे कि पहले वह देववृक्ष बहुत बोलता था. अपनी हरी छाया में बैठे बटोही से वह सुख-समृद्धि की बातें करता था. खूब हरा-भरा और छतनार. तब ब्राह्मण झूठ नहीं बोलते थे, न गायें गू खाती थीं. . .

लेकिन उस दिन गजब हो गया. करीब बीस-बाईस वर्ष पहले एक दिन उस वृक्ष पर जाने कितने गिद्ध आ बैठे. सज्जनो! अब भारत माता आजाद है. हम सभी आजाद हैं. हमारे सहयोग से गांधीजी ने, अपने 'गान्ही बाबा' ने देश आजाद किया. अब हम स्वतंत्र हवा में सांस लेते हैं. अपनी सरकार भी बन गयी है. . .दिल्ली में, पटना में. परंतु आप लोग तो जानते ही हैं कि हमारे 'गान्ही बाबा' कहा करते थे—शासन-व्यवस्था गांव वालों के हाथ में दी जाय. गांव-गांव में रामराज्य लाना है. स्वराज्य तो मिल गया, अब 'सुराज' लाना है. इसके लिए गांवों में ग्रामपंचायत होगी. इसमें एक मुखिया होगा. अच्छा हो, उसको आप लोग निर्विरोध चुन कर अपनी राष्ट्रभक्ति का परिचय दें. मेरे पास नत्थू का नाम आया है. अच्छा है. . .अच्छा है, इस राज में तो एक ही घाट पर बाघ-बकरी पानी पीयेंगे.

उसके बाद से यहां कितने तो मुखिया बने और उनसे भी ज्यादे मड़र-मेंढ़, बाघ-बकरी को एक ही घाट में पानी पिलाने. और तब से प्रायः ही गिद्ध उस देववृक्ष पर बैठने लगा. उसकी पत्तियां क्रमशः गिरने लगीं. डालियां सूखने लगीं. और वह नत्थू अपने को 'अन्हरी मजिस्टैट' कहने लगा. अब तो सारे गांव में उसके असली चेहरा की कोई शिनाख्त भी नहीं रही, सब उसे 'अन्हरी मजिस्टैट' ही कहा करते हैं. वह भी कोई ऐसा-वैसा आदमी तो रहा नहीं. भले आदमी उसके पास फटकते नहीं, बुरों एवं आज के तथाकथित सभ्यों में उसकी शोहरत है. शान है. उसके हाथ में एक जादू की छड़ी है. थाने में दरोगा-पुलिस भी उसके जूते की मार खा जाते हैं. खून करना, करवा देना, फिर पचाना, पचवा देना उसके बायें हाथ का खेल है.

—क्या अपने ही बेटे को मार दिया? आखिर क्यों?

—जी सरकार. उसकी पत्नी से मेरा जरा. . .

—अच्छा ऽ ऽ. . .! एक चुनचुनाती हंसी उसके समस्त चेहरे पर चुहचुहा आयी.

—तो थाना जाना पड़ेगा. कुछ व्यस्तभाव दिखाते उसने कहा, आजकल तो मैं वहां आता-जाता नहीं.

—कुछ तो करना ही होगा, माय-बाप यह रहा पांच हजार.

अन्हरी मजिस्टैट रुपया देखता है और नहीं देखता-सा चुप्पी साध लेता है.

—खेत पर बात करके लाया हूं. काम हो जायगा न!

—कोशिश करूंगा. तुम जाओ.

रुपया हाथ में ले कर देखता है. दो हजार में थाना गायब. पांच सौ में मुखिया. यह मुखिया भी एक दोगला है. बिना पैसे लिये अपने बाप का भी काम नहीं करता. साला, हरिचंदर का भाई बनता है! थाना उसको भेज दूंगा. शेष ढ़ाई हजार मेरा ही न! अच्छा. इस में से कुछ निकाल कर, लगे हाथ उसका भी काम तमाम कर डालूं तो कैसा रहे? प्रताप बाबू! ह-ह-ह-ह, बाबू बनता है! बेटा है तो माकूल. पर युधिष्ठिर का बड़ा भाई जो बनने लगता है! इस बार चीनी कितनी ईमानदारी से बंटवा दी. इतनी आरजू-मिन्नत की, पर कार्ड भर ही चीनी लेने दी. न ब्लैक में चीनी बेच पाया, न कोटा-डीलर ने ही कुछ नजराना पेश किया. अच्छा बेटा युधिष्ठिर, अभी दुर्योधन जिंदा है. ई साला शुद्दर जात ही दोगली है! न इसकी बोली का ठिकाना, न बात का. एक बैठक तो करनी ही होगी. और वह भी किसी गुप्त स्थान पर.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो फिर तुम लोग उस जात की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गये. अरे, भूमिहार-ब्राह्मण भी कभी सीधा हुआ है! कितना भी सीधा होगा तो जलेबी जैसा टेढ़ा रहेगा ही. याद करो, जब ये लोग हमारे बाप-दादों को जलील किया करते थे. घर से औरत निकाल ले जाते थे. (व्यक्तिगत रूप से मैं ऐसा मानने को कतई तैयार नहीं, न मैं अपने को शुद्र ही मानता हूं. पर सभा-बैठक में ऐसे समय यह कहना ही चाहिए, कुछ इसी भाव के साथ) क्या अब भी अपनी जात सुधारना नहीं चाहते? वही कुत्ते की जात तुम लोगों को पसंद है?

उसकी नजरें सबके चेहरे पर दौड़ जाती हैं. अपनी बातों को लोगों पर रंग जमाते देख गर्व से फूल उठता है, मुझे शक होता है. आज तक जो हम लोगों ने उसका अन्न खाया है, सो कुछ भी बोलने से पहले ही जीभ पर आ कर बैठ जाता है. और फिर हम उसके जैसे ही बोलने लगते हैं. लेकिन अब हम उस हजम कर चुके हैं कि नहीं? क्या अब भी कोई भूमिहार-ब्राह्मण का जन्मा रह गया है, इस बैठक में? उसने अपने-आपको ही देखा. . .क्षण भर. . .खूब गौर से, तब अपने से हट कर उसको देखा, जिस पर उसने निशाना साधा था, जो प्रायः उसका विरोध कर दिया करता था. पर वह भी चुप था. उसके कुछ न बोलने पर मजिस्ट्रेट समझ गया कि तुक्का ठीक निशाने पर बैठा है. . .अच्छा तो हम सभी शुद्र एक हों. उस परतपा को तो मुझ पर छोड़ दो. बेटे को ऐसा मजा चखाऊंगा कि बस याद करता रह जायगा.

बैठक के बाहर उसने उन दसों को बुलाया, जो उसके अपने खास आदमी हैं—इस बार प्रताप-विजय के बाद तुम लोग फुलिया-विहार करोगे.

—तो कल ही बॉस!

★ ★

गांजा पी-पी कर सब सब अन्हरी मजिस्टैट के आश्वासन पर सोच रहे थे. उसका काम तो कर दिया. पता नहीं, कब तक वह हाथ आती है.

—अरे यार, यह सुना कि नहीं, खेदुवा का भाई मर गया. कहते हैं, सांप ने काट खाया था. कितनी झाड़-फूंक की गयी, पर नतीजा कुछ न हुआ. लगता है, किसी डायन-

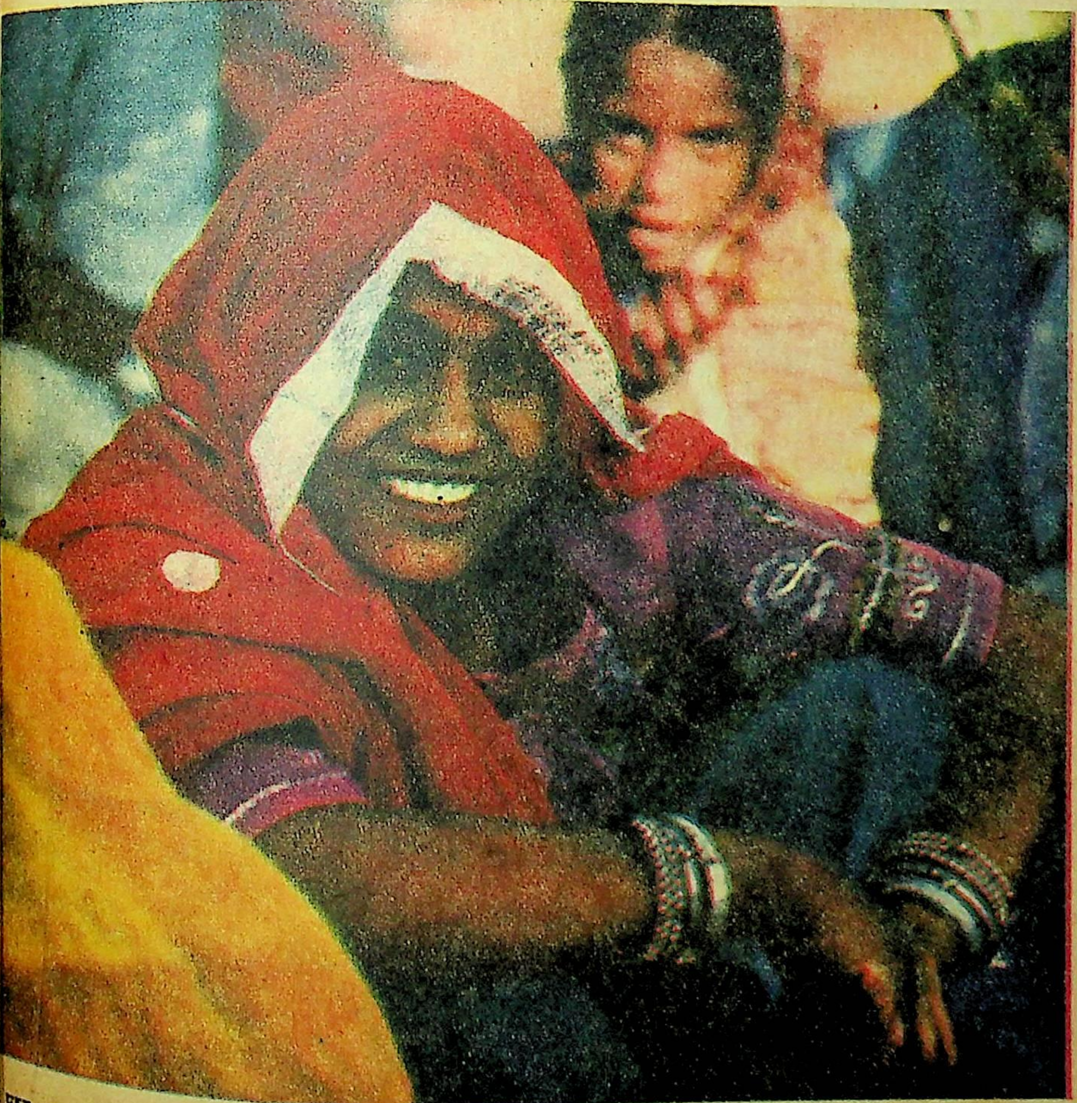

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ मार्गो ही वह साबुन है जो सफाई के अलावा कुछ और भी करता है। क्या जाड़ा, क्या गर्मी यह चमड़ी को हर मौसम में स्वाभाविक बनाये रखता है !

क्योंकि केवल मार्गो में ही नीम तेल मिला होता है

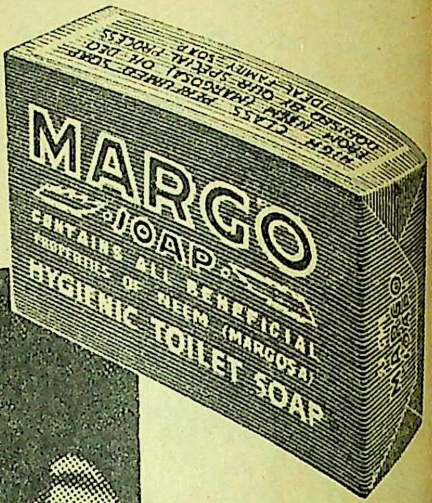

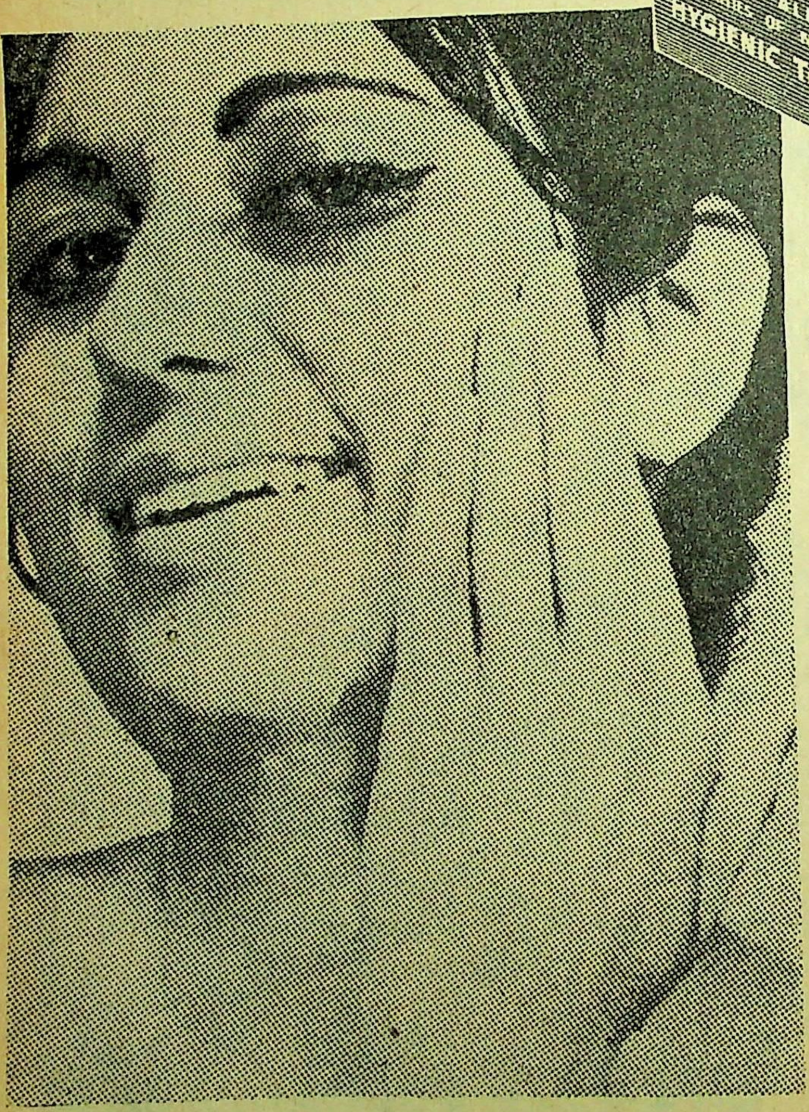

मार्गो साबुन की मक्खन जैसी झाग में भरी रहती है प्राकृतिक नीम तेल—चमड़ी को मुलायम रखने वाला एक ऐसा तत्व जो चमड़ी को तेजवान व स्वस्थ बनाये रखता है। नीम के कीटाणुनाशक तत्व रोग के कीटाणुओं को तो दूर रखते ही हैं साथ ही मार्गो आपकी चमड़ी को हर मौसम में नर्म, मुलायम और बेदाग़ रखता है। और मार्गो में गन्धरहित नीम तेल के साथ ऐसा सुगन्धित उपादान मिला रहता है जो आपको घण्टों तरोताज़ा बनाये रखता है। सुस्निग्ध मार्गो पूरे परिवार के लिये बेहतर है।

मार्गो सोप

आपकी चमड़ी को हमेशा मुलायम व चिकना बनाये रखता है!

कैलकटा कैमिकल का एक उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—बन गया काम! बोलो बम! मारो गांजे में दम! यार, हो गया फुलिया-विहार! उसी का नाम लगा कर मरे गांव में साली की चमड़ी नोंची जाय!

—ऐसा भी कभी हुआ है! गांव में मुखिया. . .

—साला हिजड़ा! तुम क्या जानो! अन्हरी के सामने कौन आता है? और अपना अन्हरी खुद उसका मरीज रह चुका है. मेरे साथ बासा वाले खेत में. .

गांजे में सबने एक-एक दम और मारी. . .'बोल बम! मारो गांजे में दम!' बोलते हुए. फिर सब चलते बने. रास्ते में जो मिला, उसे भी साथ ले लिया.

खेदुवा के घर में बासी मौत का खामोश सन्नाटा पसरा हुआ था.

—तुम भी क्या मूरख हो! उसने कहा नहीं था क्या? परसों ही तो दोनों के बीच खेत में झगड़ा हुआ था. फुलिया ने कहा था, तुझे ऐसा सांप डसेगा कि पानी भी न मांग सकेगा. . .इसी तीन दिन के अंदर!

—हां बेटा! खेदुवा की मां बोल उठी, पानी भी न मांग सका! अंत में जो गंगाजल और तुलसीदल दिया, सो भी दांती खोल कर. लेकिन वह मुंह में ही रह गया. ठीक कहते हो बेटा को उसी डायन ने खा लिया, मेरे राजा को! खेदुवा, देखता क्या है, पकड़ ला उस चुड़ैल को.

बगल में बीड़ी फूंकते खेदुवा के सर पर जाने कहां से भूत आ कर बैठ गया—चलो, आज पूरा बॉस कर देंगे उसके...

सब-के-सब उसके घर में घुस गये. फुलिया तो हक्की-बक्की, अवाक्. उससे किसी ने कुछ नहीं कहा. किसी ने उसकी चोटी पकड़ ली, किसी ने बांहें. और सरे सड़क घसीटते हुए उसे श्मशानी सन्नाटे से भरे आंगन में ला पटका. सब घेरे हुए. वह देखने वालों की फटी आंखों में अपने वस्त्रों से लड़ने लगी.

—मैं. . .मैं. . .म. . .

—हरामजादी, डायन, तू मेरे भाई को खा गयी है! मैं तुझे जिंदा न छोड़ूंगा! अरे लच्छुआ देखता क्या है, हरजाई की अंगिया फाड़ न! मसुआई छाती पर पैसा धिपा कर दाग लगा! साला, मन नहीं भरा है अभी तक!

अन्हरी मजिस्ट्रेट ने सबको देखा. . .रहस्य भरी आंखों से. . .मूंछों के नीचे मुसकाते हुए.

—एक तो जमाना देखेगा बेटे, लेकिन एक तो जमाने से छिप कर खुद देखने के भी दाग होने चाहिए! समझ गये लच्छू? फिर अन्हरी ने खुद ही लच्छुआ के हाथ से लाल-धिपी लोहे की छड़ अपने हाथ में ले ली—फाड़ दो. . .फाड़ दो साड़ी! क्षणभर उसने छड़ की लाल आग को देखा और उसकी दोनों जांघों के बीच भी. बोल रानी! ठीक रहा न खेदुवा? देख, ठीक बीचों बीच पड़ा है. दोनों जांघों को छेदे हुए. ह-ह-ह-हा-हा!

चुनचुनाती चिपचिपी आग से जलती चमड़ी सब देखते रहे. . .दीदे फाड़-फाड़ कर. . .दाग को. पर फुलिया पहले ही बेहोश हो चुकी थी. उसने एक साथ इतने आदमी के जानवर को नहीं देखा. . .कि जब ये आदमी अपने-अपने चेहरे खो कर एक भीड़ का चेहरा लगा लेते हैं तो जानवर से भी ज्यादा भयंकर और खूंखार हो जाते हैं.

केशव (जन्म: जनवरी, १९५२, फुलौत, भागलपुर, बिहार) अब तक छिट-पुट ही प्रकाशित होते रहे हैं. एक कविता-संग्रह तथा एक कहानी-संग्रह प्रकाशित. संप्रति भागलपुर विश्वविद्यालय में एम. एस-सी. (वनस्पति विज्ञान) के छात्र.

वह होश में आयी, तब अपने घर में थी. दाग और दर्द से दबी, चूर-चूर. उसने चीखना चाहा, पर चीख न सकी. मात्र सुनती रही—समझ मिठुआ, एकाध घर वाले की कोई मुराद भी होती है. कहीं आना-थाना जाने का नाम लोगे, तो घर जला दूंगा. जीना दूभर हो जायगा. समझे न? बापू चुप था. उसके चेहरे पर श्मशान था. मुरदा जलाये जाने के चिह्न अब भी शेष थे. . .और जीवन घर में सुरक्षित था. बिना जले-जलाये. वह चुप कर गयी. सुनती रही. यह भी कोई न्याय है! उसने सुना था, लुचबा दफेदार उस घटनास्थल पर घटना के बाद आया था. वह प्रायः ऐसे ही आता है. जानकारी रहने पर भी जाने क्यों वह देर से ही आता है. और आते ही अन्हरी मजिस्ट्रेट को 'सलाम चचाजी' कहा था. फिर उसके बापू के पास भी आया था, कई दिन बीतने पर—अब तो बहुत दिन हो गये. थाने में मुझे गाली-गलौज सुननी पड़ेगी. नौकरी पर भी जोखिम हो सकती है. पर. . .पर यह देखा नहीं जाता. ऐसे दागा जाता है मानुस को, जानवर जैसा! भला किस गांव में डायन-ओझा नहीं होते और किस जंगल में बाघ-भालू नहीं होते? तब वह बापू के कान के पास अपना मुंह ले जा कर फुसफुसाने लगा था—पांच सौ का इंतजाम करो; मरदुओं को मजा चखा दूंगा! समझा क्या है! सरकार बहादुर का राज है! नहीं मजा चखवाया तो मादर. . .

लुचबा चला गया. . .और मिठुआ पांच सौ के इंतजाम में लग गया. . .डर-डर कर. घर में जीवन जीया जाता है न. श्मशान में तो दाह-कर्म होता है.

—ह-ह-ह! मूरख, न्याय क्या? सारे गांव ऐसे ही हैं. वह फुलिया ही तो नहीं? साली माल है, माल! क्या छाती है! दाग हुआ तो क्या हुआ!

वे सब आगे बढ़ जाते हैं. . .सड़क पर. देववृक्ष की जली जड़ के पास. उसकी चमड़ी पर आंखें ठहरा कर चलने का नाटक करते हुए.

ऊपर सूरज अपनी रोशनियों में जल रहा होता है. और सबसे बेखबर फुलिया उस देववृक्ष की जली जड़ की राख मुट्ठी भर उठा कर दागों पर मल रही होती है. . . क्या सच ही द्रौपदी ने अपनी चोटी खोल ली थी दुर्योधन की जंघा पर बैठ दुःशासन के खून से उसे गूंथने के लिए. . . □□□

दिवाकर रेस्ट हाउस, आशानंद पुरी, परवत्ती, भागलपुर–२ (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेमंत की वर्षा में प्रकृति ठिठुर रही है. बाढ़ से फसलों के निगल लिये जाने के बाद जो धान रोपा गया था, उसके पकने और रबी के अंकुरित होने का मौसम है. यह असामयिक वर्षा सबको बर्बाद कर देगी. किसानों का जीना दूभर हो जायेगा. . .

सोचते हुए बारिश के समांतर धागे को देखता हूं. बिजली चमक जाती है. अंधेरा गटक लिया जाता है, उगल दिया जाता है और फिर गटक लिया जाता है. सुम्मि के सुप्त चेहरे की किसमिसी मुसकान और अस्त-व्यस्त कपड़ों में बहकते यौवन को देख एकाएक मौसम के आखिरी आम के आखिरी कतरे की याद आ जाती है. उमड़ कर उसे भुजाओं में समेटता हूं. कुछ ही क्षणों के बाद कांव-कांव. . .सुनाई पड़ती है.

—भोर हो गयी क्या?

सुम्मि के फुसफुसाते ही तीली रगड़ कर घड़ी देखता हूं. पांच और छह के बीच सूइयां बिछुड़ रही हैं. गाड़ी को सरकते देख कभी भिठाइयां फेंक कर पावदान पर लटक गया था. कुछ-कुछ ऐसा ही हो जाता है.

सुम्मि नहीं छोड़ती. स्वाभाविक भी है. छह महीने के बाद पांच रात के लिए आया था. जिसमें पिछली रातें अपवित्रता की ही थीं. और आज. . .

—कुछ रोज रुक नहीं सकते क्या?

—नहीं, कल नाइट-शिफ्ट ज्वायन नहीं करने से आफत आ जायेगी.

—काहे को आयेगी, मेडिकल भेज दीजिए.

—धत् पगली, मेडिकल तो बाबूजी के श्राद्ध में ही खत्म हो गया!

—तो कोई और छुट्टी ले लीजिए, इतने-इतने दिनों के बाद तो आते हैं!

—और कौन-सी छुट्टी! साल भर के पंद्रह पी.एल. और दस मेडिकल तो पहले ही ले लिये. केवल पांचों कैजुएल लीव बाकी थीं. जिसमें वीकली- और कंपेंसेट्री ऑफ जोड़ कर चावला साहब की लल्लोचप्पो के बाद एक सप्ताह की छुट्टी का जुगाड़ लगाया. नहीं तो वह भी. . .

—क्या सोचने लगे? दो-चार रोज ही रुक जाइए न! सुम्मि फिर आग्रह करती है.

—कैसे रुकूं? सी. एल. के साथ दूसरी छुट्टी नहीं जुड़ती. और इसके बाद एक रोज का 'लौस ऑफ पे' होने से भी सारी सी. एल. 'लौस ऑफ पे' हो जाती है.

सुम्मि कुछ नहीं बोलती. बाढ़ से चौपट हुई फसलें, इलाज के बिना मां की बढ़ती बीमारी और जवान हो रही ननद की चिंताओं से शायद ग्रसित हो जाती है.

* *

मुझे तैयार होते देख मां गुबार निकालने से अपने को नहीं रोक पाती. स्कूल-कॉलेज, ऑफिस और सेना में मिलने वाली छुट्टियों से फैक्टरी की छुट्टियों की तुलना करके अधिकारियों को कोसने लगती है— मशीनों के साहब मशीन होते हैं. नहीं तो रात-दिन आठ-आठ, दस-दस घंटे काम कराने के बाद रहने के लिए क्वाटर और घर आने के लिए उचित छुट्टी जरूर देते!

—चिंता मत करो मां! कभी हमारे भी दिन आयेंगे.

—अब कब आयेंगे रे? जब बूढ़े हो जाओगे तब? या उनके जैसे अंतिम समय में तुम्हे देखने के लिए तरसती हुई लुढ़क जाऊंगी तब?

मां बिसूरती और आंसू पोंछती ही रहती है कि मामा आ जाते हैं. ऐसी आफत में इतनी दूर चल कर उनके आने का कारण नानी का मरणासन्न होना और मुझे देखने की इच्छा व्यक्त करना है.

बारह वर्ष पहले मैं मामा के साथ रहता था. हाई-स्कूल की पढ़ाई इन्हीं लोगों के साथ रह कर पूरी की थी. इनके अगाध स्नेह ने मुझे सर्वथा बांध लिया था. मेरे भविष्य की सर्वाधिक चिंता नानी को थी. चार-साढ़े चार बजे भोर में जैसे ही लखनऊ-एक्सप्रेस की घड़घड़ाहट सुनाई पड़ती थी कि लालटेन और पानी लिये वह आ जाती थी और पीठ थपथपा कर मुझे जगाने लगती थी. मगर हाय री हृदयहीनता कि अपनी उसी नानी की शायद अंतिम इच्छा को ठुकरा कर दो घंटा पहले ही सबसे विदाई ले रहा हूं.

बिहार के उत्तरी से दक्षिणी छोर यानी घर से सीतामढ़ी, सीतामढ़ी से पटना, पटना से टाटा और फिर वहां से पंद्रह किलोमीटर दूर जंगल-पहाड़ की गोद में स्थित अपनी फैक्टरी तक की लंबी यात्रा में अनेक सवारियां पकड़नी हैं. उनमें पटना-टाटा एक्सप्रेस, जो रात के नौ बजे खुलती है, छूटी कि सोचते ही मोह के कीचड़ सूख कर झड़ने लगते हैं, और तेजी से सीतामढ़ी की ओर बढ़ने लगता हूं.

* *

बस-स्टैंड पर सोनपुर मेला के यात्रियों की बाढ़-सी उफनती भीड़ को देख माथा ठनक जाता है. मेला-स्पेशल बसों का तांता लगा है. मगर आगे की तीनों बसों में खड़ा होने का भी जुगाड़ नहीं लगता. घबड़ा कर ताकता -झांकता रहता ही हूं कि तीसरी बस की अगली सीट से आयी मुलायम आवाज चौंका देती है—मां... वोई रंजन!

उन्हें पहचानते देर नहीं लगती. उर्मि और दाई-मां हैं. ज्यों ही उनकी ओर सरकता हूं कि खिड़की से हाथ निकाल कर दाई-मां वत्सलता उड़ेल देती है. उर्मि, जो सस्मित आंखों से मुझे देख रही थी, मेरे पहले चलने की बात सुनते ही अटैची खींच लेती है.

टिकट की कतार में नौ वर्ष पहले की घटनाएं याद आती हैं. तब बी. एस-सी. की पढ़ाई पूरी करने मोतिहारी गया था. बाबूजी वहां के सदर अस्पताल में हेड क्लर्क थे. हमारा क्वार्टर आमने-सामने था. दाई-मां विधवा हो गयी थीं. और उनके सौहाद्र एवं संघर्ष के प्रति हम लोग आकर्षित हो गये थे. . .

उर्मि अल्हड़ थी. चौदहवीं में आ जाने के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बांस की कोंपल-सी खिल रही थी. किताबी बात पूछने, बंगला की कहानी सुनाने, अपने पकवान की तारीफ सुनने, सुख के फूल पिरोने और दु:ख के कांटे चुनने मेरे पास आया-जाया करती थी. मगर ज्यादा दिन नहीं चला था यह सब. मेरी अंतरंगता का जादू उसके अल्हड़पन का हरण कर ही रहा था कि दाई-मां का रांची ट्रान्सफर हो गया था, और 'जोगी मत जा मत जा' गा-गा कर मोहने वाली मोहिनी खुद जोगिन हो गयी थी...

बस की भीड़ से निकल कर ज्योंही उर्मि के पास पहुंचता हूं कि संकोच भरी शालीनता के साथ वह बगल में बैठने की जगह दे देती है. हमारे खुलने के पहले ही दाई-मां मुखातिब हो जाती है. बाबूजी की मृत्यु के बारे में उसे ज्योंही बताता हूं कि सन्न हो जाती है. उनकी कम उम्र और तंदुरुस्ती की चर्चा करके सांत्वना देती है. और उनकी जिंदादिली और महानता की बात करते-करते मेरी पढ़ाई-लिखाई, नौकरी और उसके भविष्य के बारे में पूछने लगती है.

एकाएक उसके इकलौते सुकुमार के प्रति जिज्ञासा प्रकट करता हूं. फिर तो काली आंधी उमड़ती है. शिलावृष्टि हो जाती है. और उन्हें झेलते-झेलते दाई-मां टप्...टप्... बरसने लगती है.

अपराधी भाव से उर्मि को देखता हूं. सुबह की झील-सी चमकती कुछ क्षण पहले की आंखें धुंधला रही हैं. वह चाह कर भी कुछ नहीं बोल पाती. रह-रह कर थूक निगल कर अपने को संयत कर रही है.

मोतिहारी से जाने के थोड़े ही दिनों के बाद सुकुमार दुर्गापुर की किसी फैक्टरी में ऐप्रेंटस हो गया था. तीन साल की ट्रेनिंग के बाद उसकी बहाली वहीं हो गयी थी. दो साल के बाद बेतन, बोनस, क्वाटर और छुट्टी की मांग को ले कर वहां हड़ताल हुई थी. और शुरू से ही अन्याय का विरोध करने वाला सुकुमार उसमें आगे आ गया था.

मैनेजमेंट के लोगों ने प्रलोभन दे-दे कर उसे फोड़ने की कोशिश की थी. और जब वह किसी भी प्रकार नहीं डिगा था तो धोखा दे कर उसकी हत्या करवा दी गयी थी...

कुछ क्षण के मौन-अवसाद के बाद उर्मि ही बताती है.

सुकुमार पर ढायी गयी बर्बरता मुझे देर तक झकझोरती रहती है. उसकी सुडौल काया, दूधिया खिलखिलाहट, गंभीर तार्किक क्षमता और अपार कर्मनिष्ठता सजीव होती है.

एकाएक दाई-मां के चेहरे पर उभर आये जुड़पित्ती

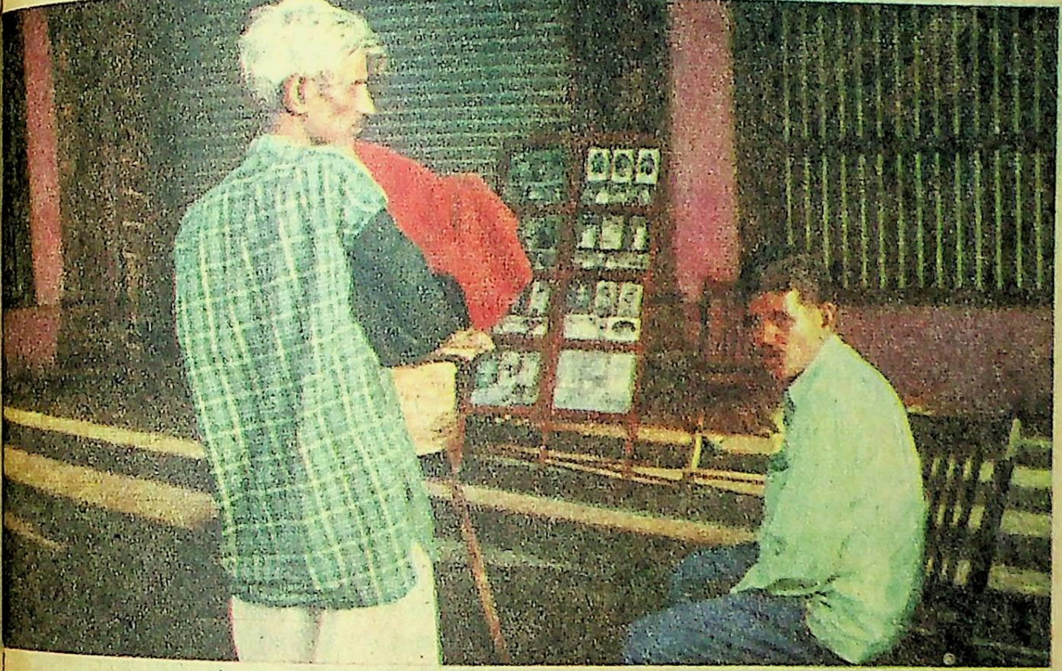

के चकत्ते की ओर ध्यान जाता है. पूछने पर बताती है कि वह इन दिनों इससे परेशान है. अचानक उभर जाती है. दवा से दबती है. और कुछ ही घंटे के बाद फिर फैल जाती है.

उर्मि दाई-मां को दवा और फ्लास्क का पानी देती है. इसका असर तुरंत देखने को मिलता है. तमाम कोशिशों के बावजूद वह झपकियों से नहीं उबर पाती. हार कर खिड़की और सीट के कोने में सो जाती है.

—तुम तो सरकारी फैक्टरी में हो रंजन दा?

—हां... उसे देख कर बरस कर निखरे शारदीय आकाश की याद आ जाती है. मगर यह भाव थिरता भी नहीं कि देर से दबी मेरी विद्रोही भावना को वह तूफान की गेंद बना देती है—तब ठीक है. वहां पगार, छुट्टी और क्वाटर के मामले में धांधली नहीं होगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—यह तमाशबीनों की बात है उर्मि! सचमुच प्रोसेस में लाये जाने वाला एसिड मिला पानी दूर से इतना साफ दिखता है कि पी लेने की इच्छा होने लगती है. मगर उसकी जलन वही जानता है जो वहां काम करता ह, समझी?

उर्मि नहीं समझती, नादान बच्ची-सी चुपचाप देखती रहती है बस. मैं नहीं रुकता, वहां की धांधलियों और ज्यादतियों के बखिये उधेड़ने लगता हूं.

—मुई बस अब कब खुलेगी?

उर्मि के प्रश्न से चौंक जाता हूं. बारह बजने को हैं. एक घंटा पहले ही उसे खुल जाना था. सोचते हुए सह यात्रियों को देखता हूं. बैठे यात्रियों में से अधिकांश भ्रष्टाचार, मंहगाई, बेरोजगारी, इनके खिलाफ हो रहे आंदोलन और सबके परिणाम के विवाद में उलझे हैं. खड़े लोगों को इसमें उतनी दिलचस्पी नहीं है. वे खीझ कर बस की दीवाल पर मुक्के मारते हैं और जल्दी खोलने की बात कह -कह कर शोर मचाते हैं.

* *

सवा बारह बजे बस खुलती है.

बस एक्सप्रेस है. इसीलिए रास्ते में चाहे जितनी भी भीड़ मिले यहां से घाट की पचहत्तर मील की दूरी छह घंटे में तय कर ही लेगी. सब मिला कर सात बजे वाला जहाज पकड़ जाना चाहिए. सोचते हुए पल-पल पीछे छूट रहे अपने इलाके को देखता हूं. मोह फिर उमड़ता है. मगर उर्मि डूबने नहीं देती. मोतिहारी से जुड़ी यादों से ले कर अपनी पढ़ाई-लिखाई, आज की शिक्षा पद्धति, इसमें व्याप्त खामियां और ऐसी ही कितनी बातें करती रहती है.

यात्रियों को ऊंघते देख उर्मि की आंखों के डोरे लाल हो जाते हैं. पलकें झपकती हैं. लड़खड़ा कर उठती हैं. और फिर झपक जाती हैं. दोलते-दोलते दाई-मां की ओर झुकती है. फिर बीचमें आती है. और महराते-महराते अंत में मेरे कंधे पर आ जाती है.

हवा के झोंके में बहक-बहक कर उसकी स्याह लटें मेरी कनपटी को गुदगुदाती रहती हैं. और इस गुदगुदाहट की सिहरन में भी मैं कब सो जाता हूं, पता नहीं चलता!

बस के रुकने और यात्रियों के शोर से आंखें खुल जाती हैं. उर्मि छिटक कर संभलती है और दाई-मां से तबियत की बात पूछ कर चायवाले को हाथ के इशारे से बुलाती है.

यह मुजफ्फर पुर बस-स्टैंड है. दिन के तीन बजे हैं और घाट पहुंचने के लिए अभी आधी दूरी तय करनी है. इसलिए शाम के जहाज के प्रति दाई -मां निराश है. उर्मि को चिंता नहीं. तीन-चार घंटे को वह कम नहीं मानती. मेरी स्थिति बीच की है. सचमुच आशा या निराशा अनुभव की सांद्रता से प्रभावित होती है.

हाजीपुर आते-आते छह बज जाता है. अब धैर्य नहीं रख पाता. उतर कर ड्राइवर से मिलता हूं. अपनी मजबूरी सुना कर उसे प्रभावित करता हूं. और दिलासा पा कर बस में फिर आ जाता हूं. मेरी सीट पर एक युवक है. पास आते ही उर्मि उसे हिकारत से देखती है— उठिए, हे आदमी आ गया!

सुनते ही वह मुंह फेर कर खड़ा हो जाता है. उसे चोरी-चोरी देख कर मुसकराती है. दाई-मां से सट कर मुझे शरारत भरी आंखों से देखती है. हिचकोले खा कर मेरी ओर दोल जाती है. मुझसे रहा जाता. अभी का वाक्य दोहरा कर मीठी चुटकी लेता हूं. समझते ही वह शरम से लाल हो जाती है.

गंडक-पुल के पास बस फिर रुक जाती है. सवारियों का तांता है. सबके आगे लालबत्ती जल है. देखते ही सूखती दलदल में फंसी मछलियों की हो जाती है.

जहाज खुलने में केवल पचीस मिनट बाकी हैं. पहुंचने के लिए पुल के उस पार के मेले की लंबी अभी पार करनी है. मुझे पीला होते देख दाई-मां बंधाती है. कहती है कि जहाज प्रायः दस-बीस लेट से खुलता है और तिस पर तो यह मेला का है. झुंझलाहट बढ़ रही है—इस 'धनवे ब्रिज' बनवाने पर, आ रही सवारियों की लंबी कतार पर, गंडक की धार पर, और खुद अपने आप पर भी! दस मिनट बाद हरी बत्ती जलती है. मगर तांगे वाले आगे बढ़ हैं. जिसके पीछे-पीछे बस सरक रही है.

पुल के बाद सोनपुर मेले का जमघट. जाम जाम. मेला के विस्तार पर उर्मि की चहचहाट. दा की चुप्पी. और मिनट की सुई, सन्यानाशी भीड़, ड्राइवर की भरपूर कोशिशों को देखता हुआ सबसे अलग पड़ा म.

पहले जा घाट. एक किलोमीटर दूर डेक. जहाज खुलने में मात्र दो मिनट शेष. इन्हें छोड़ने के कोई रास्ता नहीं. फिर भी हिचकिचाहट.

—तुम बढ़ो रंजन, हम लोग. . .

दाई-मां प्रोत्साहित कर के उबार लेती है. की बगल से कूद कर उनके सामने आ जाता हूं. अटैची बढ़ा कर बुझी आंखों से देखती है. व्यक्त-अ भाषा में कुछ कहती है. मैं कुछ नहीं सुनता. इतनी से दौड़ने लगता हूं कि कॉलेज के दिनों की रेस या जाती है. सीटी! . . .और तेज हो जाता हूं. मगर जेटी पर उछलता हूं कि वही कर्कश सीटी! . . .

छप्-छप्. . . . छप्-छप्. . . छप्-छप्. . .

जहाज किनारा छोड़ चुका है— इतना कि नहीं सकता! आंखों के आगे अंधेरा हो जाता है. छंटने पर अपने को गार्ड-रेल के पास पाता हूं. सारा पसीने से तर है. दमे के रोगी सा हांफ-हांफ कर खांस हूं. आंखें अभी भी क्षण-क्षण दूर हो रहे जहाज की हैं. लहरें उभर रही हैं. चारों ओर पसर रही हैं. और से टकरा-टकरा कर लगातार कह रही हैं— और और! . . . और! . . .

और, कौन-सा और?

. . .ठीक है, संबेरे पटना-टाटा बस पकड़ लूं बजे शाम तक पहुंचा ही देगी. टाटा-खड़गपुर शाम के सात बजे हैं. करीब आठ बजे फैक्टरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाऊंगा. जो भी हो नाइट-शिफ्ट पकड़ा ही जायेगा. सोच ही रहा हूं कि कंधे पर हाथ रख कर उर्मि चौंका देती है.

—क्या सोचते हो दादा?

मैं कुछ नहीं बोलता. अपना उतरा चेहरा झुका लेता हूं. आंचल से पसीना पोंछ कर वह मेरी चेष्टा को सराहती है. और सांत्वना देते-देते कर्मयोग की बात कर बैठती है.

—तुम्हारे प्रयत्न में कोई दोष है रंजन दा?

—नहीं.

—तो फिर काहे पछतावा? चलो मां प्रतीक्षा कर रही है! बोल कर बाहें थाम लेती है. जेटी से बाहर आते ही गहन अंधकार में घिर जाते हैं. सुबह से आकाश नहीं देखा. अभी गर्दन तनी है. चारों ओर स्याह बादल लटके हैं. हवा सिसक रही है. मौसम भयावह हो रहा है. बिजली के हठात चमकने और बादल के गरजने पर उर्मि सट जाती है. रात इसी तरह सुम्मि भी सट जाती थी. और आज ?. . . .

दाई-मां जिस हलवाई की दुकान में अधीर हो रही है, वहां पहुंचते-पहुंचते बारिश शुरू हो जाती है. मुझको देखते ही वह खिल कर बुझ जाती है. उसकी दिलासा भरी बातें खत्म भी नहीं हुई कि हलवाई टोक देता है और अपना गठिया रोग तथा समय की विकरालता की बात करके हमें जल्दी ही कुछ खा-पी लेने का आग्रह करने लगता है.

खाने के पहले ही बारिश थम जाती है. मगर हवा शांत नहीं हुई, भयावहता बढ़ाती हुई सांय-सांय बह रही है. दाई-मां जाड़ा नहीं सह पाती. हाथ-मुंह धो कर चूल्हे के पास बैठ जाती है. बाद में मैं भी और उर्मि भी.

एकाएक दाई-मां को दवा की बात याद पड़ती है. गोलियां निगलने के बाद वह हम लोगों के पास नहीं बैठ पाती. कंबल ओढ़ कर बेंडिग पर सो जाती है. सारी चिंताओं से ऊपर आ कर उर्मि की ओर देखता हूं. आग की आंच में वह और लाल दिख रही है. हथेलियां सेंक कर गालों और कानों को गरम करती है. और आंखें फैला कर शरारत से देखने लगती है. यही शरारत सुम्मि के चेहरे पर भी थी. हथेलियां सेक कर एक बार मेरे गालों को भी ढंक दिया था. तभी मां आ गयी थी और शरम के मारे वह पानी-पानी हो गयी थी.

—एक बात पूछूं रंजन दा? सुम्मि फिर छूट जाती है.

—हां, हां, पूछो न !

—कभी हमारी याद आती थी? उसकी फुसफुसाहट की गरमी गालों तक पहुंच जाती है.

—अनेक बार . तुम्हारी "जोगी मत जा" की बोली तान तो आज ही सुनाई पड़ी थी, घर से चलते वक्त ! कह कर गंभीर हो जाता हूं.

—सचमुच वे भी क्या दिन थे रंजन दा!

चहक कर स्वप्निल आंखों से बांधती ही है कि जहाज की सीटी चौंका देती है. मेला के दिनों एक बड़ी भीड़ छोड़ कर जहाज करीब-करीब खाली ही लौट जाता है. इसी खालीपन से जुड़ने के लिए झटपट तैयार होते हैं.

जाड़ा बहुत बढ़ गया है. फिर भी दवा के प्रभाव से

शैलाभ (जन्म : २१ अप्रैल, १९४३, सीतामढ़ी, बिहार, के एक अत्यंत पिछड़े गांव में) किसान, शिक्षक, फैक्टरी - आपरेटर—अनेक तरह के कार्य-अनुभव ले चुके हैं. संप्रति फ्यूएल रिसर्च इंस्टीट्यूट, धनबाद के प्रकाशन-विभाग से संबद्ध.

जहाज के खुलते ही दाई-मां सो जाती है. उर्मि को दांत किटकिटाते देख अपनी आधी चादर उसकी पीठ पर फैला देता हूं. धीरे-धीरे वह मुझसे बिल्कुल सट जाती है. उसके बदन की गरमी सुम्मि की याद दिला देती है. मगर फिर वही बात :

—रंजन दा! अपनी तेज सांसों को रोक कर वह फुसफुसाती है.

—हूं ऽ . . .

—आज की रात हमारे क्वाटर में ही काट लो न! क्योंकि बस के लेट पहुंचने से सारी मेहनत बेकार हो जायेगी.

—काट तो लेता, मगर. . .

—ओह वही अगर-मगर ! परसों अपने बॉस से मिलना और नाराज हो तो कह देना कि 'समटाइम्स समथिंग गोज बियोंड कंट्रोल!' समझ गये न ?

कह कर उर्मि कंधे पर माथा टेक देती है. लंबे-लंबे बाल मेरी पीठ पर दोल रहे हैं. उनकी मादक गंधों में बह कर लड़खड़ाऊं-लड़खड़ाऊं कि चावला साहब की जलती आंखें समय पर ड्यूटी ज्वायन कर लेने की याद दिला देती हैं. धार की ओर मुंह फेरता हूं. लहरें बिखर कर मिट रही हैं. पटने का घाट अब पास ही है. और आधी धार की परिक्रमा करके जहाज उधर बढ़ रहा है.

घाट से बाहर आ गये हैं. समय की विकरालता को देख दाई-मां भी नहीं छोड़ रही, बार-बार ममत्व भरा आदेश दे रही है. मगर ज्योंही सी. एल. खत्म हो जाने की बात करता हूं कि ठंड़ी पड़ जाती है.

—एक बार सुकुमार भी सी. एल. में आया था. दूसरे दिन राखी थी. मगर लाख रोकने पर भी चला ही गया था. याद दिला कर दाई-मां उर्मि को समझाती है.

बिछुड़ने के समय उर्मि छलक जाती है. भावुकता नहीं दबा पाता. रूमाल निकाल कर उसकी आंखें पोंछ देता हूं. पत्र लिखना, कह कर उर्मि हाथ हिलाती है.

रिक्शा भागा जा रहा है— पटना बस -स्टैंड की ओर—

★ ★

सारी रात बस स्टैंड में ठिठुरता रहता हूं. भोर में बस खुलती है. कहीं कोई अवरोध नहीं, सो बस निर्बाध भाग रही है. सोया शहर, अलसाया गांव, हवा से जझ

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

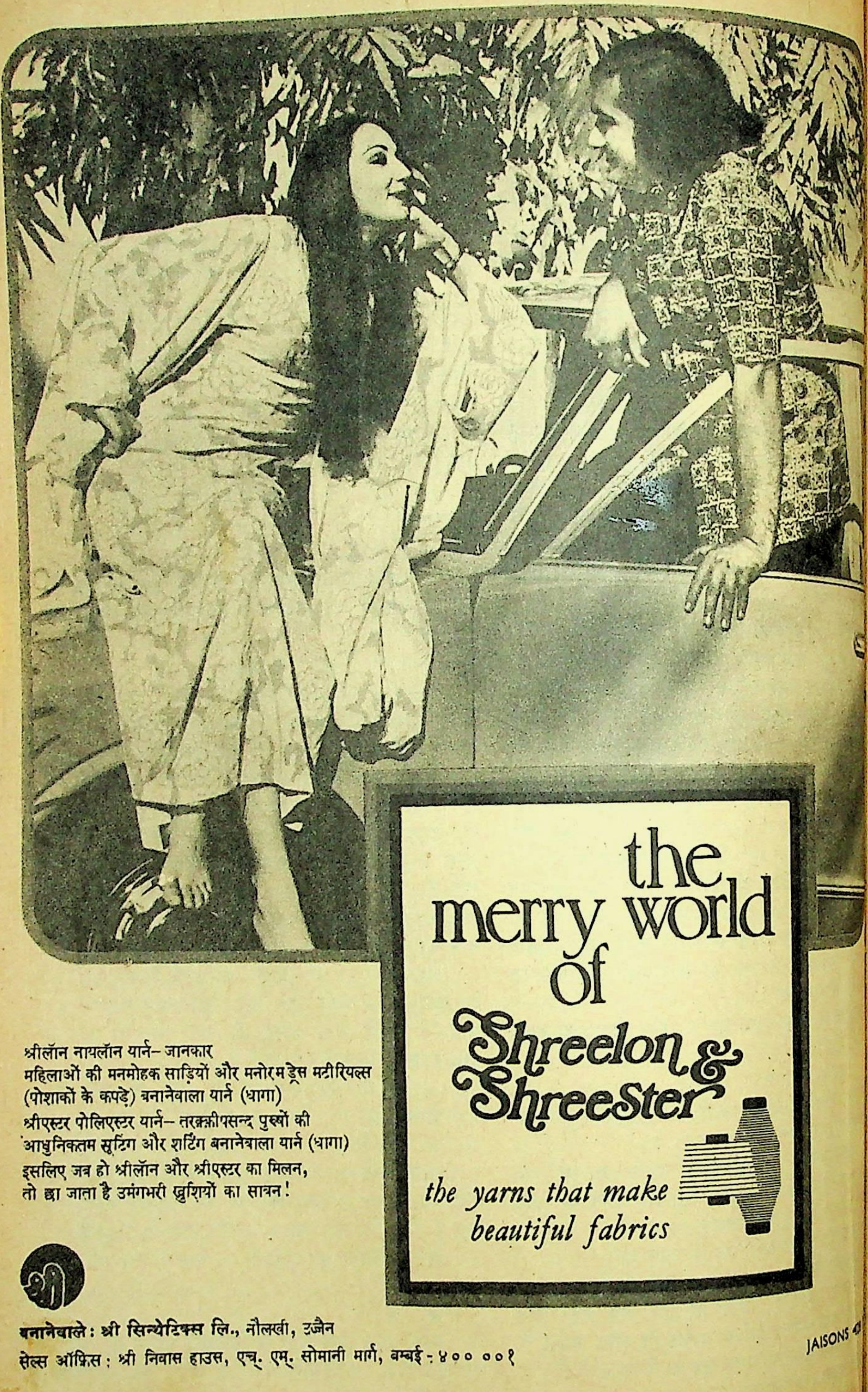

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झ कर थके-हारे पेड़-पौधे, खेतों में गिर कर पानी में डूबती फसलें,. . . सब पीछे छूट रही हैं.

कोडरमा आते-आते जोरों की भूख लग जाती है. पास के होटल में खा कर वापस आ जाता हूं. ठीक समय पर बस घड़घड़ाने लगती है. दो-तीन बार जम्हाई ले कर बाहर देखता हूं. और देखता हूं तो देखता ही रहता हूं—मनोरम घाटियों की चढ़ाई-उतराई—दिगंत तक फैली नैसर्गिक सुषमाएं— छोटी-बड़ी पहाड़ियां—हरे-भरे पेड़—धरती सुंदर है, बहुत सुंदर!

★ ★

ठीक चार बजे बस रांची छोड़ देती है. अब छह बजते-बजते टाटा पहुंच ही जाऊंगा. नाइट-शिफ्ट की ड्यूटी. सो सारी रात जागना होगा. सोचते ही कुछ और सो लेने की बात सूझती है. और फिर कब सो जाता हूं, पता नहीं चलता.

—फिस्सडSSS. . .

अचानक आंखें खुल जाती हैं. बाहर धुप्प अंधेरा है. कुछ भी समझ में नहीं आता. बस रुक गयी है. यात्रियों के साथ मैं भी बाहर आता हूं. बस का पिछला चक्का पंक्चर हो गया है. कोई टैक्सी भी नहीं आ रही.

चक्का बदलने में पचीस-तीस मिनट लग जाते हैं. बस तेजी से नहीं चलायी जा रही. टाटा आते-आते सात बज जाते हैं. टैक्सी से स्टेशन आता हूं. खड़गपुर जाने वाली पैसेंजर गाड़ी खुल गयी है. प्लेट फार्म के अंतिम छोर तक दौड़ कर निराश हो जाता हूं. नहीं, निराश नहीं होना! क्या हुआ जो और सवारी नहीं, अढ़ाई-तीन घंटे में दस मील पैदल तो चल सकता हूं! चल तो सकता हूं,मगर जाड़े की अंधेरी रात है. आसमान में बादल टंगे हैं. बूंदा-बांदी होने लगती है. जंगली इलाका है. हाथी, भालू, सूअर, सांप वगैरह की काली छायाएं मंडराती रहती हैं. तीर-कमान से बात करने वाले आदिवासी लुटेरे हैं. कहीं मार कर फेंक दिया तो लाश मिलनी भी मुश्किल हो जायेगी. . .नहीं, जान सलामत तो सब सलामत. . .

स्टेशन की ओर बढ़ने का निर्णय लेता हूं कि चावला साहब की घूरती आंखें और मशीनी बातें फिर कौंध जाती हैं—देखिए मिस्टर, स्पेशल पावर से एक साथ पांचों सी. एल. तो ग्रांट कर दिया, मगर समय पर टर्न-अप होने की बात आप जानें! इन मामलों में मैं स्ट्रिक्ट डिसीप्लीनेरियन हूं. . .

मुड़ कर रास्ते की ओर फिर देखता हूं. नानी, मां, सुम्मि, उर्मि. . . व्यंग्य करती दिखती हैं. अब सब कुछ ईश्वर पर. सोच कर बढ़ जाता हूं.

साढ़े-सात होने को हैं. खौफनाक घाटी का अनाथ यात्री बन गया हूं.तमाम सतर्कता और सावधानी के बावजूद ठोकर लगती रहती है. मगर चोट चोट नहीं है. दर्द दर्द नहीं है. केवल अमियानी नशा है अभी. इसके प्रताप से चला जा रहा हूं. जंगल-झाड़ी, नदी-नाले, खेत-पथार. . .पीछे छूट रहे हैं. . .शायद भटक रहा हूं. हां, बहुत देर से भटक रहा हूं.

अपने से राह खोज-खोज कर चला जा रहा हूं. झाड़ी खड़खड़ाती है तो पत्थर उठा लेता हूं. किसीके होने का भ्रम होता है तो अकड़ कर तैयार हो जाता हूं. कुछ टेढ़ा-मेढ़ा पड़ा दिखता है तो फांद जाता हूं. ऐसे ही फांदते वक्त बबूल की झाड़ी में उलझ जाता हूं. देर तक कांटे निकालने के बाद मुक्ति मिलती है.

सनसनाता हुआ चला जा रहा हूं कि सत्यानाशी बरसात शुरू हो जाती है. भीगते-भीगते दौड़ रहा हूं. कपड़े कीचड़ से लथपथ हो गये हैं. मील अब दूर नहीं.

एक अव्यक्त आत्मतृप्ति के साथ फैक्टरी के गेट के पास खड़ा हो जाता हूं. नेपाली पहरेदार आग ताप रहा है. आहट पाते ही बंदूक ले कर तन जाता है और पहचान कर हक्का-बक्का होते कहता है— बाबू आप!

—हां यार, गेट खोलो, ड्यूटी ज्वायन करनी है!

—ड्यूटी! आप अभी ड्यूटी पर जायेगा साहब?

—हां, अभी देश से आ रहा हूं.

—सो तो है, मगर इस वक्त अंदर जाने देने का आर्डर नहीं है साहब!

—अरे यार, साढ़े ग्यारह ही तो बजे हैं.

—नहीं साहब, आपको अब अपने साहब को फोन करना होगा. कह कर वह चोंगा बढ़ा देता है. अपने सेक्शन के लिए डायल घुमाता हूं.

—हैलो, श्रीवास्तव स्पीकिंग ! अलसायी आवाज सुनाई पड़ती है.

—नमस्ते सर, मैं रंजन बोल रहा हूं! भरसक गला साफ करके बोलता हूं.

—ओ, कहां से बोल रहे हैं?

—फैक्टरी गेट से सर, मुझे ड्यूटी ज्वायन करनी है.

—नहीं भाई, चावला साहब ने फोन करके ऐबसेंटी-रिपोर्ट ले ली है.

—ऐसा मत कहिए सर, जान की जोखिम उठा कर अभी आ रहा हूं.

—आई फील मिस्टर रंजन, मगर अब तो आपको उनसे ही इजाजत लेनी होगी.

निराश हो कर चावला साहब को फोन करता हूं. कटघरे में खड़े निरपराध कैदी की तरह छाती धुक धुका रही है. थूक गटक-गटक कर अपने को तैयार कर रहा हूं.

—हू स्पीकिंग ? तमतमायी आवाज सुनाई पड़ती है.

—पारडन सर! फैक्टरी-गेट से मैं रंजन बोल रहा हूं.

—कहिए, क्या बात है?

—सर, जहाज और गाड़ी के नहीं पकड़ पाने से मैं अभी आ रहा हूं! प्लीज, ड्यूटी ज्वायन करने की परमीशन दे दीजिए !

—ओ. . . तो यह बात है! आई विल सी यू टु मौरो !

—सर. . .!

—शट अप. . . नॉनसेन्स!

चोंगा बेजान हो गया है.मैं फिर नंबर डायल करना चाहता हूं लेकिन डायल पर मेरी अंगुलियां कांप रही हैं. . . □□□

१०, पुराना होस्टल एफ. आर. आई. धनबाद

CC-0, In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौड़ • सोमेश भरत

गौरव, एक बात कहूं!...आज हमारे पास इतना समय ही कहां, कि किसी की सुधि ले सकें, सुबह से शाम तक सिर्फ पेट के लिए दौड़ते रहते हैं...एक मशीन की तरह. . .जिसकी कभी भी सफाई नहीं होती.

अब हम एक-दूसरे के समानांतर बैठ गये हैं. हमारे बीच कांच की मेज है. मेज के बीचोंबीच ऐश्ट्रे रखी है. मैं मेज पर हाथ रखे हूं. और वह सोफे की पीठ का सहारा लिये, सोफे के ऊपर हाथ पसारे है, हम दोनों चुप हैं.

—हम शायद दूसरी बार मिल रहे हैं ना. . . .कालेज छोड़ने के बाद ?

वह इंडिया किंग्स की डिब्बी निकालते हुए पूछता है—सिगरेट पीते हो?

—हां. . . लेकिन चारमीनार.

वह एक सिगरेट निकालते हुए, डिब्बी मेरी ओर बढ़ाता है, लेकिन मैं उदासीन-सा, उसकी ओर देखते हुए कह देता हूं— प्लीज. . . आदत मत खराब करो. और अपनी चारमीनार की डिब्बी से सिगरेट निकाल लेता हूं. हमारी सिगरेटें एक ही तीली से जलती हैं.

—पिछली बार, जब तुम मिले थे. . .अभी से. . . . कुछ तंदुरुस्त थे. पिछली और आज की मुलाकात के बीच क्या करते रहे. . . नहीं पूछूंगा. . .और यह भी कि आज क्या कर रहे हो. जानता हूं. . . तुम जो कुछ भी कर रहे हो. . . वह. . . तुम्हारे लिए नहीं था. . . लेकिन बड़ा अजीब-सा लगता है विशाल. . . कि आज जीना कितना कठिन हो गया है !

उसने बढ़ कर ऐश्ट्रे में सिगरेट की राख झाड़ी है. बैरा आ गया है. .

—क्या पियोगे ? वह पूछता है.

—कुछ भी.

—टू कोल्ड कॉफी, वह आर्डर देता है. मैं मेज की ओर देख रहा हूं.

—तुम इन दिनों कैसे रहे? मैं उससे पूछता हूं.

—ठीक ही रहा. . . . बस. सुखी हूं.

वह सुख शब्द का इस्तेमाल करता है, सुख. . . ? सुख किसे कहते हैं. . . आज तक मैं न जान सका हूं. स्कूल के बाद कालेज और कालेज के बाद इन सड़कों पर बस यही सफर. . . इसी सफर को तय करने में उम्र के बत्तीस साल गुजर गये हैं. . . लेकिन हूं. . . शुरू से आखिर तक खाली का खाली ही.

—घर जाते हो? हम दोनों एक दूसरे को देख रहे हैं.

—नहीं. . .मैं बेहद धीरे से कहता हूं.

—क्यों?

—उन सबके लिए एक तरह से बेकार हूं.

—कब से नहीं गये? वह सिगरेट बुझाते हुए पूछता है.

—करीब पांच-छह सालों से.मैंभी सिगरेट बुझा देता हूं.

—शादी की ?

—जरूरत नहीं समझी.

—पिछली बार जब मिले थे, तो तुमने बताया था तुम. . . आई. ए. एस. में बैठ रहे हो. . . बैठे थे ?

—हां, लेकिन बेकार रहा.

—क्यों. . .?

—मुझसे कम नंबर वाले सिलेक्ट हो गये, मैं नहीं हुआ. . . क्योंकि वे सब 'शिड्यूल्डकास्ट' वाले थे.

बैरा कोल्ड कॉफी के गिलास रख गया है. स्ट्राज हम दोनों की ओर मुंह किये, गिलास में खड़े हैं. हम इस विराम से चुप हो जाते हैं.

एकाएक कमीज का कालर गड़ने लगती है, पसीने से कड़ा-सा हो गया है—सोचता हूं, तभी गौरव जैसे लोग सूती कमीज नहीं पहनते. शायद उन्हें, ऐसी कमीज पहनने से परेशानी होती होगी.

हम दोनों ने स्ट्राज होठों से लगा लिये हैं.

—आज कल तुम कहां हो? मैं उससे पूछता हूं.

—अब यहीं आ गया हूं, फाइनेंशियल एडवाइजर हो कर.

—इन सालों में तुमने क्या किया? वह पुनः पूछता है.

—कुछ नहीं. . . सिर्फ भटकता रहा.

—क्या तुम समझौता नहीं कर सकते ? वह सिगरेट जलाते हुए पूछता है.

—यही तो बाकी लोग भी चाहते थे.

हम फिर चुप हो गये हैं. हम धीरे-धीरे कॉफी सिप करते हैं. कुछ पलों के बाद मैं उससे पूछता हूं—गौरव, समझौता न करने जैसी भावना आदमी को क्यों भटका देती है ?

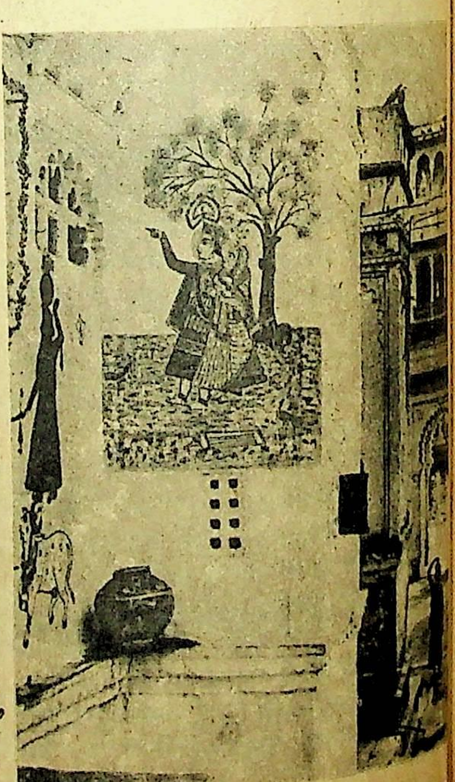

• रघुराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं देख रहा हूं, वह चुप है. जानता हूं उसके पास इस तरह का कोई अनुभव नहीं.

—जिन्हें अपने आप से प्यार है वह भटकते हैं विशाल, और जिन्हें पैसे से प्यार है, वे एक जगह स्थिर रहते हैं. वह अचानक बोल पड़ा है.

—सही माने में, कहीं स्थिरता नहीं गौरव... सभी दौड़ते हैं. मेरे जैसे भटकने के लिए दौड़ते हैं और तुम्हारे जैसे सिर्फ थकने के लिए.

हम दोनों ने गिलास खाली कर दिये हैं.

—हम दोनों के तबके में कितना फर्क हो गया है गौरव.. .तुम पेट्रोल जलाते हो और कार पर चलते हो... और मैं... अपना खून जलाता हूं, पैदल चलता हूं, तुम ऊपर से नीचे देखते हो, और मैं नीचे से ऊपर.

—नहीं विशाल, फर्क शब्द को मत इस्तेमाल करो... फर्क शब्द के लिए, आज के युग में कोई जगह नहीं, आज के युग में हर वर्ग, अपने से नीचे वाले वर्ग का शोषण करता है. एक बात और विशाल... आज जरूरतें, अपनी सीमा पार कर चुकी हैं. उन्हें बटोरने के लिए हर तुम्हारे जैसे को, मेरे जैसा बनना पड़ता है.

—क्या तुम्हारे जैसा बनने के बाद भी जरूरतें बटोरी जा सकती हैं? नहीं गौरव.. .नहीं. जरूरतें सिमटने से पहले और फैल जाती हैं, तुम उन्हें समेटते रहोगे... वे फैलती जायेंगी... कैसा सांप-सीढ़ी जैसा खेल है यह! नंबर चढ़ते जाओ, और सांप तुम्हें डंसता जायेगा.

★ ★

आज एक अर्से बाद गौरव मिल गया है. गौरव पहले जैसा ही है, जरा भी नहीं बदला. कालेज के जमाने में भी अक्सर, पिक्चर, रेस्ट्रां, खींच ले जाया करता था. इसका एक कारण भी था कि हम अपनी-अपनी सोचने की मंजूषा का विनिमय कर लें. कलेज में, हम इस तरह बात नहीं कर पाते थे. कुछ मेरे मित्र, कुछ उसके मित्र, विचारों में असमानता लिये, लेकिन मैं और गौरव हमेशा एक जैसे रहे—फर्क सिर्फ इतना ही था कि वह हर स्थिति से समझौता कर लेता था. और मैं... अकड़ कर रहता था.

—तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं? उससे पूछता हूं.

—दो बच्चे, वाइफ और... मैं.

बैरा बिल रख कर चला गया है. वह पल भर के लिए बिल की तरफ देखता है. मैं अचानक अपनी धूल से भरी, हवाई, जोड़ लगी चप्पल निहारने लगा हूं. नजरें, उसके काले, चमकते हुए जूतों पर जाती हैं. तभी अंदर कुछ जकड़ने-सा लगता है.

उसने बिल के नीचे दस का नोट दबा दिया है. हम पल भर के लिए एक-दूसरे को देखते हैं. लेकिन नजरें तुरंत ही झुक जाती हैं.

—विशाल... आखिर तुम... इसी तरह, कब तक भटकते रहोगे... क्या कोई सीमा हो सकती है?

—जब तक पूरी तौर पर थक नहीं जाता... यह उससे कह तो गया हूं, लेकिन कहते-कहते लगता है, जैसे अब वाकई थक गया हूं... शायद पूरी तौर पर ही.

—पूरी तौर पर थक[illegible] के बाद कुछ [illegible]?

सोमेश 'भरत' (जन्म: १९५५) के पात्र कायर नहीं हैं. वे जीवन को सही माने में जीते हुए आगे बढ़ने में थक गये हैं इन्होंने अपने पात्रों की उसी कातर थकान को अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है.

—हो सकता है. हां... शायद नहीं भी... लेकिन.. आगे कहते-कहते रुक गया हूं. एहसास होता है, जैसे कोई लंबी-सी थकान, मेरे अंदर उभर आयी है. एक दम लोहे जैसी, जो मुझे दबा रही है. हम दोनों अपलक एक-दूसरे को देख रहे हैं. वह शायद आगे के शब्द सुनना चाहता है और मैं कुछ कह नहीं पा रहा हूं.

बेरा बिल उठा ले गया है.

—आज भी अक्सर, कालेज के दिन याद आते हैं, वह जोश भरी शामें, भविष्य को बनाने वाले सपने, खुल कर हंसने वाली आवाजें...

—नहीं गौरव.. .वे दिन मत याद दिलाओ. वह सब मैं आठ-दस साल पीछे छोड़ आया हूं. एम. ए. वाला विशाल पता नहीं कब का बिखर चुका है. पता नहीं कब का मर चुका है. बस.. .अब तो यही विशाल है जो तुम्हारे सामने बैठा है. कहते-कहते अचानक लगने लगा है कि आंखें छलक आयी हैं. वह मेरी ओर देख रहा है. मैं नजरें झुका लेता हूं.

बैरा बचे रुपये मेज पर रख कर खड़ा हो गया है. वह एक रुपया छोड़ कर बाकी तीन रुपये पर्स में रख लेता है.

हम दोनों साथ ही बाहर निकलते हैं. एकबारगी लू का झोंका हमसे टकराता है.

—ओफ...! कितनी गर्मी हो गयी है? वह कहता है.

मैं चुप रहता हूं.

—कहां आओगे? वह पूछता है.

—घर (?) ही जाऊंगा. मैं कहता हूं.

—बैठो, मैं छोड़ दूंगा. वह कार का दरवाजा खोलते हुए कहता है.

—नहीं... तुम जाओ.

वह पल भर के लिए मुझे देखता है. मैं दूसरी ओर देखने लगता हूं उसकी कार स्टार्ट होती है.

—अच्छा विशाल... भूलना मत कि... मैं हूं.

वह अचानक हाथ मिलाता है.

उसकी गाड़ी तेजी से गुजर जाती है. कुछेक पल तक ठिठका-सा खड़ा रहता हूं.

अब कदम धीरे-धीरे बढ़ने लगे हैं.

—आखिर कब तक मैं, इसी तरह भटकने के लिए दौड़ता रहूंगा? □□□

[illegible] गंज, कानपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जंगल में

• ज्ञान चतुर्वेदी

उसके दबंगई से खटाखट उठते कदम गली तक आते-आते घिसटने लगे थे और उस अंधियारी गली के ऐन अंतिम छोर तक पहुंचते-पहुंचते लगभग रुक गये थे. सामने ढीला-ढाला दरवाजा था. वह एक पल तो बजबजाती नाली के ऊपर पड़े पटिये पर पैर टिकाये निश्चेष्ट-सा खड़ा रहा, फिर उसने आहिस्ता से, सतर्कतापूर्वक दरवाजे की चौड़ी संघ में से अंदर झांक कर स्थिति का जायजा लिया. बरामदे में मां और बाबूजी बैठे गुरसी की आग ताप रहे थे. धधकते कोयलों की आग से फैलते रक्तिम प्रकाश के एक छोटे-से दायरे में स्थित बाबूजी का चेहरा बरामदे के जीर्ण-शीर्ण टीन से टंगे धुंधुवाये बल्ब की पीली रोशनी के बैक ग्राउंड में कैसा लग रहा था! बाबूजी दरवाजे की ओर ही ताक रहे थे. हो सकता था, उन्होंने उसे देख लिया हो.

वह तेजी से हटकर गली के अंधेरे कोने में छिप-सा गया. उसे ताव आ रहा था—आखिर ये लोग उसे पहलवान क्यों समझे हुए हैं. जरा-सी बात उसे बताने के लिए दोनों रतजगे पर तुले हैं! उसने सोचा—यदि इन्हें यह मालूम हो जायें कि मुझे सारी घटना शाम को ही मालूम हो गयी थी और इसीलिए मैं रात इतनी देर से घर लौट रहा हूं, तो!

वैसे बात जरा-सी तो खैर नहीं थी, परंतु ऐसी भी नहीं थी कि उसे इस तरह ताना जाये. फिर जमाना भी ऐसा मेड़ियाधसान आ गया है कि पचीसों बातें सोच कर भी चलना पड़ता है. उसने कोट की जेब में पड़े हाथों को और भी जोर से भींच लिया था. प्रश्न यह था कि फिलहाल क्या किया जाये. सोचा था, रात देर से घर लौटने पर सब सो चुके होंगे और धीरे-से किवाड़ खुलवा कर वह सो जायेगा. तब सुबह देखा जाता जो होता.

पर अब तो रात खराब हो जाने की संभावना पैदा हो गयी थी. फिर बाबूजी से वही सारी जानी-सुनी घटना नये सिरे से विस्तार से सुनना कितना त्रासद, बोर और असह्य होगा! एकबारगी तो उसका मन हुआ कि बकटुक भाग कर बेसबब रात भर शहर की सड़कों पर घूमता रहे. . .वे सड़कें, जो चमकदार हैं और गली के अंधियारे को भुलाये रहती हैं और जहां कोई उससे कोई अपेक्षा नहीं रखता.

अंदर बाबूजी क्या कर रहे होंगे अभी? वह जानता है कि बाबूजी शाम से अभी तक मां पर अपना यह विश्वास पचीसों तरीके से प्रकट कर चुके होंगे कि जो हो गया, सो हो गया, परंतु अभी शैलेंद्र आ कर एक-एक से हिसाब बराबर करेगा. कोई जंगल का राज थोड़े ही है! इधर उसकी तीव्र इच्छा हो रही थी वह चीख कर कहे कि

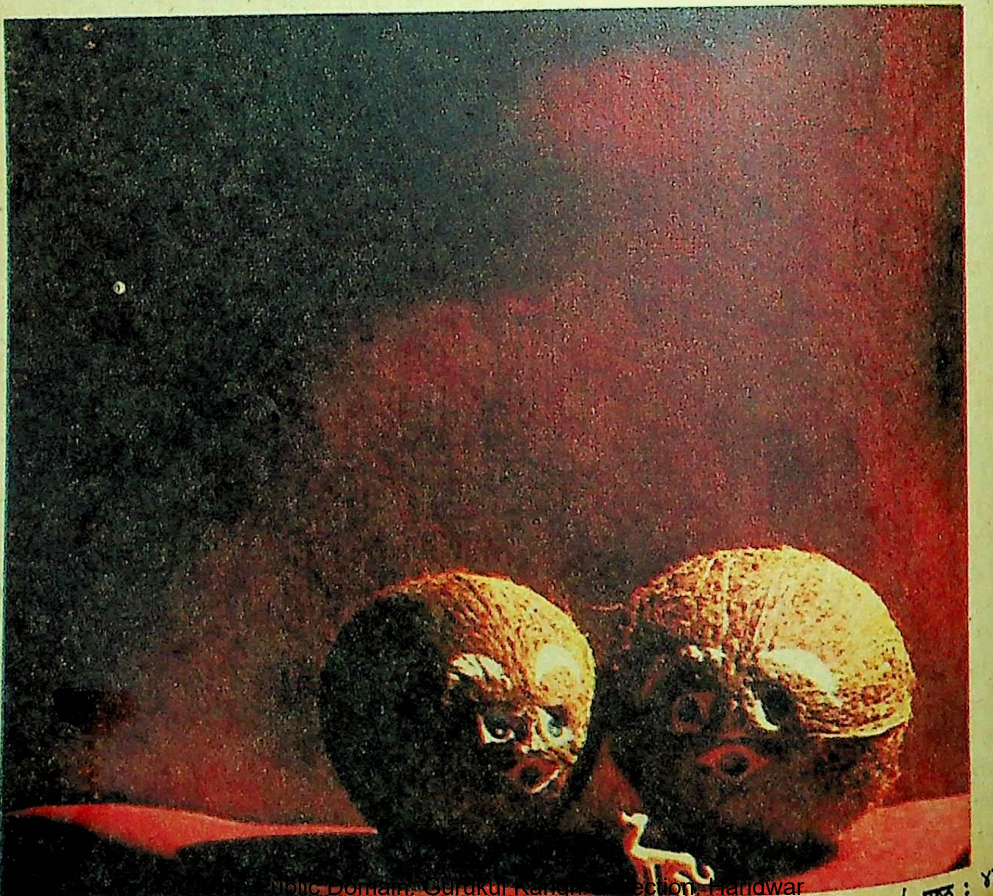

• बी. जी. रुस्तम

Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबूजी, जंगल का ही राज है, और भाग निकले. क्या किया जाये, उसने सोचा.

* *

दरवाजा मां ने खोला था. ढीले-ढाले बैठे पिताजी एकाएक सतर्कतापूर्वक बैठ कर तापने लगे थे. वह तिरछी नजरों से उसे ताक रहे थे. उसे लगा कि बात कह डालने से पूर्व, बाबूजी, बेवजह नाटकीयता उत्पन्न कर रहे हैं. बाबूजी चेहरे से अत्यंत निर्विकार बने जा रहे थे, परंतु फिर भी कुल मिला कर बेचैनी का एक पिंड नजर आ रहे थे. वह जान रहा था कि यदि थोड़ी देर भी इनके सामने रहा, तो ये अपनी बात कह डालेंगे.

वह तेज कदमों से, यथासंभव सहजता जताते, रसोई-घर में घुस गया, जहां मां पहले ही उसके लिए खाना लगा रही थी. वैसे मां का यूं खाना लगाने लग जाना उस स्थिति से बचने का प्रयास था, जो बरामदे में बाबूजी और उसके बीच बात चल निकलने पर उपस्थित हो जाती. परंतु बात फिलहाल टल गयी थी. उसे एक हिंसक प्रसन्नता की अनुभूति हुई. बाबूजी को बात कह डालने में देर लग रही थी और वह परेशान हो रहे होंगे. अच्छा ही था. उसकी नींद खराब करने वालों को इतना भी कष्ट न मिला, तो क्या फायदा!

वह मां को खाना परोसते हुए देखने लगा. मां के उस भांय-भांय करते वीरान, भावहीन-से चेहरे पर उसे पचासों चेहरे उभरते दीखते रहे. . .सभी उदास, थके और किसी भयावह आगत की आशंका के भय से आतंकित-से. मां चुप थी. उसकी चुप्पी अमोनिया गैस की तरह तीखी और असह्य हो आयी थी. वैसे मां की चुप्पी कोई आज की बात नहीं थी. रोज-रोज का मां का यह प्रोफाइल उसके जेहन में किसी भयानक घटना की याद की तरह जम कर रह गया था.

—मां, बस दो रोटियां रखना. . .भूख नहीं है. उसने जैसे अवचेतन की स्थिति में कहा.

मां ने भी बस दो ही रोटियां रख कर थाली उसके सामने खिसका दी. खिसकाने की किसकिसाहट भरी आवाज उसके गले तक भर गयी. उसे लगा, वह कतई भूखा नहीं है. उसे एक फिल्म याद आयी, जिसमें मां अपने जवान बेटे को जबरन खूब खिलाती है. उसका मन भर आया और शायद आंखें भी. पट्टे पर बैठा वह धीमे-से कौर तोड़ कर कुछ देर यूं ही बैठा रहा. मां घिसटते कदमों से बाहर बरामदे में चली गयी. वह धीमे-धीमे खाने लगा, ताकि जितना समय बिताया जा सके, वही ठीक. वैसे बेचारे बाबूजी भी क्या करें! बुढ़ापे में जवान बेटे से यह आशा तो करेंगे ही कि वह सारी दुनिया को उलट सकता है.

ऐसी बात नहीं है कि उसे खराब न लगा हो परंतु वह कर क्या सकता है! यह सच है कि यदि संभव हो पाता, तो वह नत्थू को गोली मार देता. परंतु वह जानता था कि उसके पास कुछ भी नहीं है जबकि नत्थू के पास गोली भी है और उसे मार सकने की हिम्मत भी. नत्थू के लिए चाकू चलाना उतना ही सहज है, जितना ऐसी बातें सोच कर ही उसका कांप उठना.

उसने मां को पानी के लिए आवाज दी.

पानी बाबूजी ले कर आ गये. गिलास रख कर वह उसके ठीक सामने फर्श पर बैठ गये. उसके गले में कौर अटकने-सा लगा. उसने तत्काल के असमंजस के क्षणों से बचने के लिए गिलास उठा लिया. धीरे-धीरे एक-एक घूंट उतारते हुए उसने महसूस किया कि बाबूजी अब अधिक देर तक नहीं रुकने के.

बाबूजी की निगाहें उसे अपने झुके सिर में से लेसर की पैनी प्रकाशधारा की तरह चुभती लगीं. उसने सिर उठा कर देखा.

बाबूजी ने नजरों को वहीं पकड़ लिया. बोले—बेटा, कहां थे अभी तक?

—आप अभी तक सोये नहीं. उसने मूल प्रश्न को महत्वहीन-सा बना दिया.

उसे लगा कि उसकी आवाज का खोखलापन उसके अभिनय को बेमानी बना रहा है.

फिर बाबूजी जो शुरू हुए, तो बता गये कि कैसे शाम को कालेज से लौटती बीना को दो-चार शोहदों ने घेर लिया और छेड़खानी की. बीना ने बताया था कि उनमें एक—नत्थू भी था. सारी घटना बयान करते हुए बाबूजी के चेहरे पर विवशता की शिनाख्त उभर आयी थी. वही चीज उसके चेहरे पर भी उभरने को जोर मार रही थी, परंतु वह उसे सायास दबाये था.

वह सिर झुकाये चुपचाप सारी बात असंपृक्त-सा सुनता खाना खाता रहा. बीच में एकबारगी उसने सोचा कि थाली को लात मार कर खड़ा हो जाये और चीख कर कहे कि मैं अभी नत्थू को बताता हूं कि शैलेंद्र की बहन को छेड़ने का क्या नतीजा होता है.

बाबूजी सारी बात कह कर चुप हो गये थे.

उसे लगा कि अब कुछ उसे भी बोलना ही चाहिए.

—वह पहचानता नहीं रहा होगा कि मेरी बहन है. उसने यूं कह कर पिता को जबरन सांत्वना देने की साजिश की. वैसे वह स्वयं जानता था कि नत्थू उसकी बहन को अच्छी तरह पहचानता है.

बाबूजी को उसके इस कदर तटस्थ रुख अपनाने की आशा कतई नहीं थी. वह एक पल तो बुरी तरह सटपटा-से गये, फिर संभल गये—कुछ भी हो, न पहचानने से का क्या मतलब? यानी पहचान न हो, तो उस लड़की से बत्तमीजी करो!

उसे पिता का यूं सर्वोदयी रूख अख्तियार करना उचित नहीं लगा. फिर अपनी असहायता की अनुभूति की खीज से भरा तो वह बैठा ही था, बोला—आप बेकार की बातें करते हैं, बाबूजी! सारी दुनिया की लड़कियों का ठेका हमने नहीं ले रखा है! हां, इतना है कि हमारे घर की लड़कियों को छड़ने की हिम्मत उसमें नहीं है.

कहने को तो कह दिया परंतु उसे लगा कि 'हिम्मत' शब्द उसे नहीं कहना था. लगा, जैसे दरवाजे के पास ही नत्थू खड़ा है और उसने यह शब्द सुन लिया है. वह भय से थरथरा गया. नत्थू की हिम्मत को यूं चुनौती देने की हिमाकत करना उसे स्वयं का अतिशय बचकानापन लगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब बड़ी बूढ़ी औरतें अपने ज़माने के घरेलू घी की बात करें तब उन्हें बताइये...

विजया घी

बिल्कुल घर में बने घी जैसा

गुणों में उत्तम... कीमत में कम

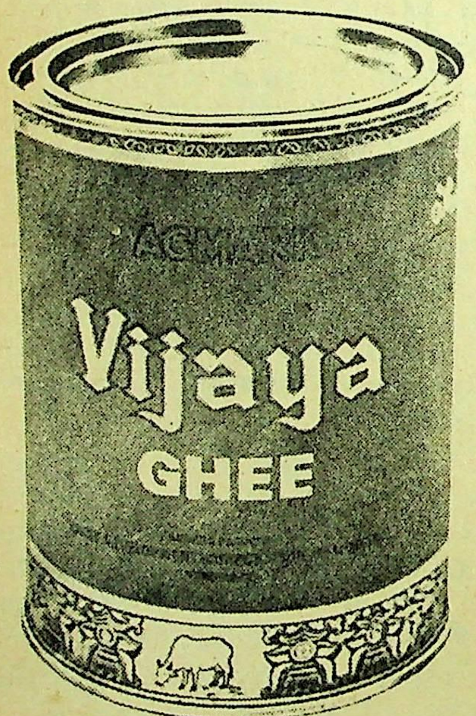

हालांकि यह घर में नहीं बनता लेकिन फिर भी आपको लगता है जैसे यह आपके घर में ही बना है क्योंकि विजया घी भरपूर तत्त्वोंवाले ताज़े दूध से आधुनिक फैक्टरी में बनाया जाता है. इसमें विटामिन भी होते हैं जो अच्छी सेहत के लिए आवश्यक हैं.

पोषक तत्त्वों से भरपूर...गाढ़ा और स्वादिष्ट... बस यही है विजया घी

उत्पादक : आंध्र प्रदेश डेरी डेवलपमेन्ट कॉर्पोरेशन प्राइवेट लिमिटेड. लालापेट, हैदराबाद '५०० ०४०

विजया घी पर उत्तमता का चिन्ह 'एगमार्क' भी लगा होता है.

यह वैज्ञानिक ढंग से हानिरहित डिब्बों में बंद किया जाता है.

एकमात्र घरेलू घी – जो घर में नहीं बनाया जाता.

ANDHRA PRADESH DAIRY DEVELOPMENT CORPORATION PRIVATE LIMITED
(A State Government Undertaking)

kalpa/apd/2/75

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने बाबूजी के चेहरे पर विश्वास के झुठलाये जाने से उत्पन्न विकृति उभरती देखी. उसे लगा कि वहीं कहीं उसको ले कर विद्रूप भी बाबूजी के होंठों पर तैर रहा है. जैसे एकदम अनपेक्षित घट जाने के तुरंत बाद का सन्नाटा हो, ऐसा कुछ उसके और बाबूजी के बीच तिर आया था. उनके डबल लेंस के धुंधराये चश्मे से ताकती निरीह आंखों में उसके प्रति नामालूम-सा भाव उभर आया था, जो निश्चय ही धिक्कार का तो नहीं ही था. शायद बाबूजी भी उसकी असहाय नपुंसकता को पहचान गये थे, जिसने उनकी आंखों में फैले शिकायत के जज्बे को बाहर कर एक ओर कर दिया था. अब अंदर तक धंसी बाबूजी की आंखों में एक बेचैन सूनापन रह गया था.

उसने चाहा कि कुछ ऐसी जोरदार वाक्य-रचना की जाये, जो पिता को इस त्रासद स्थिति से उबार ले जाये. परंतु ऐसा कुछ भी न हो सका. बाबूजी रुई की सदरी को अपने चारों ओर किंचित और जोर से कस कर बैठे रहे. धुएं से स्याह दीवार पर जाने क्या तकते हुए वह अधकचरी दाढ़ी के बाल नोचते रहे. फिर एकाएक वह घुटनों पर जोर दे कर उठे और खड़ाऊं खटखटाते थके, धीमे कदमों से रसोईघर से बाहर चले गये.

खड़ाऊं की धीमी पड़ती खटखट की आवाज जेहन में तेजी से बजने लगी और अवचेतन में चस्पां बाबूजी की वह गदरू जवानी उसे परेशान करने लगी जब पड़ोस की एक लड़की को छेड़ने पर एक लौंडे को बाबूजी ने खड़ाऊं मार-मार कर अधमरा कर दिया था. उसने निर्णय लिया कि कल ही बाबूजी की खड़ाऊं बाहर फेंक आयेगा.

बरामदे में 'हे भगवान, सबका भला कर' का थका-थका-सा स्वर उभरा. यानी बाबूजी सदरी उतार कर खाट पर लेट गये हैं. उसकी आंखों में खरारी खटिया पर निश्चेष्ट लेटे, बरामदे की टीन की छत को ताकते बाबूजी घूमने लगे. उसे लगा कि उसका पेट गले तक भर गया है. एकाएक ही तृप्ति की अनुभूति उलटी हो आने की हद तक हो आयी. वह थाली सरका कर उठ आया.

* *

बिस्तरे पर पड़े-पड़े उसे लगा कि अब उसे सो जाना चाहिए, या कम-से-कम गहरी नींद में होने का स्वांग भरना चाहिए, वरना पास की खाट पर लेटी बीना की उपस्थिति की चुभन उसे रात भर जगाये रखेगी. उसे अपमान की तीखी अनुभूति मथ रही थी.

बीना ने करवट ली. उसकी सांस एक पल को थम-सी गयी. बीना के जागे होने का अहसास उसके अंदर तक भय भर गया. उसे डर लगा कि कहीं बीना उसके जागते होने को न पकड़ ले और बात शुरू कर दे. तब स्थिति बेहुत त्रासद हो जायेगी. पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था.

—भैया. . .

शायद बीना ने आवाज दी—जाग रहे हो?

नहीं, वह चुपचाप पड़ा रहा. उत्तर देने की बात ही नहीं थी.

—भैया, बाबूजी ने ठीक नहीं किया. . .नत्थू के घर जा कर न जाने क्या-क्या कह आये. स्वयं बीना के स्वर में नत्थू को ले कर आतंक की टोन थी.

ज्ञान चतुर्वेदी (जन्म: २ अगस्त, १९५२) ने मेडिकल कालेज, रीवां से एम. बी. बी. एस. किया है और आजकल वहीं एम. डी. (कार्डियोलाजी) के छात्र हैं. मूलतः व्यंग्य लिखते हैं.

जैसे पैनी धार की लंबे फल वाली कोई चीज उसके भीतर बहुत अंदर तक उतर गयी. वह लगभग चीखता-सा बिस्तरे पर बैठ गया. उसने अनुभव किया कि रजाई में होते हुए भी वह बुरी तरह कांप रहा है. पसीने की बूंदें उसके लंबे बालों की कांपती जड़ों से निकल कर गरदन पर बह आयी थीं और बिच्छुओं की कतार-सी रेंगती हुई बनियान के नीचे जा रही थीं. अजीब-सा भयानक तनाव हो आया था.

—क्या कर आये बाबूजी? उसने कांपते स्वर को यथासंभव संयत करते हुए पूछा था.

तब बीना ने बताया था कि बाबूजी को जैसे ही सारी घटना मालूम हुई थी, वह क्रोध से तमतमाते नत्थू के घर पहुंच गये थे. . .बीना को भी साथ में घसीटते. कहते थे कि नत्थू से तेरे पैर न पकड़वा लिये, तो कुछ नहीं किया. नत्थू घर में था नहीं. वहीं उसकी मां को पचासों बातें सुना आये. खूब भीड़ इकट्ठी हो गयी थी. सभी बाबूजी को समझा रहे थे कि नत्थू से उलझना ठीक नहीं, नंगों से कहां तक लड़ोगे! परंतु बाबूजी धमका आये थे कि वह पुलिस में रिपोर्ट करेंगे.

सारी घटना सुनाते-सुनाते, बीना के स्वर में आतंक की थरथराहट और अपराध-बोध, अंत तक पहुंचते-पहुंचते बहुत साफ हो आये थे और फिर वही आतंक-बोध उस पर छा गया था.

यदि नत्थू उस समय घर पर ही मिल जाता , तो? बाबूजी की स्थिति की कल्पना करने मात्र से वह कांप गया. उसकी सांस भर आयी. फिर एकाएक उठ कर उसने लाइट आन की, पैंट पहनी और खाट के नीचे चप्पलें टटोलने लगा.

—कहां जा रहे हो भैया? बीना ने पूछा था.

—नत्थू से हिसाब चुकता करने! स्साले की टांग न तोड़ी तो आज कुछ न किया!

उसकी आवाज का खोखलापन बुरी तरह बज उठा था परंतु तब तक वह गली में आ गया था.

अब वह तेज कदमों से नत्थू के घर जा रहा था. बाबूजी की मूर्खता की माफी अभी रात ही में मांग ले, तो कम-से-कम रात भर चैन से सो तो सकेगा! □□□

गुलफाम हाउस, कालेज रोड, रीवां (म. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भैया साब का पटाक्षेप

• नरेंद्र मौर्य

मैं तेजी से जीप चला रहा था. रंगलाल और भैया साब पीछे बैठे हुए थे. पिछले मंगल को ही राज्यपाल ने भैया साब को शपथ दिलायी थी और आज सुबह वह अपने क्षेत्र की सद्भावना-यात्रा पर पधारे थे. भैया साब का मुझ पर विशेष स्नेह है. अब वह राजधानी में भी मुझे ही अपना ड्राइवर रखेंगे. सरकारी वेतन और वरदी मिलेगी.

पुल के मोड़ पर मैंने भैया साब के आदेश पर जीप रोकी. भैया साब उतर कर नदी के किनारे-किनारे चलने लगे. रंगलाल के हाथ में एक थैली थी जिसमें दारू की दो शीशियां और तीन गिलास रखे थे. आधा मील चलने के बाद भैया साब ने आसपास देखा और आश्वस्त होकर एक वृक्ष की छाया में जमने का आदेश दिया. रंगलाल ने थैली से शीशी निकाली. गिलास भरे. सबने जम कर पी. इतनी अच्छी दारू हमने जिंदगी में पहली बार पी थी.

अचानक भैया साब उठ कर खड़े हो गये. उन्होंने जाकेट की जेब में हाथ डाला. मुझे धांय-धांय की दो आवाजें सुनाई दीं और रंगलाल की तड़फड़ाती हुई लाश सामने पड़ी थी जिसे मैं केवल आंख फाड़े देखता रहा. भैया साब ने पिस्तौल जेब में रखी और मेरा हाथ पकड़ कर खींचते हुए जीप तक लाये. दूसरे दिन भैया साब और मैं राजधानी के सरकारी बंगले में खड़े थे. भैया साब ने लंबा मौन तोड़ते हुए पूछा—तुमने कल क्या देखा था?

मेरी आंखों के सामने रंगलाल की तड़पती हुई लाश घूम गयी परंतु मुंह से कुछ नहीं निकला. भैया साब ने ही कहा—तुम समझदार आदमी हो, यानी कि तुमने कुछ नहीं देखा था. उन्होंने कुछ कड़कड़ाते हुए नोट मेरे हाथों में पकड़ाये और ऊपर आराम करने चले गये.

* *

रंगलाल की और मेरी बचपन से दोस्ती थी. हम दोनों साथ-साथ भैया साब के गांव में काम करते थे. चुनाव के दिनों हमें शहर बुला लिया जाता था. हम दोनों ऊंचे-ऊंचे दरख्तों पर चुनावी पोस्टर लटकाते फिरते थे. चुनाव के बाद वापस गांव आ कर भैया साहब के खेतों में काम करवाते और हाली-चरवाहों पर निगाह रखते थे. उन्हीं दिनों रंगलाल ने दो-चार बलात्कार सफलतापूर्वक आयोजित किये थे और उसकी प्रतिभा घूड़े पर से कूकने लगी थीं. प्रतिभा को प्रोत्साहन देना भी भैया साब के जीवन का एक बड़ा हिस्सा था. भला वह रंगलाल की उपेक्षा कैसे करते? शीघ्र ही वह भैया साब का खास आदमी माना जाने लगा था. कुछ दिनों बाद उसे शहर बुला लिया गया था. वह हम सबसे अलग शहर में बाबू बना फिरता था.

किसी काम से एक बार वह गांव आया हुआ था. मैंने उससे कहा— भैया, मेरी रुकी हुई पगार भैया साब के मुनीम से दिलवा दे. उसकी सिफारिश पहुंचते ही मुझे तुरंत शहर बुलाया गया और एक स्थानीय उस्ताद के पास दो महीने की ट्रेनिंग दिलवा कर मुझे मालकिन की गाड़ी पर ड्राइवर नियुक्त कर लिया गया. मालकिन को कभी-कभार गाड़ी की जरूरत पड़ती थी. मैं हमेशा फुरसत में ही रहता था.

• योग जॉय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछले बार जब स्टेशन चल रहा था, भैया साब राजधानी गये थे. रंगलाल भी फुरसत में बैठा था. मैंने उससे कहा—यार, तू बड़ा भाग्यवान है. भैया साब तेरी कितनी इज्जत करते हैं!

वह मुझे ऊपर ले गया जहां भैया साब और रंगलाल के अतिरिक्त कोई नहीं जा सकता था. उस खास कमरे में पहुंचते ही मैंने देखा, दीवारों पर आदमकद कामुक चित्र लगे थे. मेरी धड़कन बढ़ गयी थी. कुछ भय-सा लगने लगा था. रंगलाल ने मुझे बताया—इस बनारसी नाई ने भैया साब के बाल जरूर काले कर दिये हैं परंतु असल में वह बूढ़े हो गये हैं. उम्र की सीमाओं ने भगवान तक को नहीं बख्शा, फिर भैया साब की कौन बिसात! परंतु भैया साब की निगोड़ी आत्मा मानती ही नहीं. शिलाजीत भी अब भैया साब पर कोई असर नहीं करती. इस बनारसी नाई के कहने से ही भैया साब इस कमरे में मुझसे तेरह-चौदह वर्ष की कच्ची उम्र की लड़कियों पर बलात्कार करवाते हैं. कम उम्र लड़कियों की चीख-पुकार उन्हें उत्तेजित करती है. वह छुप कर दर्शनलाभ भी प्राप्त करते रहते हैं. देखते-देखते जब वह अपने भीतर तनाव महसूस करते हैं, तो मालकिन के कमरे की ओर दौड़ पड़ते हैं. इसके अतिरिक्त अब कोई दूसरा तरीका भैया साब की नसों में तनाव पैदा नहीं कर सकता... परंतु अब मैं तंग आ गया हूं, इस सबसे.

★ ★

रंगलाल ऊपर से मस्ती की जिंदगी जी रहा था, परंतु उसे स्वयं अपने ही अंतर्द्वंद्वों से लड़ना पड़ रहा था. उसकी आत्मा उसे रात-दिन कोसती रहती थी. फिर हमेशा नयी लड़की क्लोरोफार्म की सहायता से उठा कर लाना भी तो आसान नहीं था.

पिछले महीने रंगलाल जीप से रामतरन भाई की लड़की लेने गया था. क्लोरोफार्म सुंघाने से पहले ही लड़की चिल्ला कर खड़ी हो गयी. लोगों ने रंगलाल को देख लिया. वह किसी तरह जान बचा कर भाग आया. शहर में सभी जानते थे कि रंगलाल भैया साब का खास आदमी है. भैया साब की बड़ी बदनामी होने लगी. पिछले वर्ष हास्पिटल में बीस-पच्चीस कच्ची लड़कियों को टांके लगे थे. पुलिस ऐसे खतरनाक अपराधी की तलाश में थी ही. परंतु भैया साब की हवेली की तलाशी लेने की हिम्मत भला किसमें थी! रंगलाल को गांव वाले गोदाम में छुपा दिया गया जहां उसने पिछला एक महीना बिता दिया. उसे इस पूरे महीने शहर के समाचारों से अवगत नहीं कराया गया. फिर भी वह शहर में अपने प्रति उत्पन्न रोष से भयभीत था. मैं उसे दोपहर में जीप से जाकर दोनों वक्त का खाना और एक शीशी दुबारा दे आता था. उसने एक दिन मुझसे कहा—कभी-कभी मेरा मन करता है, इस बूढ़े भैया साब को पकड़ कर निचोड़ दूं और खुद रेल की पटरी तले सो जाऊं. . .कहीं ऐसा न हो कि मैं बाहर निकल कर सच-सच बकने लगूं.

छुपने के सात-आठ दिन बाद ही वह चिड़चिड़ा हो गया था. उसके लिए मैंने दो शीशियां दुबारा लाना शुरू कर दिया था. परंतु दोनों शीशियां मिल कर भी उस पर काबू नहीं रख पातीं थीं. भैया साब सोच रहे थे, कुछ दिनों में सब ठीक हो जायेगा. लोग सब भूल जायेंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और रंगलाल उनकी पुनः उसी प्रकार सेवा करता रहेगा. परंतु शहर के कुछ युवक भैया साब की हवेली में घुस कर रंगलाल को निकालने की योजना बना रहे थे. रंगलाल का एकाएक अंतर्धान हो जाना भी इस बात की पुष्टि कर रहा था कि तमाम कम उम्र लड़कियों के साथ किये गये बलात्कार के लिए रंगलाल ही दोषी है. कुछ लोग दबी जबान से भैया साब का नाम भी इस सबके लिए ले रहे थे.

भैया साब बाढ़-रोकथाम उपमंत्री थे. वह हमेशा मुझे अपने नजदीक रखते थे और मौके-बेमौके अधिक स्नेह-सुविधा उडेलते रहते थे. फ्रिज में रखी लौकी की तरह हमेशा तरोताजा रहनेवाली मालकिन भी राजधानी आ कर रहने लगीं. मुझ पर भैया साब की भांति उनका भी विशेष स्नेह था. उनके खुशामदी व्यवहार से उजागर था कि उन्हें रंगलाल से संबंधित घटनाओं की जानकारी थी.

वर्षाऋतु आरंभ होते ही भैया साब समाचारपत्रों में गहरी दिलचस्पी लेने लगे. उनके कान बाढ़ के समाचार सुनने के लिए तड़प उठते. इसी सिलसिले में भैया साब ने मालकिन को समझाया—दस-बीस शहरों के बह जाने का मतलब है जोर-शोर से राहत-कार्य का शुरू हो जाना और राहत कार्य शुरू हो जाने का अर्थ होता है अपनी दस-बीस पीढ़ी को राहत मिल जाना.

मालकिन वैसे ही बड़ी धर्मप्राण महिला थीं. उक्त सूत्र समझ में आते ही उन्होंने और अधिक श्रद्धा के साथ दोनों समय मंदिर जाना प्रारंभ कर दिया. इसके बाद भी जब प्रदेश में कहीं बाढ़ नहीं आयी, तो उन्होंने मंदिर में कथा करायी, नारियल फोड़े और भूखों में खाना बंटवाया. भगवान सबकी सुनता है. लगातार अड़तालीस घंटे वर्षा होती रही. परंतु दुर्भाग्यवश फिर भी कहीं से बाढ़ के समाचार नहीं मिले. आखिर मालकिन ने भगवान के पास जाकर मन्नत मानी कि हे प्रभु, यदि पांच-दस शहर बह जायें तो आपके चरणों में अपने पति का तुलादान करवाऊंगी.

दूसरे दिन मैं बंगले के सामने खड़े सिपाही से बतिया रहा था. इतने में ही अखबार वाला अखबार दे गया. ऊपर ही समाचार था–'नर्मदा में भीषण बाढ़. . .' 'कई शहर जलमग्न'..

मैं अखबार ले कर दौड़ता हुआ हुआ अंदर आया. भैया साब बाथरूम से टावेल लपेट कर निकल रहे थे. मैंने अखबार उनके हाथ में दे दिया. उन्होंने जैसे ही अखबार देखा 'आ गयी. . .आ गयी' चिल्लाते हुए मालकिन के कमरे की ओर भागे. उनका लपेटा हुआ टावेल रास्ते में गिर पड़ा. मैं टावेल उठा कर उन्हें देने ऊपर पहुंचा. भैया साब को साक्षात रूप में देख कर मालकिन कह रही थीं—क्यों ठिठोली करते हो! दस बच्चों के बाप हो गये, बचपना नहीं गया!

परंतु भैया साब ने जैसे ही अखबार पढ़ कर सुनाया, वह भी भैया साब के साथ पुलक के मारे कूदने लगीं–आ गयीं. . .आ गयीं!

मुन्नू और पप्पू बगल वाले कमरे में थे. उन्होंने जैसे ही नृत्य और गायन सहित यह मनोहर दृश्य देखा, तो वे डर कर मुझसे चिपट गये. मैंने उन्हें समझा कर नीचे भेजा और भैया साब को टावेल देकर नीचे चला आया.

★ ★

आज भैया साब गद्गद् थे. उन्होंने प्रेस-वार्ता आयोजित की.

"बाढ़ का युद्ध स्तर पर मुकाबला" जैसे तूफानी शीर्षकों के अंतर्गत वार्ता अखबारों में विज्ञापन रेट पर छपवायीं, तब जा कर राहत कार्य करने लायक स्थिति बनी. पहले भैया साब मालकिन के साथ बाढ़ग्रस्त क्षेत्र का दौरा करने गये. हेलिकोप्टर पर चढ़ते-उतरते समय तस्वीरें खिचवायीं. तसवीर खिचाते समय मुसकाये. वैसी जिंदादिल मुसकान मैंने टूथपेस्ट के विज्ञापनों के अतिरिक्त और कहीं नहीं देखी थी.

उसके बाद राहत-कार्य प्रारंभ हो गये. राहत-कार्यों के साथ-साथ भैया साब के चेहरे और बंगले पर रौनक बढ़ती गयी. अचानक टेलिफोन पर सूचना मिली कि एक और शहर बाढ़ की चपेट में आ गया है और नागरिक एक मैदान में भूखे पड़े हैं.

भैया साब तुरंत हेलिकॉप्टरों में खाद्यसामग्री और तंबू लदवा कर उक्त स्थान पर पहुंचे. मैं भी उनके साथ था. मैंने देखा, उनकी रसलोलुप आंखों को यहां बड़ी तृप्ति मिली. दो बड़े-बड़े तंबू गड़वाये . एक में पुरुषों की तथा दूसरे में महिलाओं की व्यवस्था की गयी. उन्हें खाने को दिया गया. लोग दो-तीन दिनों के थके और जागे हुए थे, इसलिए वे सरकारी दरियां डाल कर अपने तंबू में पड़ गये. महिलाएं स्वभावानुसार बातें करती रहीं.

अचानक भैया साब की इच्छा भाषण करने की हुई . उनके एक सेक्रेटरी ने साफ-साफ अक्षरों में भाषण लिख कर दिया. हम सब महिलाओं के तंबू में पहुंचे. अब मंच की समस्या थी. आखिर मंत्री को कुछ ऊपर खड़े होकर तो बोलना ही चाहिए. अंत में मैंने उन्हें पिटकुली बिठा कर समस्या का समाधान किया. उन्होंने अपना भाषण पढ़ने के लिए जेब से कागज निकाला. परंतु वह अपना चश्मा राजधानी में ही भूल आये थे, अतः वह स्वयं के विचारों को व्यक्त करने लगे—बालाओं और ललनाओं, हमारे लिए यह बाढ़ वरदान सिद्ध हुई है अन्यथा आपका लावण्यमय रूप हम कहां निहारते! देखिए, मेरे सामने बैठी इस ललना का नाभिप्रदेश कितना मधुर और पावन है! हमारे बायें बैठी इस बाला की जंघा भी कितनी सुडौल एवं सुथरी है ! आप सभी पावन ललनाएं भीगे वस्त्रों में मादक लगती हैं. आपके कपोल अवश्य ही दारू की भट्ठी की तरह गरम होंगे. मेरा जीवन धन्य है!

यह मैदान नहर विभाग की जिस पाल द्वारा सुरक्षित था, उस पाल की आस्था डोल गयी और वह लहरों के साथ थिरकने लगी. एकाएक सारा मैदान जलमग्न हो गया. लोग जान बचा कर भागे. मैं भी वजनी भैया साब को वहीं पटक कर अपनी जान बचा कर भागा. बाद में डूबते-तैरते किसी तरह एक गांव में पहुंचा. वहां से एक दिन पैदल चल कर रेलवे स्टेशन आया. भैया साब के संबंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

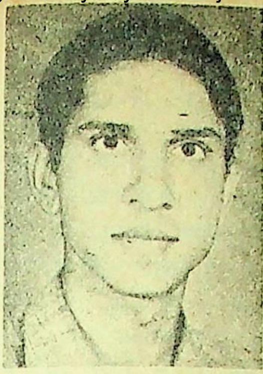

नरेंद्र मौर्य (जन्म : '४८ के आसपास) के लिए लेखन सवाल उठाने का माध्यम है—पारिवारिक, सामाजिक तथा व्यवस्थाजन्य परिवेश को लेकर, शिक्षा : एम. कॉम. के बाद एल. एल. बी. (अंत्य.)

मैं बाद में पता चला कि उन्होंने वहीं जल-समाधि ले ली.

मैं किसी तरह राजधानी पहुंचा. मालकिन बहुत परेशान थीं. मुझे देख कर थोड़ी आश्वस्त हुईं. उन्होंने मुझसे घबराते हुए कहा—देखो भैया, भगवान ने अपनी मनोकामना पूर्ण कर दी है. दोनों तिजोरियां ठसाठस हो गयी हैं, इसलिए भगवान के मंदिर में तुलादान देना अनिवार्य है. परंतु भैया साब की भौतिक उपस्थिति के अभाव में तुलादान असंभव था.

मैं और मालकिन मंदिर के पुजारी से पूछने गये कि ऐसी स्थिति में शास्त्रों में क्या है?

पुजारी ने बड़े-बड़े पोथे खोले. फिर गंभीरता-पूर्वक वह इधर-उधर पन्ने उलटता रहा. बीच-बीच में वह एक तिरछी चितवन से मालकिन के गदराये बदन की ओर भी देख लेता था. बड़ी लंबी खोजबीन के बाद उसने कहा—शास्त्रों में एक उपाय है. . .

बहुत पूछने पर कहने लगा कि आप रात भर के लिए किसी को पति बना लें. सबेरे उसका मंदिर में तुलादान करवा दें.

मालकिन ने मेरी और पुजारी की देह की ओर बारी-बारी से निगाह डाली. मालकिन की निगाह उसी पर जम गयी. पुजारी को शाम का निमंत्रण देकर मालकिन और मैं लौट आये.

दोपहर में मालकिन और मैं विवाह के लिए आवश्यक वस्तुओं की खरीदारी करते रहे. शाम को पुजारी के आने के पहले सभी बच्चों और नौकरों को फिल्म देखने भेज दिया गया.

नियत समय पर पुजारी आया. उसने अत्यंत शार्ट कट पद्धति से मालकिन से विवाह कर लिया. सुहाग सेज सजाने की जिम्मेदारी मेरे सिर थी. मैं मालाओं को लटका ही रहा था कि वर महोदय ने उतावली करते हुए मुझे बाहर निकाल दिया.

सुबह विधान-सभा का सत्र प्रारंभ होनेवाला था. भैया साब के शोक-संतप्त परिवार को सांत्वना देने के लिए एक शोक-प्रस्ताव पढ़ा जाना था. उधर मंदिर में पुजारी के तुलादान की तैयारी हो रही थी. इस प्रकार भैया साब की यह अंतिम लीला भी समाप्त हो गयी.

□□□

गांधी चौक, हरदा (म. प्र.)

सारिका

जुलाई १९७५

नवलेखन—दो
तथा लघुकथाएं

आज की जिंदगी की सच्चाइयां, तल्खियां और आम आदमी की दारुण स्थितियां !

ये एकदम ताजा और नये लेखक क्या सोचते हैं ?
इस अंक की कहानियां मात्र यथार्थ अनुभवों की कहानियां ही नहीं हैं—अनुभवों का अर्थ भी इनमें निहित है !
साथ ही पचास से अधिक लघुकथाएं जो आज की सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों पर व्यंग्य ही नहीं करतीं अपितु आज के आदमी को कहीं गहराई तक इनसे जोड़ती भी हैं.
तथा सभी स्थायी स्तंभ-कबिरा खड़ा बजार में, चंद सतरें और, मेरा पन्ना, विविधा आदि.

● इस अंक के लेखक :
अभय, नवनीत मिश्र, रामनारायण सिंह चौहान, आनंद कुरैशी, रवींद्रनाथ उपाध्याय, शंकर, रामदेव शुक्ल, दिलीपकुमार बनर्जी आदि.

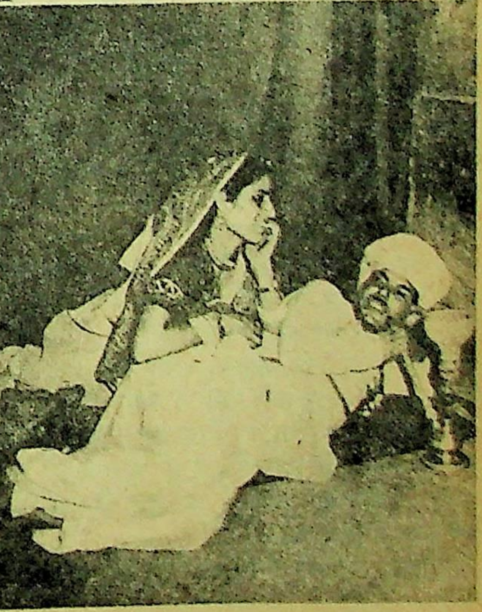

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंधे कुएं का रास्ता

● अरुण मिश्र

बाहर से अधिक, भीतर घटती घटनाओं को अकेले ही देखते-देखते दम घुटने लगा है. दम तो घुटना ही है. किंतु दम घुटने के पहले किसी से कहना चाहता हूं. बस, इसलिए लिखने बैठ गया हूं. वैसे मैं जानता हूं कि कहानी ऐसी नहीं होती जैसी कि लिख रहा हूं.

मैं बराबर लड़ता रहा हूं. लड़ते-लड़ते स्वयं को जीवित रखने का . . . गर्म रखने का निरंतर प्रयास किया है. किंतु लड़ते-लड़ते तह-दर-तह बर्फ कैसे जमती चली गयी, यह मैं नहीं समझ पाया हूं. और अब मैं ठंडा हो चुका हूं. एकदम ठंडा. यदि स्पष्ट शब्दों में कहूं तो स्वयं को नपुंसक महसूस करने लगा हूं. करने क्या लगा हूं, हो गया हूं.

सुना है, कहानी में फूलों की बात होती है. मेरे दायरों में कभी कोई फूल खिला ही नहीं, तब फिर फूलों की बात कैसे करूं! फूलों का नाम भर ले लेने से यदि मेरी बात आपको कहानी जैसी लगती है तो फिर मैं अपनी बात फूलों से ही शुरू करूंगा.

मुसकराते हुए फूलों ने मुझे गुदगुदाया न हो, सो ऐसी बात नहीं है. शोख फूलों ने मुझे हर सीमा तक आकर्षित किया है. किंतु जब भी उनकी ओर हाथ बढ़ाया, लहूलुहान हो गया. चौंकिए मत. फूलों से हाथ कभी लहूलुहान नहीं होते. स्थापित व्यवस्था की नागफनी हमेशा आड़े आ जाती थी.

वैवाहिक विज्ञापन पढ़-पढ़ कर मेरा दिमाग घूमने लगा था. पिताजी की भी प्रबल इच्छा थी. उन्होंने अपने तन के साथ-साथ मेरी मां के भी तन के टुकड़ों को चमकते हुए सिक्कों में बदल डाला. और उनका लाड़ला बेटा इंजीनियर हो गया. मेरे पास होने की अपार खुशी में उन्होंने अपने तन का एक और टुकड़ा ढेर सारी मिठाई में बदल डाला. किसी पड़ोसी को उस मिठाई के टुकड़ों में आदमी के गोश्त की बू नहीं आयी. आदमी आदमी के गोश्त का कितना अभ्यस्त हो गया है! मां को भी पता नहीं चला कि उसके जिस्म का कोई हिस्सा गायब हो चुका है. शायद उसके लिए यह एक निहायत साधारण-सी बात हो! तभी न अपनी पड़ोसिन के साथ कितने गर्व से बतिया रही थी —— अपना अनुज कुमार अब इंजीनियर हो गया है. अनुज कुमार! मां के मुंह से यह संबोधन सुन कर मैं चौंक गया था. अन्न के सिवा उसने कभी अनुज भी नहीं कहा था! क्या अपनी मां के लिए भी मैं आदर की वस्तु हो गया हूं? आस-पड़ोस में इंजीनियरों के प्रति अगाध आदर-भाव देख-देख कर शायद मां के भीतर मेरी डिग्री ने आदर-भाव को ममता की जगह प्रतिस्थापित कर दिया था. पिताजी ने भी तो मेरा रिजल्ट मुझे चौंकाते हुए ही सुनाया था —— गुड मार्निंग, इंजीनियर साहब! अचानक कितना परिवर्तन मैंने महसूस किया था.

डिग्री लेते-लेते वैवाहिक विज्ञापनों में भी तो एक परिवर्तन हुआ था. एक बुनियादी संशोधन —इंजीनियर के पहले 'पदासीन' शब्द और जुड़ गया था, जिसे पढ़ कर मेरे साथ-साथ पिताजी का मुंह भी लटक गया था. मेरे साल भर ही बेकार रहने से उनकी अक्ल ठीक काम करने लगी थी—— इसे 'भैया साव' के साथ लगा देता तो ज्यादा अच्छा होता. कम-से-कम पचीस-पचास कमा तो लेता. पढ़-लिख कर तो किसी काम का नहीं रहा! बल्लू बाबू के लड़के को देखो, क्या ठाट के साथ 'भैया साव' के साथ जीप में घूमता है और ऐंठता है, जैसे उसके बाप की ही गाड़ी हो!

गीता को अपना आदर्श मानने वाले और उस पर अमल करने वाले अपने आदरणीय पिताजी के मुंह से यह सुन कर मुझे बुद्ध की तरह ही सत्य के दर्शन हुए — इंजीनियर, आदमी नहीं होता. इंजीनियर डिग्री नहीं होती. इस महान लोकतांत्रिक देश में इंजीनियर होती है कुर्सी. कुर्सी तक पहुंचने के लिए इस समाजवादी व्यवस्था में चाहिए १८० अंश का अर्थ-कोण. अन्य सभी कोण भ्रमित करते हैं. गलत-सलत दृष्टिकोण को पैदा करते हैं.

मैंने पलट कर देखना चाहा कि मां-बाप मेरे लिए अब अपने जिस्म का कौन-सा टुकड़ा सिक्कों में बदल सकते हैं. कुछ भी तो दिखाई नहीं पड़ा. उभरती हुई छायाएं-सी जरूर दीख पड़ी थी. . . धुंधली-धुंधली. फिर स्पष्ट होने लगी थीं प्रेत की शक्ल में. मैं कांपने लगा था. लगता था, बस एक बार और धक् से हो कर सब कुछ शांत हो जायेगा. किंतु इतनी आसानी से सब कुछ शांत नहीं होता. शांत होने के पहले निरंतर लड़ना होता है. जूझना पड़ता है. सहना पड़ता है. तिल-तिल कर गलना होता है. और शांत मैं भी नहीं हुआ. आंखें स्वतः खुल गयीं. प्रेत अभी भी ज्यों-के-त्यों अस्तित्ववान थे. मैंने महसूस किया कि उन प्रेतों का आकार धीरे-धीरे घट रहा है. मेरे देखते-ही-देखते बच्चों की तरह मचलने लगे——हम मोटर में बैठेंगे. . . हमें मोटर ला दो न! हम आइसक्रीम खायेंगे, चिल्ड्रेन पार्क जायेंगे, टॉफी खायेंगे. . . हमें टॉफी दो. . . स्वर में क्रोध भर चुका था —— हमें टॉफी दो! आइसक्रीम दो! मोटर दो! चिल्लाते-चिल्लाते वे गुर्राने लगे थे. उनकी हर आवाज गुर्राहट में बदल गयी थी और उनका आकार भी बदल गया था. . . ठीक पांच फुट साढ़े आठ इंच. अब वे अधिकारपूर्ण लहजे में झुंझलाते हुए कह रहे थे, पैसे नहीं हैं तो पैदा क्यों किया था? क्या जरूरत थी? हमें एजूकेशनल-टूर में जाना है और अवश्य जाना है. कहीं से भी पैसे लाओ पर लाओ. पूरे पांच सौ रुपये. एक पैसा भी कम नहीं. हां-हां-, सिगरेट पीते हैं. पियेंगे और हजार बार पियेंगे. शराब भी पीते हैं. हॉस्टल में रह कर सब करना पड़ता है. . . जुआ भी खेलते हैं. तुमसे मतलब? लगा था कि तैश में आ कर ये प्रेत अब हाथ उठा ही देंगे. और उठा ही दिया. लगा था चमड़ी उघड़ गयी है. वास्तव में चमड़ी उघड़ने लगी थी. शेष रह गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

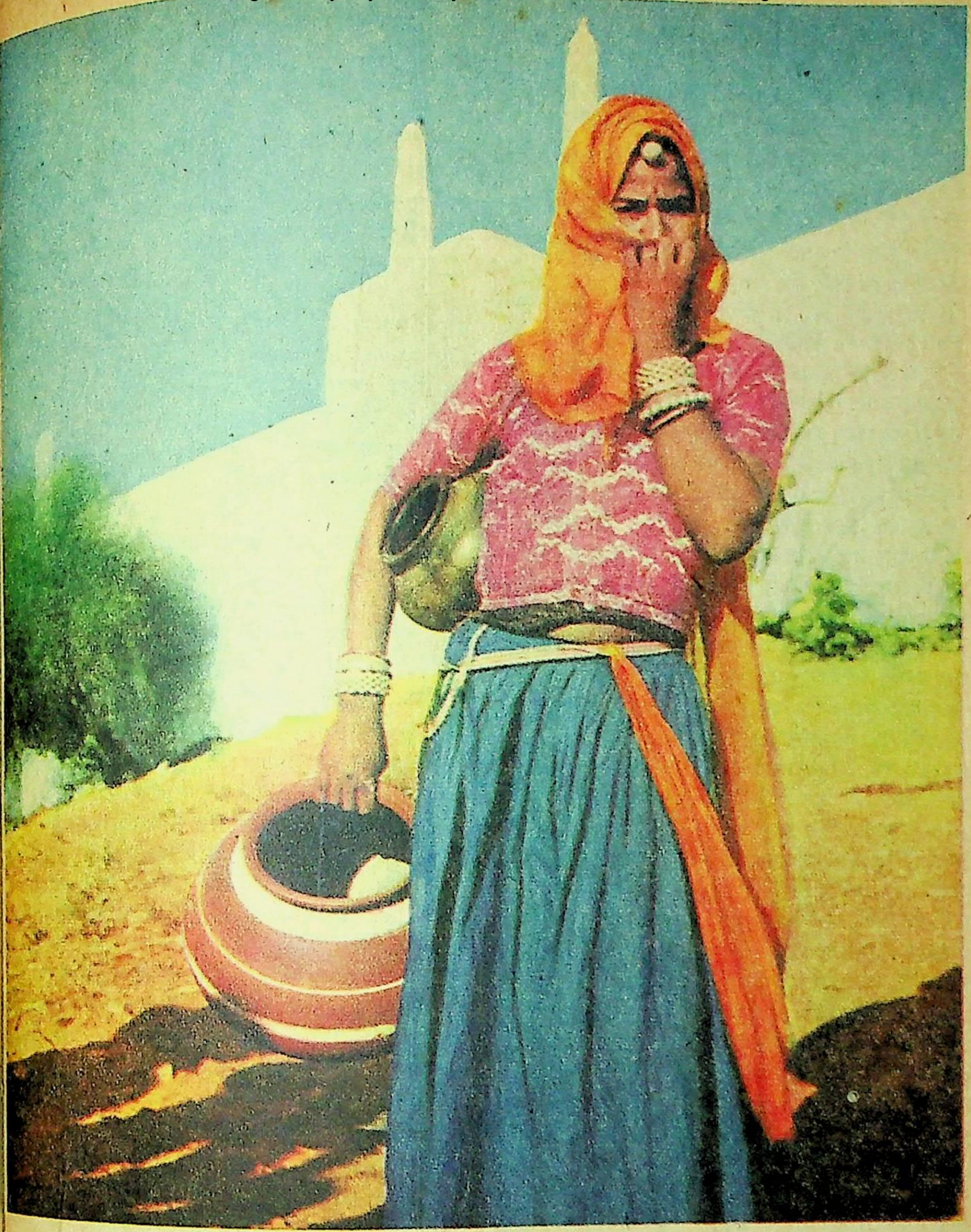

थे हड्डियों के खोखले ढांचे. हड्डियों के ढांचेनुमा प्रेत घिघिया रहे थे — अब हमें मुक्ति दो इंजीनियर अनुज कुमार शर्मा, हमें मुक्ति दो! कब तक सहें! अब नहीं सहा जाता! बहुत भूख लगी है. हमें रोटी दो! हमें एक रोटी रोज चाहिए. बहुत भूख लगी है. फुंक रहा है पेट! बुखार नहीं, यह पेट की आग है स्साले! आंखों के गड्ढों से चिंगारियां फूट रही थीं. मैं बेहद डर गया था इस बार— हमें रोटी दे हरामजादे, नहीं तो तुझे ही भून कर खा जायेंगे! कानों में गरम-गरम कुछ पिघल रहा था. विचार-शून्य होते हुए मैं गिर पड़ा था. शायद बेहोश हो गया था.

सुबह निर्णय ले लिया था—कुछ करना है. और मस्टर रोल में मेरा नाम भी काली स्याही में दर्ज हो गया. मजदूरों के साथ नियमित रूप से सुबह-शाम मैं भी बांग देने लगा. ओवरसियर का मुख हाजिरी लेते वक्त समस्त सहानुभूति के बावजूद चमक उठता था. उसका शब्द नहीं, स्वर अर्थपूर्ण होता था— मेरे अंदर एक ग्रेजुएट इंजीनियर है. डिप्लोमा वाला नहीं, ई. ई. और एस. ई. की तरह डिग्री वाला इंजीनियर. मैं उसे आर्डर दे सकता हूं. परंतु आने वाले कल की संभावनाओं को सोच कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी आवाज ऑर्डर देने से पहले ही लड़खड़ा जाती. स्वर का सारा दर्प बुझ जाता. यहां पर अवश्य मेरी डिग्री ने अपना रोल अदा किया. डिग्री ने एक और रोल अदा किया. मुझे एक रुपये अस्सी पैसे नहीं, बल्कि दो रुपये अस्सी पैसे मिलते थे. आखिर मैं क्वालिफाइड इंजीनियर जो था. पढ़े-लिखे और गैर पढ़े-लिखे में फर्क करना सरकार जानती है. इज्जत करती है.

साइट पर मैंने महसूस किया कि मैं कम-से-कम साधरण आदमी तो नहीं हूं. इसीलिए मैं जितना भी लोगों में घुलने-मिलने का प्रयास करता, लोग सहम कर पीछे हट जाते. मेरे सामने बात करते हुए डरते. ओवरसियरों की ओर जाता तो वे एकाएक चुप हो जाते. या फिर ऊटपटांग बकने लगते, जिस बकवास में भिन्न-भिन्न साइट की रेजाओं के चर्चे भी शामिल होते. एस.डी.ओ. एवं एग्जीक्यूटिव इंजीनियर की सहज सहानुभूति ने मुझसे मेरा आदमीपन छीन लिया था. मुझसे सब सहमे-सहमे-से रहते. मैं कर भी क्या सकता था! आखिर कुर्सी-विहीन डिग्री-युक्त इंजीनियर जो था.

उन दिन मेरे ओवरसियर की रही-सही औपचारिक सहानुभूति भी खत्म हो गयी. मैंने अपनी डिग्री का अपने ज्ञान का अनावश्यक प्रयोग करना चाहा था. चार-छह ठेकेदार मेरे ओवरसियर को परेशान कर रहे थे — साब, जल्दी से बिल बना दो, नहीं तो लेबर हमारी जान खा जायेगी. दो दिन से भूखी है. उधर ओवरसियर 'बड़े साब' (सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर) के इंस्पेक्शन में बुरी तरह बिजी था. ढेर सारी टेक्निकल परेशानियां थीं— साहब को बेड-टी मिली कि नहीं, उनके कप में चीनी तो नहीं पड़ गयी, नहाने का पानी गरम होना है. साहब की सिगरेट खत्म हो गयी है. साइट पर तो हाथ से सिगरेट अलग ही नहीं होती. ड्राइवर को शहडोल भेजना पड़ेगा. बच्चों को मोटर बोट में घुमाना है. सुबह से मचल रहे हैं. उनके खलासी और ड्राइवर को चाय मिली कि नहीं, कल जरा-सी देर हो गयी थी तो मेम साब कितना बिगड़ी थीं! ठीक ही तो" कह रही थीं— भई, इन छोटे लोगों का हमसे भी ज्यादा ध्यान रखना चाहिए. बेचारे पाते ही कितना हैं! सुनकर लगा था कि समाजवाद इन्हीं के श्रीमुख से फूट कर गंगा की तरह सारे देश में फैल जायेगा. बड़े साहब तो गरीबों का खयाल रखने में अपनी थुलथुल बीवी से चार कदम और आगे थे. ओवरसियर से बात करना अपनी तौहीन समझते थे, अतः एस. डी. ओ. को बुला कर लगभग चीखते हुए बोले — मेरे खलासी और ड्राइवर को अभी तक चाय क्यों नहीं मिली? क्या अरेंजमेंट है तुम्हारा? यू आर नाट फिट फार फील्ड वर्क. . . . तुम्हें और तुम्हारे ओवरसियर को सस्पेंड कर दूंगा! दूर खड़े ओवरसियर के कांपते हुए हाथों से मस्टर रोल छूट कर गिर पड़ा था. सुन कर मन-ही-मन प्रार्थना की थी—हे प्रभो, तू मुझे बड़े साब का खलासी ही बना दे! ओवरसियर अपने आपको बड़ा तोप समझता है. मुझसे डरेगा तो !

ऐसा सोचते ही ओवरसियर को अपनी डिग्री का अहसास कराने के लिए मैंने कहा था — क्या मैं एम.बी. में मेजरमेंट रिकॉर्ड करके बिल बना दूं? ओवरसियर ने मेरी बात सुन कर मुझे इस बुरी तरह से घूरा कि बचकाना प्रश्न उसकी जलती हुई आंखों में कहीं कर रह गया. और उसी क्षण उसकी सहानुभूति भक् से फुंक गयी. शेष रह गया एक ओवरसियर, सा ओवरसियर और तब मैंने जाना कि मात्र एक डि ओवरसियर के साथ रहना कितना दुष्कर होता है.

गलती मेरी ही थी. एम. बी. में मेजरमेंट लि करना एक कला है, टेक्नीक है, जो प्रास्पेक्ट्स से बाहर कोई प्रोफेसर नहीं पढ़ाता. . जानता हो तब न पढ़ अमरीका, रूस, जर्मनी से पीएच. डी. ले लेने से होता है! यह आर्ट तो इस देश की धरती पर रह ही सीखा जा सकता है. अन्य देश अभी इस एडज टेक्नीक के विषय में शून्य हैं.

भीतर-ही-भीतर खीज उठा था. मौजूदा व्य और पांच साला डिग्री के सापेक्ष अपने अस्तित्व के मक नहीं खोज पा रहा था. आखिर मैं हूं कहां? सोचते मेरा सोच मेरे भीतर फैले हुए अनंत खालीपन में गूंज भर गया था. रेखा तो बड़ी होती है. मैं अपने अस्तित्व कोई छोटा-सा बिंदु भी स्थिर नहीं कर पाया था. फि डरावनी-डरावनी असंगत ग्रंथियां मेरे मन के आकाश में उभरने लगी थीं!

सुबह-शाम हाजिरी देते-देते मैंने महसूस किया हजार-बारह सौ का एक 'वर्क आर्डर' मेरे नाम भी जाये तो मैं दो रुपये अस्सी पैसे से ज्यादा कमा सकता मजदूरों से इतना परिचय तो हो ही गया है कि हफ्ते बिना पेमेंट किये काम करवा सकूं. बस, 'रनिंग बिल' मिलने भर की देर है. फिर सब ठीक हो जा टी. एन. पी. (गेंती, फावड़े, तसले आदि) सर स्टोर से मिल ही जायेगी. कौन ठेकेदार अपनी टी. पी. रखता है! सभी तो सरकारी से ही काम चलाते धीरे-धीरे इस विषय में मैंने मजदूरों को राजी कर लि मेरी इस बात पर वे बेहद प्रसन्न हुए.

एस. डी. ओ. साहब तो मेरी बात सुन कर और अधिक प्रसन्न हुए. बड़े भाई की तरह मेरी पीठ थपथपाते हुए बोले—तुमने बहुत अच्छा सोचा है. इस प्रकार कब तक पड़े रहोगे! अगर जम गये तो उठोगे. यू विल बी कैंपेबल टु एंप्लॉय अस ईवन! विल हेल्प यू. बी श्योर!

आश्वासन-प्रिय इस महान देश में, आश्वासन कर मैं आश्वस्त हो गया. किंतु दो महीने बीत गये मैं नहीं चमक पाया. एक दिन जब मैंने एस. डी. साहब को उनका वचन याद दिलाया तो वह चौंक अभिनय करते हुए बोले —ओह, एक्सट्रीमली मेरे दिमाग से तो यह बात ही उतर गयी थी! पचास के कामों में उलझा रहता हूं. ठीक है, अब देखूंगा.

याद दिलाते-दिलाते मैं ऊब गया. याद करते वह भी ऊब गए. परंतु परेशान नहीं हुए. संतुलि में समझाते हुए एक दिन याद दिलाने पर बोले शर्मा, यू नो वेल, इस सब-डिवीजन में तो कोई काम है नहीं. तुम ए.ई. साहब से मिल लो. माइनर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डिवीजन में अच्छा काम चल रहा है. वहां अच्छा रहेगा.

मैंने सकुचाते हुए कहा —सर, सात चेन पर अभी एक पुलिया बननी है.

—भई, वह तो मैं रामप्यारे को कह चुका हूं.

—इक्कीस चेन पर एक रैपिड फॉल है . . .

—यह भी रामप्यारे को कह चुका हूं.

—सर, एट्टी चेन के बाद करीब बारह रैपिड फॉल और वर्टिकल फाल बनने हैं. . .

—ओ शर्मा, ये छोटे-छोटे सब काम मैं रामप्यारे को दे चुका हूं. कहते-कहते वह झुंझला उठे थे. झुंझला मैं भी गया था, पर चुप रहा. सुना था कि ठेकेदार कभी नहीं झुंझलाता, बल्कि झुंझलाहट बरदाश्त करता है. टैक्ट से काम लेता है. और हर सरकारी विभाग में टैक्ट का दूसरा नाम है परसेंटेज, यानी रुपया. कमीशन. अतः सहमते हुए बोला—सर, आप तो मेरी आर्थिक परिस्थिति जानते ही हैं! वर्क से पहले तो नहीं दे पाऊंगा, परंतु एश्योर करता हूं कि आपका तथा पूरे स्टाफ का कमीशन मैं पहला रनिंग बिल मिलते ही चुका दूंगा. मेरी बात सुन कर वह क्षण भर के लिए चौंक उठे. फिर लगभग डांटते हुए बोले — यह ठीक है कि मैं रिश्वत लेता हूं. पर तुमने यह कैसे सोच लिया कि मैं तुमसे भी लूंगा? भई, तुम इंजीनियर हो. मैं भी इंजीनियर हूं. पर क्या करूं, जबान दे चुका हूं!

हां, जबान तो वह दे ही चुके थे. परंतु श्री रामप्यारे को नहीं, उसकी जेबों में पड़े नोटों को.उसकी जीप में पड़े हुए पेट्रोल को. उसकी दुकान में टंगी हुई साड़ियों को. मेरे पास ऐसा क्या है जिसे वह जबान दे सकें! मात्र डिग्री है. डिग्री को जो देना चाहिए, वह हमेशा देते रहते हैं.

जिन कामों की अभी ड्राइंग भी एप्रूव नहीं हुई, उन तमाम कामों को वह एलॉट कर चुके हैं. बड़े लोगों की कलम नहीं, जबान चलती है. सारे आर्डर जबानी हो जाते हैं. लिखित आर्डर के पूर्व ही सारा 'ट्रांजेक्शन' हो जाता है.और यह सब होता है फॉर द इंटरेस्ट आफ वर्क. स्पीडी वर्क. क्विक वर्क. इनकी स्पीड देख कर लगता है कि अब देश का उद्धार होने में ज्यादा देर नहीं है. सरकारी काम भी यह कर्मठ इंजीनियर अपना काम समझ कर युद्ध-स्तर पर करते हैं. यह बात अलग है कि कागजी खाना-पूरी के कारण साल-दो साल की देर हो जाये.

जीप में आगे सीट नहीं थी. एस. डी. ओ. साहब के साथ-साथ ओवरसियर और सब-ओवरसियर बैठे थे. मैं अपनी औकात के अनुसार पीछे बैठने लगा तो एस. डी. ओ. साहब ने देख लिया .

—अरे रे. . . पीछे नहीं, शर्मा, आगे आ जाओ! आइ विल ड्राइव. ड्राइवर, तुम पीछे चले जाओ.

आगे बैठते हुए बदन में तनाव आ गया था. गरदन कुछ तन गयी थी. ऐसे में यदि मां देख ले तो कितनी खुश हो, मैंने मन-ही-मन सोचा था. तभी भीतर कसैलापन फैलने लगा था. मेरी दृष्टि ओवरसियर के चमचमाते हुए जूतों की बगल में अपनी टूटी-फूटी चप्पलों पर पड़ गयी थी. स्वयं के इंजीनियर होने का अहसास क्षण भर में ही मर गया था. चेहरे के भाव तो नहीं छुपा पाया

अरुण मिश्र (जन्म : १ जनवरी, १९४८) ने इंजीनियरिंग की डिग्री ली है. डिग्री के पूर्व और बाद के अनवरत संघर्ष ने उन्हें कहानी से जोड़ दिया है. आक्रोश और व्यंग्य इनकी रचनाओं का मूल स्वर है.

था. एस. डी. ओ. साहब ने एक हाथ से मेरी पीठ थपथपाते हुए स्नेह से कहा था— मैं भी ई. ई. साहब से कहूंगा. न हो तो एस. ई. साहब से भी मिल लेना. चिंता मत करो. कुछ-न-कुछ अवश्य हो जायेगा. बी ब्रेव!

मन हुआ कि ब्रेव होते हुए एस.डी. ओ. को उसके दोनों ओवरसियरों के साथ उठा कर बाहर फेंक दूं और तब फिर शान से स्वयं जीप ड्राइव करते हुए घर पहुंचूं. घर के सामने जब जीप रोकूंगा तो मोहल्ले के सारे बच्चे इकट्ठे हो जायेंगे. पड़ोसी ईर्ष्या से जल उठेंगे. सामने की खिड़की पर प्रतीक्षा करती हुई रेखा पर भी रोब पड़ेगा. कितने दिनों से प्रतीक्षा कर रही थी मेरे इंजीनियर होने की! और अब प्रतीक्षा कर रही है मेरी नौकरी मिलने की. पर कब तक चलेगी यह प्रतीक्षा? पर वह तो लड़का नहीं है, लड़की है. उसके लिए उम्र की निश्चित सीमाएं हैं. मेरा क्या है, मैं तो लड़का हूं. कहां हैं मेरे भीतर इच्छाएं? क्षण भर को ठहर कर पीछे देखता हूं तो पाता हूं तपता हुआ एक रेगिस्तान. दूर-दूर तक कोई फूल नहीं. कोई पेड़ नहीं. ओएसिस है तो अवश्य, पर कहां है,यह याद नहीं पड़ता. याददाश्त कितनी क्षीण हो गयी है! वह गीत भी याद नहीं रहा. इतना भी याद नहीं कि जवान जिस्म की कुछ इच्छाएं भी होती हैं. लोग कहते हैं कि जवान लड़के का कोई भरोसा नहीं, पता नहीं कब क्या कर बैठे! कब क्या कर बैठने वाले ऐसे जवान लड़के कहां होते हैं? किस देश में होते हैं? किस ग्रह पर होते हैं? सोचते-सोचते मैं ठंडे अहसास के जानलेवा दायरों में घिर जाता हूं. कुछ भी नहीं सोच पाता. रेखा के बारे में भी नहीं, जिसके तपते हुए सुर्ख होंठ मुझे जला देते थे, जिसके हाथों का हलका-सा भी स्पर्श भीतर तक गुदगुदा देता था, जिसके खयाल मात्र से कल्पनाएं चटखने लगती थीं.अब ऐसा क्यों नहीं हो पाता? क्या अब मैं कुछ नहीं सोच पाऊंगा? रेखा के बारे में भी नहीं? उफ, यह कैसी ठंडक है? हड्डियां कांप क्यों रही हैं? क्या हो गया है मुझे?

जीप में तो बैठा हूं— सर्द लाश की तरह. बगल में बैठे हुए ओवरसियर का स्पर्श कितना गरम है! इस देश में अभी इतनी गरमी क्यों कर शेष है? नहीं-नहीं, वह तो नार्मल है. मैं ही कुछ ज्यादा ठंडा हो चुका हूं.

मेरा एक क्लासफेलो जे. ई. (जूनियर इंजीनियर) मेरी 'हलो' का जवाब दिये बिना ही ई.ई. साहब के चेंबर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में घुस गया. मन में आया कि कॉलर पकड़ कर उसे बाहर खींच लाऊं और फिर पूछूं--- क्यों बे साले, भूल गया कि मेरे नोट्स पढ़-पढ़ कर ही पास हुआ है! यदि उस रात 'स्ट्रक्चर' के दो सवाल न समझाता तो आज यहां न होता. किंतु क्षण भर में सारा आक्रोश समझौतावादी हो गया— क्या पता, इसी के अंडर में काम करना पड़े!

बाहर खड़े-खड़े मैं ऊब चुका था. पूरा एक घंटा हो गया होगा. नहीं, ठीक साढ़े दस बजे यहां आ गया था और अब एक बज रहा है. साहब लोग साहब हैं, चपरासी नहीं, जो ठीक साढ़े दस बजे आफिस आ जायें. ग्रेड अनुसार इनका अपना टाइम है. एस. डी. ओ. ग्यारह बजे आता है. ई. ई. बारह बजे. एस. ई. दो बजे. चीफ इंजीनियर पांच बजे के पहले शायद ही आता होगा.

चपरासी के हाथ में दुबारा चिट थमाता हूं. वह मुझे घूरता हुआ भीतर चला जाता है. पता नहीं, चिट दी भी कि नहीं. उससे पूछता हूं तो पीठ फेर लेता है. मेरे भीतर का इंजीनियर तिलमिला उठता है. साला जानता नहीं कि मैं कौन हूं! दस-बारह साल बाद मैं भी इस कमरे में बैठ सकता हूं. ऐसा सोचते ही आत्मविश्वास-सा जागता है. धीरे से चिक उठा कर कहता हूं— मे आइ कमिन सर? ई. ई. साहब सिर्फ चार डिग्री सर ऊपर उठा कर घूरते हैं. चश्मे के भीतर से झांकती हुई उनकी आंखें छोटी होने के बावजूद बहुत डरावनी लगती हैं. काफी देर घूरने के बाद वह बिना हां-ना किये सर झुका लेते हैं, जिसे मैं अनुमति मानते हुए भीतर चला जाता हूं. मैं हाथ को अकारण मलता हुआ कहता हूं— सर, आइ एम अनएंप्लायड ग्रेजुएट इंजीनियर . आइ. . .

—ओ, आई सी! प्लीज सिट डाउन. व्हाटिज योर नेम?

—अनुज शर्मा.

—ओह, आर यू द सेम फेलो हू इज वर्किंग आन एन. एम. आर?.

—य. . . यस्सर. . .

—ओ, आइ एम वेरी हैपी टु मीट यू! आइ ऐम प्राउड ऑफ यू! इतना कह कर वह काल-बेल का बटन दबा देते हैं. चपरासी को चाय का आर्डर देने के बाद मुझसे पूछते हैं— व्हाट फॉर यू हैव कम?

--सर, इस महंगाई में बड़ी दिक्कत है. दो अस्सी में काम नहीं चलता. मैं चाहता हूं कि आप हजार-बारह सौ का कोई वर्क आर्डर मुझे दे दीजिए. साइट पर रह कर कुछ अनुभव भी हो गया है.

—ओ, एक्सीलेंट! आइ ऐम रिअली प्राउड आफ यू ! एंटरप्राइजिंग. . . यू आर वेरी एंटरप्राइजिंग! आइ उड बी वेरी हैपी टु हैव सच परसन ! इफ वी विल बी हैविंग कांट्रैक्टर्स लाइक यू, द वर्क विल बी आफ सम क्वालिटी एंड स्पेसिफिकेशन. दिस कंट्री इज इन नीड आफ क्वालिफाइड कांट्रैक्टर्स.

इंजीनियरों के विषय में कुछ ऐसे ही सुंदर शब्द स्वर्गीय प्रधान मंत्री के मुंह से भी बहे थे. परंतु अब इन शब्दों से ऊब होने लगी है. मैंने अपनी बात फिर दोहरायी— सर, कोई छोटा-सा वर्क आर्डर दिलवा दीजिए.

—अरे भई, काम तुम्हें नहीं मिलेगा तो किसे मिलेगा? यू आर वेल क्वालिफाइड इंजीनियर. मैं तो चाहता हूं कि इन सभी अंगूठा-छाप ठेकेदारों को निकाल दिया जाये. सब बिलो स्पेसिफिकेशन काम कराते हैं. नो कैरेक्टर! इनके रहते इस कंट्री का कुछ नहीं होने वाला! तुम्हारे जैसे कुछ रिस्क-टेकिंग-स्पिरिट के लड़के और आ जायें तो फिर क्या कहना ! दिस कंट्री कैन डेवलप विदीन नो टाइम! आइ लव योर जौब. . . व्हाटिज योर फादर?

—रिटायर्ड डी. ए.

—व्हाट? उनकी आंखें आश्चर्य से फट पड़ीं. —डी. ए. . . यू मीन डिवीजनल एकाउंटैंट?

—यस्सर.

—ईवन देन यू आर इन सच कंडीशन! वह मेरे कपड़ों का अवलोकन करते हुए बोले.

—सर, ही इज करप्ट.

—व्हाट ड् यू मीन?

—करप्ट टु हिज एव्री इंच फार हिज फैमिली, बट आनेस्ट टु हिज नेशन. उन्होंने अपने बच्चों के साथ, अपनी बीवी के साथ अन्याय किया है. फंड पूरा-का-पूरा लड़कियां ले गयीं. पेंशन बेच कर और ग्रेच्युटी आदि मिला कर कर्ज उतारा. अपनी ईमानदारी की खौफनाक तोप वह मेरे कंधों पर चलाते रहे हैं.

मेरी व्याख्या सुन कर ई. ई. साहब सीरियस हो गये थे. नहीं, उनका चेहरा ही ऐसा है. छोटी-मोटी बातों पर हमेशा ही सीरियस रहते हैं. साहब लोग तो केवल क्लबों में दूसरों की जवान बीवियों और जवान लड़कियों के सामने ही हंसते हैं.

—सर, कोई काम. . .? मैं फिर मुद्दे पर आ जाता हूं.

—ऐ हां. . . देखो, एक-दो हफ्ते बाद मिलना. मैं देखूंगा. डोंट वरी! आइ विल सी सम प्रोफिटेबल वर्क फार यू. बी श्योर!

—सर, मेरी साइट पर ही कई छोटे-छोटे फाल बनने हैं. कुछ कल्वर्ट्स भी हैं. यदि उनमें से. . .

—भई शर्मा, ऐसे काम नहीं होता. सब तरफ देखना पड़ता है. पहले एस. डी. ओ. से पूछना पड़ेगा. हो सकता है कि उसने ये काम किसी को दे दिये हों. और फिर, तुम्हें चिंता करने की क्या जरूरत है? इट्स माइ प्राबलम!

ई. ई. साहब को अपनी चिंताएं सौंप कर, मैं चिंता-मुक्त (?) हो कर बाहर निकला.

अचानक मेरे मस्तिष्क में अतीत का एक दृश्य कौंध गया—मेरे पिताजी के पांव पकड़ कर एफ. एस. डी. ओ. गिड़गिड़ा रहा था— डी. ए. साब, मैं मर जाऊंगा! मेरे बच्चे भूखे मर जायेंगे ! अब तो आप ही मुझे बचा सकते हैं! प्लीज डी. ए. साब. . . !

और पिताजी बोले थे— मेरी कलम से आज तक किसी का बुरा नहीं हुआ. आप निश्चिंत रहें. आपका मेरे होते कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता!

—आपने मुझे उबार लिया डी. ए. साब! मैं. . . मैं आपको पंद्रह हजार तक दे सकता हूं. उसे पिताजी की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—देखिए सिंह साब, आप अच्छी तरह जानते हैं कि मैं रिश्वत नहीं लेता. बस, मेरा एक उसूल है—दूसरों को रोकता भी नहीं. मेरी ओर से आप बेफिकर रहें.

और इन्हीं सिंह साहब से जब पिताजी ने मीतू की शादी के लिए दो हजार बतौर कर्ज मांगे थे तो कितना नपा-तुला जवाब पाया था—आप तो जानते ही हैं कि इन दिनों सब-डिवीजन में काम कितना डल चल रहा है!

एक डिवीजनल एकाउंटेंट को उसी के सब-डिवीजन के विषय में बताया गया था.

और आज जिन ई. ई. साहब से मिल कर मैं आ रहा हूं, यह वही सिंह साहब हैं. शायद पुरानी बातों को सोच कर ही वह कुछ सीरियस हो गये थे.

उस दिन घर लौटा तो कमरे में घुसते ही चौंक पड़ा. ई. ई. साहब सामने बैठे हुए थे. मुझे देखते ही उन्होंने उठ कर गले लगा लिया. मैं अचकचा गया था. मेरी पीठ पर स्नेह उड़ेलते हुए बोले—बड़ा ही होनेहार लड़का है आपका! ही हैज गाट जील फार हार्ड वर्क. फिर मुझे प्यार से डांटते हुए बोले—तुम दुबारा आये क्यों नहीं? मैंने तुम्हारे लिए एक काम रख छोड़ा था!

सुन कर मैं खिल उठा था. खुशी के मारे मेरी सांस फूल आयी थी. पिताजी ने मुझसे चाय बनवाने को कहा तो मैं फिर उदास हो गया. पास-पड़ोस से जब आंखें झुका कर लौटा तो ई. ई. साहब के शब्द मेरे कानों में पड़े—वह केस फिर उखड़ आया है. मेरा डी. ए. अभी नया-नया है. कानूनी दांव-पेंच नहीं समझता. इस डी. ओ. के लेटर का जवाब लिखवा दीजिए. आप तो मेरा पूरा केस जानते ही हैं. हम लोग कुछ नहीं कर सकते. एकाउंट्स के मामले में बिल्कुल निल हैं. चुपचाप सामान ले कर भीतर चला गया. चाय ले कर जब तक कमरे में आया, तब तक पिताजी जवाब लिखवा चुके थे. ई. ई. साब को काली-सी चाय आफ़र करते हुए मुझे कोई झिझक नहीं हुई.

—आप उस फाइल में यह नोट और ऐड कर दीजिए. . . बैक डेट में एंट्री करके. . . .

मन हुआ कि पिताजी से कहूं, यह वही आदमी है जो आपको पंद्रह हजार रिश्वत देते-देते दो हजार उधार भी नहीं दे पाया था.

—फाट्टी फोर परसेंट एबव सी. एस. आर. पर कट-आफ ट्रेंच का यह काम मैंने तुम्हारे लिए रख छोड़ा है. ई. ई. साहब ने मुझे बुला कर बताया.

—फाट्टी फोर परसेंट एबव सी. एस. आर? मुझे यकीन नहीं हुआ था. और ठेकेदार तो पंद्रह परसेंट अबव सी. एस. आर. पर ही अच्छा कमा रहे हैं. मुझे तो काफी फायदा होगा! मन ही मन मेरा सर ई. ई. साहब के चरणों में झुक गया. कल्पनाएं खिलने लगीं—सबसे पहले मां के लिए धोती लाऊंगा. पिताजी का कुरता कितना फट चुका है! मां के लिए ब्लाउज तो अवश्य ही लाना है. न जाने क्यों मां के ब्लाउज के विषय में सोच कर आज बहुत शर्म महसूस कर रहा था.

—ठीक है, तुम कल से काम लगा दो.

टी. एन. पी. का जुगाड़ करते-करते पूरा सप्ताह बीत गया. परंतु एस. डी. ओ. साहब की मेहरबानी से अंत में हो ही गया. ट्रेंच की गहराई देख कर मैं कांप उठा था. चालीस फीट गहरे में खुदाई करनी थी. ई. ई. साहब के प्रति श्रद्धा (?) से एक बार फिर सर झुक गया. काम शुरू करते वक्त तमाम कठनाइयों के बावजूद दिल बल्लियों उछल रहा था. बिना नारियल फोड़े ही पहली गेंती मैंने चला दी. और फिर उत्साह में चलाता ही गया. लेबर मुझे रोक रही थी. दूर खड़ा ओवरसियर मुसकराते हुए बोला था—अब प्रोग्रेस आ जायेगी. ऐसी बातों की यदि मैंने परवाह की होती तो मस्टर रोल में नाम लिखाता? अतः मैं जोश में बिना कोई परवाह किये गेंती चलाता ही गया और अंत में पस्त हो कर वहीं किनारे लेट गया. लेटे-लेटे खयाल आया कि पिछले दो दिनों से कुछ नहीं खाया है. भूख अभी भी नहीं लग रही थी. बस, कमजोरी भर थी. बालों के सिरों तक को गरमाने वाली कमजोरी. सारे रेजा-मजदूर मय बाल-बच्चों के मेरे लेटते ही जी-जान से जुट गये थे. उनमें काफी उत्साह था.

दो हफ्ते बाद जब ओवरसियर ने मेजरमेंट ले कर बिल बनाया तो मेरी आंखें फट गयीं. सांस अपनी जगह और आंखें अपनी जगह स्थिर हो गयीं. मैं कुछ भी नहीं पढ़ पा रहा था. कहीं पत्थर आंखें भी कुछ पढ़ सकती हैं!

मजदूरों की दो हफ्ते की मजदूरी होती थी सात सौ चौहत्तर रुपये, और मेरे सामने चेक पड़ा हुआ था तीन सौ अठ्ठाइस रुपये साठ पैसे का! मेरी आंखों में अंधेरा भरता जा रहा था. . . घुप्प अंधेरा. और उस अंधेरे में भी मैं साफ-साफ देख रहा था—मजदूर हाथों में गेंती-फावड़े थामे हुए मुझे मारने हेतु चिल्लाते हुए चले आ रहे हैं. और कर भी क्या सकते हैं? मैं बुरा हूं. मुझे मारना ही चाहिए. आखिर इन मजदूरों का शोषण कब तक होता रहेगा? अब ये जाग रहे हैं. पेट की आग सब कुछ समझा देती है. और, ये तो सचमुच ही मार डालेंगे! घेर तो लिया है. मुझे भागना होगा. . . . भागना होगा. . .

और मैं भागते हुए ई. ई. साहब के चेंबर में घुस जाता हूं. अंदर पहुंचते ही उनकी टेबल पर चेक फेंकते हुए कहता हूं—थैंक यू वेरी मच, सर! यू हैव गीवेन मी एक्सट्रीमली प्राफिटेबल वर्क! पर इतना रुपया मैं रखूंगा कहां? कीप दीस चेक इन योर सेफ; आइ विल बी थैंकफुल टु यू! मैं. . . मुझे आप पर विश्वास है. . . आप संभाल कर रखेंगे!

और बिना कोई उत्तर सुने मैं बाहर निकल आता हूं. बाहर आते ही मेरा सारा तनाव खत्म हो जाता है. बुद्ध की तरह शांत हो कर सामने तटस्थ भाव से देखने लगता हूं. सामने फैला हुआ स्वच्छ आकाश. सामने दीख रहे हैं अनगिनत रास्ते. अब मैं किसी भी रास्ते पर चल सकता हूं. . . किसी भी मनपसंद रास्ते पर. . . सुविधानुसार. . .इच्छानुसार. एक रास्ता रेल्वे स्टेशन की ओर जाता है. एक रास्ता तालाब की ओर जाता है. एक रास्ता पुल की ओर. एक रास्ता नदी की ओर. एक रास्ता पहाड़ी की ओर. एक रास्ता अंधे कुएं की ओर. □□□

माथुर भवन, अमहिया,
रीवा (म. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन —एक रिपोर्ट

अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन २७, २८ फरवरी और १ मार्च, १९७५ को बंबई में संपन्न हुआ. इस ऐतिहासिक सम्मेलन में भारत के विभिन्न हिस्सों से आये ५५ प्रतिनिधि साहित्यकारों ने भाग लिया. सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि विभिन्न मतवादों के सभी लेखक एक-दूसरे के प्रति सौहार्द की भावना बनाये रहे. तीन दिनों के जीवंत विचार-विनिमय में चेतना के नये धरातल खुलते चले गये. अंत में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुए. सम्मेलन का उद्घाटन महामहोपाध्याय, साहित्य-वाचस्पति डॉ. दत्तो वामन पोद्दार ने किया और हिंदी-तेलुगु के चिंतनशील लेखक श्री पी. वी. नरसिंहराव (भूतपूर्व मुख्यमंत्री, आंध्रप्रदेश, तथा संप्रति कांग्रेस दल के महामंत्री) ने अध्यक्षता की. डॉ. धर्मवीर भारती ने उद्घाटन-गोष्ठी का संचालन किया.

अपने उद्घाटन भाषण में डॉ. दत्तो पोद्दार ने कहा कि साहित्य साहित्यकार के आंतरिक स्पंदन से प्रस्फुटित होता है. सच्चे साहित्य को निजी राग-द्वेष से ऊपर उठ कर लोक-कल्याण के महान लक्ष्य को ध्यान में रख कर अपनी भूमिका निभानी चाहिए. श्री महावीर अधिकारी (संपादक, **'नवभारत टाइम्स'** बंबई) ने आशा व्यक्त की कि यह सम्मेलन लेखकीय चिंतन का मंच बनेगा. आज लेखक परिवेश का इतना दबाव महसूस कर रहा है कि कलम की बजाय हथियार उठाने को तबियत होती है. प्रख्यात कथाकार और **'सारिका'** के संपादक कमलेश्वर ने कहा कि कुछ प्रश्न बार-बार उठाये जाते हैं, जैसे प्रतिबद्धता, साहित्यकार की भूमिका वगैरा. ये प्रश्न अब बहुत हद तक साफ और तय हो चुके हैं. साहित्यकार की परिभाषा बदल चुकी है. वह अपने समय में जी रहा है, साहित्य के इतिहास के लिए नहीं. निश्चय किया जाना चाहिए कि समय क्या है. हम अलग-अलग प्रज्वलित व्यक्तित्व नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं. अब जरूरत इस बात की है कि लेखक एकजुट हो कर वर्तमान काल की चुनौतियों का सामना लेखकीय धरातल पर करें.

डा. विशवंभरनाथ उपाध्याय ने कहा कि प्रतिबद्धता-पक्षधरता जैसी अवधारणाओं पर अभी भी विचार आवश्यक है. इनके निहितार्थ अभी भी स्पष्ट नहीं हैं. दरअसल इन शब्दों को चरितार्थ करने वाली जन-शक्तियों को पहचानने और उन्हें साहित्य में चित्रित करने की जरूरत है.

गोष्ठी के संचालक डॉ. धर्मवीर भारती ने कहा कि जरूरत आत्म-निरीक्षण की है. साहित्य में व्याप्त छल का अन्वेषण जरूर होना चाहिए, लेकिन दूसरे के छल की जांच करने से पहले हमें स्वयं को परखना चाहिए, कि हममें स्वयं वह छल तो कहीं पैठा हुआ नहीं है!

इस गोष्ठी में हिंदी **'ब्लिट्ज'** के संपादक श्री नंदकिशोर नौटियाल, स्वागत समिति के उपाध्यक्ष श्री गणेशनारायण पोद्दार, महाराष्ट्र विधानसभा के अध्यक्ष श्री शेषराव वानखेड़े तथा सम्मेलन के महासचिव श्री महेंद्र कार्तिकेय ने भी अपने विचार प्रकट किये.

★ ★

दोपहर में, पहली गोष्ठी का विषय था 'आलोचना की राजनीति'. गोष्ठी की अध्यक्षता वरिष्ठ कवि श्री वीरेंद्रकुमार जैन ने की और संचालन किया डॉ. रणजीत ने.

डा. विशवंभरनाथ उपाध्याय ने आलोचना के ऐतिहासिक महत्व और मूल्य को रेखांकित करते हुए सांप्रतिक आलोचना में अंतर्मुखता के कारण उत्पन्न असंगतियों की ओर ध्यान खींचा और पत्र-पत्रिकाओं, दलों-उपदलों और उपगुटों में विभाजित परस्पर-द्रोही आलोचना से जिस वस्तुगत मूल्यांकन का संकट खड़ा हो गया है, उसके समाधान के लिए लेखकों को प्रेरित किया. उन्होंने कहा कि आलोचना के नाम पर साहित्यिक पत्रकारिता का बोलबाला है. डॉ. रणजीत ने अपने निबंध में मानो इसी स्थिति को उदाहरण सहित पेश किया. डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र ने आलोचकों की कमियों को सूचीबद्ध किया. डॉ. मोहन अवस्थी के अनुसार आलोचना की राजनीति 'अधिक व्यक्तियों की पसंद' बन गयी है. श्री ओमप्रकाश निर्मल का मत था कि आज की आलोचना देश और सत्ता की राजनीति के समांतर चल रही है. इन महानुभावों के अतिरिक्त सर्वश्री बलदेव वंशी, डॉ. रामवचन राय, डॉ. राजेंद्र मिश्र, डॉ. वासुदेव साह, डॉ. विनय, उदभ्रांत, राकेश वत्स, डॉ. धनंजय वर्मा ने भी इस गोष्ठी में भाग लिया. श्री वीरेंद्रकुमार जैन ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आलोचना के क्षेत्र में फैली गुटबंदी की निंदा की और वस्तुगत आलोचना की आवश्यकता पर बल दिया.

दूसरी गोष्ठी का विषय था—'साहित्यकार की चेतना', जिसकी अध्यक्षता डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित ने की. संचालन डॉ. धनंजय वर्मा ने किया. डॉ. विजेंद्रनारायण सिंह ने कहा कि चेतना और सृजन सामाजिक उपपत्तियां हैं, इन्हें व्यक्तिगत नहीं सिद्ध किया जा सकता. श्रीकांत जोशी ने कहा कि लेखकों को भी जन-आंदोलन में भाग लेना चाहिए.'

तीसरी गोष्ठी का विषय था—'कथा साहित्य की दिशाएं', जिसकी अध्यक्षता प्रख्यात उपन्यासकार श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने की और संचालन कमलेश्वर ने किया.

दिनेश पालीवाल ने 'नये' कहानीकार के भटकाव को रेखांकित किया और कहा कि प्रेमचंद की कहानियों की मूल चेतना समकालीन कहानियों में फिर बोलने लगी है. डॉ. धनंजय वर्मा ने अपनी तीखी शैली और नाटकीय स्वर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरोह-अवरोह के साथ समकालीन कहानियों के सपाटपन, विद्रोह और क्रांति की घोषणाओं से भरी मगर कलाहीन कहानियों को कहानियां मानने से इनकार किया. उन्होंने कहा कि ये इकहरी कहानियां हैं, जिनमें न अंतर्द्वंद्व हैं, न स्वाभाविक द्वंद्व. इनमें लेखक के गहरे एहसास और पर्यवेक्षण नहीं मिलते. डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री ने कहा कि कहानी की विशिष्टता को पहचानने, उसे विश्लेषित करने और उसके मूल्यांकन के लिए प्रतिमानों का आविष्कार आवश्यक होता है.

डॉ. विनय ने समांतर कहानी का संदर्भ सामने रखते हुए कहा कि आज कहानी सार्थक, समय-सापेक्ष, और प्रामाणिक रूप में अपनी प्रतीति दे रही है. आज की कहानी साहित्य की सौंदर्य-शास्त्रीय व्याख्याओं, झूठे तेवरों और गलित विचारधाराओं के सैलाब को नकारती-काटती हुई सीधे जीवन से जुड़ रही है.

कमलेश्वर ने कहा कि इन सभी निबंधों में आज के समाज और जन की परख और सही पहचान की मांग की गयी है. रचनाकारों को इन सवालों पर खुले मन और मस्तिष्क से विचार करना है. लेखकों को पहले अपने आपको भी टटोल कर देखना है कि वे खुद कहां हैं और वे परिवर्तनकामी शक्तियों के साथ हैं या नहीं.

श्री रेणु ने कहा कि आज लेखक नारों की भाषा से ही अपना दिल बहला रहे हैं. शब्दों को उछालने से कुछ नहीं होता. मुझे लगता है कि आज की भयंकर स्थिति में लेखक को लिखना बंद करके जन-आंदोलनों में भाग लेना चाहिए.

चौथी गोष्ठी '१९७४ की कविता' पर हुई. अध्यक्ष थे श्री हरिनारायण व्यास और संचालक डॉ. विजेंद्रनारायण सिंह. डा. सुधा महेश, डॉ. श्यामसुंदर घोष, बलदेव वंशी तथा डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र ने निबंध पढ़े. अधिकांश निबंधों में 'विद्रोही कविता' को पूर्ववर्ती कविता से अलग करने की कोशिश थी.

पांचवीं गोष्ठी का विषय था——'वर्तमान संदर्भ में साहित्यकार की भूमिका'. अध्यक्ष थे डॉ. कमलाप्रसाद पांडेय और संचालक श्री राजीव सक्सेना. डॉ. विजेंद्र नारायण सिंह, डॉ. राजेंद्र मिश्र, श्री इंद्रपाल सिंह इंद्र, लाल मुहम्मद रिजवी, डॉ. कौशल मिश्र, तथा डॉ. लक्ष्मीनारायण दूबे ने साहित्यकार की भूमिका की खोज की और सबने एक स्वर से साहित्यकार को आज की वास्तविकता को प्रतिबिंबित करने और आम आदमी के हित में पूंजीवाद और प्रशासन द्वारा पैदा की गयी यथास्थिति से लड़ने की सलाह दी.

छठी गोष्ठी 'राष्ट्रभाषा हिंदी पर हुई. अध्यक्ष थे. डॉ. हरदेव बाहरी तथा संचालक श्री ओमप्रकाश निर्मल. गोष्ठी में करीब-करीब सभी वक्ताओं से हिंदी की वर्तमान स्थिति पर असंतोष व्यक्त किया और यह मांग रखी कि शीघ्रातिशीघ्र हिंदी को उसका प्राप्य स्थान प्रदान किया जाये.

सातवीं गोष्ठी का विषय था—'साहित्यिक पत्रकारिता बनाम लघुपत्रिका आंदोलन'. इस गोष्ठी की अध्यक्षता श्री नंदकिशोर नौटियाल ने की और संचालन श्री राजेंद्र अवस्थी ने किया. सर्वश्री डॉ. धर्मवीर भारती, केशव पांडेय, धर्मेंद्र गुप्त, जयनारायण, रामावतार चेतन तथा मंजुल उपाध्याय ने निबंध-वाचन किया. बहस के दौरान साहित्यिक और लघु-पत्रिकाओं के बीच की बहुत-सी गलतफहमियां साफ हो गयीं.

अंतिम गोष्ठी 'प्रतिबद्धता और आम आदमी' को ले कर हुई. श्री भैरवप्रसाद गुप्त ने इसकी अध्यक्षता की और संचालन श्री महेंद्र कार्तिकेय ने किया.

समापन समारोह में कुछ प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए, जिनमें व्यवस्था विरोधी क्रांतिकारियों पर, जो कि अरसे से जेलों में बंद हैं—अविलंब मुकदमा चलाने या उन्हें मुक्त करने की मांग की गयी; मांग की गयी कि सभी सरकारी, गैर-सरकारी और व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं पर व्यवसायवादी और पूंजीवादी नियंत्रण का सामाजीकरण किया जाये; सरकार पुस्तक प्रकाशन की पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त करे; सरकार लघुपत्रिकाओं को कागज उपलब्ध कराये; समाजवादी देशों की तरह देश के लेखकों को सुविधाएं दी जायें, आदि.

☐ एस. कुमार

एक गोष्ठी के दौरान मंच पर—सर्वश्री नंदकिशोर नौटियाल, कमलेश्वर, महेंद्र कार्तिकेय और रेणु

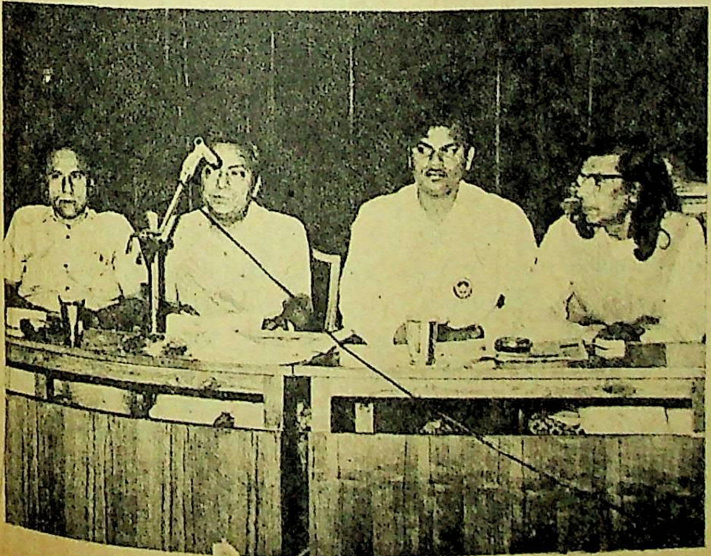

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

फफोले • सच्चिदानंद धूमकेतु

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारी रात उसे नींद नहीं आयी. आसमान खुलने के पहले ही घरसी निरगुनिया के मजीरे की टुकटुकी कानों में टिकाते देख कर 'हरे रामजी, रामजी हरे-हरे!' का उच्चारण करता हुआ वह उठ बैठा.

ओस में नहाई-फहराती हवा पसलियों और टखनों को छेद रही थी. नीचे ढलान के काछ पर कमला-बलान की बेगवती धारा कस्बे के दुख-संताप को ठौर-ठौर देखती हुई अहर्निश भाग रही थी. सामने सड़क पर लोगों का आना-जाना शुरू हो गया था, लेकिन सुबह के धुंधलके में रेलवे स्टेशन अभी तक ढंका था. पैसेंजर गाड़ी की प्रतीक्षा करने वाले मुसाफिर प्लेटफार्म पर ठंड से सिकुड़े पड़े थे.

उसने सुरजा को जगाया. सुरजा कुछ देर तक कुन-मुनाता रहा और नींद की घुमरी में डूबता-उतराता बेमन उठ कर खाट पर बैठ गया. भोला हथौड़ी से कोयला तोड़ता हुआ सूरजा को देख रहा था, जो अभी तक आलस से ऊंघता और मुंह के कोने से बासी लार टपका रहा था. उसकी कच्ची नींद देख कर एक क्षण के लिए भोला को उस पर दया आ गयी. उसने अंगीठी जलायी और टूटे पंखे से फटर-फटर की आवाज बिखेरता हुआ आग सुल-गाने लगा.

जब सुरजा के नथुने धुंए से भरने लगे, तब वह खों. . खों. . .खांसता हुआ दुकान से बाहर निकला और ठंड को भूल कर अल्मुनियम के छोटे-बड़े बर्तनों को मांजने में जुट गया. तब तक भोला दुकान की सफाई कर चुका था. रात भर घूरे पर सिकुड़े कुत्ते जम्हाई लेकर उठ खड़े हुए थे. भोला ने जल्दी-जल्दी माथे पर तेल चुपड़ा और नल के नीचे बैठ कर नहाते हुए हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा.

भोला ने लक्ष्मीजी को अगरबत्ती दिखायी. गद्दी पर रखे काठ के छोटे-से बक्से पर पानी छिड़का और 'चाह. . .गरम. . .गरम. . .चाह' का राग अलापने लगा. पिछले पंद्रह वर्षों से इन शब्दों को वह इस तरह अपने जीवन के साथ घुला-मिला लिया था कि आने वाले मुसा-फिरों पर नजर पड़ते ही घड़ी की सुइयों की तरह उसका मुंह टिकटिका पड़ता था.

अभी तक ट्रेन के आने की घंटी नहीं बजी थी. वह धीरे से बुदबुदाया---मालूम होता है कि पसिंजर ठीक टैम पर नहीं है. लेट आ रही है.

सुरजा अंगीठी से सट कर खड़ा था और सर्दी से बचने के लिए आग पर हथेलियां सेंक रहा था.

मालगोदाम का मेठकुली विपत सामने बेंच पर बैठता हुआ बोला---कंपनी, एक सिंगल चाय और हाफ रोटी देना.

सुबह-सुबह विपत को देखकर भोला जलभुन गया. कल भी वह ठीक बोहनी के समय चाय पी कर चला गया था. हुज्जत करने के बाद उसने दोपहर तक पैसे दे देने का वायदा किया था लेकिन वह पैसे चुकाने वापस नहीं लौटा. सुबह की खटपट का नतीजा यह हुआ कि दिन भर की बिक्री मारी गयी. पैंतीस-चालीस रुपये की बिक्री वह मजे से कर लेता था लेकिन कल मुश्किल से बाईस रुपये ही पड़े.

उसे देख कर भोला घुड़कता हुआ बोला---फिर आ गये सुबह-सुबह उधार लेने. कल के पैसे तो मैं लेने से रहा, आज फिर किस मुंह से चले आये!

विपत भी कम नहीं था. छूटते ही बोला---तुमसे उधार लिया है कोई मुफ्त नहीं. तू पैसे छोड़ देगा क्या? फिर वही थुक्का-फजीहत. आज का दिन भोला खराब नहीं करना चाहता था.

टालने के लहजे में बोला---विपत भाई! चोर भी शकुन करता है. फिर मैं तो दुकानदार ठहरा. मैं उधार नहीं दूंगा. मुझ पर दया करो और दूसरी दुकान में चले जाओ.

उसकी बातें सुन कर विपत तिलमिला उठा. अकड़ कर बोला---पैसे कमा कर ज्यादा गर्मी आ गयी है क्या?

भोला उससे मुंह लगाना नहीं चाहता था. वह जानता था कि विपत के ऊपर हमेशा पचास का नशा छाया रहता है. छंटा हुआ गुंडा है. माल-बाबू और स्टेशन मास्टर के पाकिट का आदमी. यार्ड में जितने डब्बे टूटते हैं, उसमें विपत का ही हाथ रहता है. पिछले महीने जब स्पेशल स्क्वाएड ने रेलवे कर्मचारियों के घरों पर छपा मारा था तो प्रायः सभी के क्वार्टर से रेलवे की चोरी के सामान बरामद हुआ था. अकेला विपत साफ निकल गया. हिस्से का माल तुरंत ही वह तोड़-जोड़ कर कस्बे के बनिये-महाजन के हाथ बेच देता है. जो चीजें नहीं बिक पाती हैं, उन्हें वह फुलिया नटिन के यहां पहुंचा देता है, जहां उसकी रातें गुजरती हैं.

विपत का गुस्सा शांत होने के बजाय बढ़ता ही गया. वह भोला को भद्दी-भद्दी बातें कहता रहा. विपत की बातों का असर शायद भोला पर नहीं हो सका. वह चुप बैठा सुनता रहा.

* *

जिंदगी को मुर्दे के तौक की तरह झुलाते हुए चलना भोला को पसंद नहीं है. उसने जीवन को झेला है. इस छोटे-से कस्बे के उतार-चढ़ाव में बराबर का हिस्सा बंटाया है. दादा की तरह भोला का बाप भी राज मिस्त्री ही था. मरते समय वह अपने बेटे के लिए रेहन में पड़ा टूटा हुआ मकान, करनी और वसूली छोड़ गया था. साथ-साथ महाजनों के कर्ज का काफी बड़ा बोझ. उसी दबाव में उसका बाप जीवन भर कराहता और पिसता रहा था.

एक-एक कर घर के सारे लोग काल के गह्वर में खो गये थे. बच रहा था, भोला, जिसे अपने बाप-दादे की तरह न तो कोई फन हासिल था और न वह पढ़ा-लिखा ही था. लेकिन उसे अपने खानदानी धंधे से काफी चिढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी. पैतृक संपति में मिले औजारों को बेच कर वह बहुत खुश था. सिर्फ छः रुपये मिले थे उसे.

जालीदार बटुए में सारे पैसों को हिफाजत से ठूंस कर घंटों तक वह कस्बे की गलियों में घूमता रहा था. सब की आंखें बचा कर उसने बीसियों बार उनकी गिनती की थी. इस रकम से वह कुछ करने-धरने की बातें अनायास ही सोचने लगा था. दो दिनों तक इसी उधेड़बुन में रहने के बाद तीसरे दिन उसने ट्रेन में मूंगफली बेचने का धंधा शुरू किया. गर्दन में मूंगफली का खोमचा जो सुबह लटकाता तो रात के दस बजे ही उतारता था.

धीरे-धीरे उसने नुक्कड़ पर चाय की दुकान खड़ी कर ली. स्टेशन के कुली उसकी तरक्की को देख कर उसे कंपनी नाम से संबोधित करने लगे. यूं चाय की कई दुकानें थीं, लेकिन भोला कंपनी की दुकान की चाय का जायका कुछ और ही था. स्टेशन के कुली और बाबू लोग, बड़ी-छोटी जेबोंवाले मुसाफिर प्रायः सभी उसकी चाय पसंद करते थे. देनदार लोगों को वह उधार देने से भी नहीं कतराता.

कुछ ही वर्षों में भोला की आर्थिक स्थिति काफी सुधर गयी. किराये की उस दुकान को उसने खरीद ही लिया था और एक दिन उसने दुकान में पवित्र हिंदू-भोजनालय की तख्ती भी लटका दी. चाय और भोजनालय दोनों साथ-साथ चलने लगे. उसे सांस लेने तक की फुर्सत नहीं मिलने लगी. रात के ग्यारह बजे जब पैसेंजर ट्रेन स्टेशन से गुजर जाती, तब कहीं चूल्हे की आग ठंडी हो पाती थी. . .लेकिन इस अप्रत्याशित तरक्की से कस्बे के बहुत सारे लोगो की आंखों का वह कांटा बन गया. लोगबाग पीठ पीछे उसकी आलोचना करने लगे थे. तरह-तरह की अफवाहें उड़ने लगीं. कोई कहता कि दुकान की आड़ में वह गांजा-भांग का रोजगार करता है तो कोई कहता कि रेलवे का माल उड़ाता है.

भोला को लोगों की बातों से कोई मतलब नहीं था. दिन-रात वह अपने काम में लगा रहता. शादी के बाद उसने अपनी रज्जो को गांव में ही रखने का निश्चय कर लिया था. महाजन के चंगुल से उसने अपनी मौरूसीडीह छुड़ायी और साथ-साथ रेहन पड़ी जमीन भी.

भोला की अपनी जमीन तो हो गयी थी लेकिन उससे वह कभी भी भरपूर अनाज नहीं ले पाता. रज्जो, दोनों बेटे सुरजा और बिरजा के साथ खेत में कड़ी मेहनत करती थी किंतु फसल मिमियायी हुई ही खेतों में दिखाई पड़ती. क्यारियां हमेशा पिलपिली बनी रहतीं.

परसाल रज्जो की पीठ में कुछ बरसाती फफोले निकल गये थे. उसकी पीड़ा से वह हफ्तों तक कराहती रही थी. भोला उन पर नश्तर लगवाना चाहता था लेकिन रज्जो ने हाथ नहीं रखने दिया और सारे फफोले ठसियाकर पीठ के अंदर ही फसक गये. रज्जो फफोले को देख तो नहीं पाती लेकिन कभी-कभी उसे भयानक टीस होती.

उसके खेतों में भी चार-पांच वृक्ष उग आये थे, उनकी शाखें लगातार हाथ फैलाकर आदमखोर की तरह भोला के परिवार को चबा जाने की कोशिश कर रही थीं. टहनियां झकास मारती हुई खेतों में आजानबाहु की तरह फैलती जा रही थीं. उनकी छांव में फसल पनप नहीं पाती. खेतों की दुर्दशा देख कर कई बार भोला ने सारे वृक्षों को काट देने की बात सोची लेकिन रज्जो ने अंधविश्वास के कारण उसे काटने नहीं दिया. उल्टा प्रत्येक शनीचर को उन पर दूध-जल चढ़ाती. तने पर सिंदूर की पांच लकीरें खींचती और धूप जलाती थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाम होते ही कस्बे की रौनक बढ़ने लगती. भोला की दुकान के आगे रखे बेंच भर जाते. दिन भर के गंधाये पसीने को पोछते हुए स्टेशन के बाबू लोग, कहवाघर में शाम गुजारनेवाले लेखक और पत्रकार, सारा दिन घर में एकरस और अनगढ़ जीवन गुजारने वाले लोग शाम पांच बजे ही आ कर बेंच-कुर्सियां पकड़ लेते और बहुत रात तक गप्पें हांकते. संसद से ले कर विधान सभाओं की बखिया उधेड़ी जाती. साहित्यिक और सांस्कृतिक चर्चाएं होतीं.गरमा-गरमी होती. लेकिन इन बातों से भोला का जी नहीं घबड़ाता बल्कि वह मुस्कराकर बीच-बीच में किसी-किसी मुद्दे पर सिर हिला कर अपनी सहमति प्रकट करता रहता था.

ज्यों-ज्यों स्टेशन का विकास होता गया, त्यों-त्यों भोला की आमदनी कम होती गयी. अब वह स्टेशन जंकशन के रूप में बदल गया था. पहले चौबीस घंटे में अप-डाउन दो ही पैसेंजर गाड़ियां रुकती थीं. अब मेल और एक्सप्रेस भी रुकने लगी थीं. चौक की रौनक बढ़ गयी थी. सड़कों पर लोगों का आना-जाना हमेशा जारी रहता लेकिन भोला की दुकान की बेंच अधिकतर खाली रहा करती. सारे बाबू लोग, साहित्यिक और कस्बे के शौकीन युवकों ने अपने बैठने का अड्डा दूसरी दुकान पर बना लिया था.

लाला घनश्यामदास का नया रेस्तरां खुल गया था जिसकी फर्श पर रंग-बिरंगे टाइल्स जड़े थे. कुर्सियों पर मुलायम गद्दे थे और काउंटर पर बैंपायर की तरह मुंह से झाग उलगती एस्प्रेसो मशीन. इतनी सुविधाओं के बाद किसे गरज पड़ी थी कि वह भोला की टीन वाली छत के नीचे धुंए को संघता हुआ चाय सुड़कता और छप्पर पर चितकबरी बिल्लियों के लड़ने का शोर सुनता!

लालाजी का रेस्तरां खोलने की ओर ध्यान नहीं था. वे तो कस्बे के मशहूर व्यापारी थे और मेन रोड पर उनकी किराना की बड़ी-सी दुकान थी. भोला की आमदनी देख कर ही वे इस धंधे में प्रेरित हुए थे.

रेस्तरां खुलते ही भोला का धंधा सचमुच ही मंदा पड़ गया. डेढ़-पौने दो सौ की बिक्री घट कर चालीस-पचास पर आ गयी. दुकान के नौकर भाग कर रेस्तरां में बेयरा बन गये. वे ही लोग भोला के यहां चाय पीते और खाना खाते जिन्हें उस पुरानी दुकान से या तो हमदर्दी थी या जो रेस्तरां में अधिक पैसे देने के काबिल नहीं थे. नौकर की जगह सुरजा गांव से आ गया था.

कस्बे के भविष्य के बारे में लालाजी बहुत ही आशावान थे. उन्हें पता था कि जल्दी ही वहां सरकार की ओर से कोई इंडस्ट्री खुलनेवाली है. भोला की दुकान जो बिल्कुल दो मुहानों के नुक्कड़ पर थी, लालाजी की आंखों के आगे रात-दिन घूमती रहती. जब भी उनकी निगाहें उस ओर उठतीं, वे निर्निमेष दृष्टि से एकटक उस दुकान को देखते रहते और भविष्य के गर्भ से झांकते किसी आलीशान भवन की कल्पना किया करते थे.

★ ★

पिछले दो महीने से लालाजी से उसकी काफी बनने लगी थी. रेस्तरां का मुकाबला करने में वह अपने को सक्षम नहीं पा रहा था और न उससे प्रतियोगिता ही करना चाहता था. लालाजी ने भी काफी शह दे रखी थी. वे जब भी उस तरफ हो कर गुजरते, भोला का समाचार अवश्य ही पूछते. धीरे-धीरे उसके होटल का सौदा लालाजी की ही दुकान से उधार आने लगा. जब कभी उसकी तबीयत होती, पैसे चुकाता था. लालाजी की तरफ से कभी भी तकादा नहीं आता.

दुकान को फिर से जमाने के लिए वह काफी प्रयास कर रहा था. डस्ट की जगह लीफ की चाय बनाकर ग्राहकों को देने लगा. इसके बावजूद दुकान की भीड़-भाड़ बढ़ नहीं सकी. सभी रेस्तरां की ओर ही भागते रहे. पुराने ग्राहकों को वह नहीं बटोर सका.

★ ★

काफी भीड़ थी. सड़क पर यातायात रुक गया था. सभी एक दूसरे को देख रहे थे और आपस में कानाफूसी कर रहे थे. कुछेक को भोला के अपराध की प्रमाणिकता पर संदेह था लेकिन अधिकांश लोग उसके विरुद्ध ही दिखायी पड़ रहे थे.

पुलिस दुकान की तलाशी ले रही थी. तमाशबीन भोला को कोसते हुए अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त कर रहे थे.

——आदमी के घर से लछमीजी जब जाने लगती हैं तो उनके साथ ईमान भी खत्म हो जाता है. . .

——सरसों तेल में मोबिल मिला कर खाने की चीजें तैयार करते नही सुना था. राम. . राम. . .राम. . .इस पापी को तो आजीवन कारावास होना चाहिए!

——तभी तो शहर में अनसुनी बीमारियां फैल रही हैं. ऐसी ही चीजें खा कर आज सौ से भी अधिक व्यक्ति पक्षाघात जैसी भयंकर बीमारी के चंगुल में तड़प रहे हैं.

——आज अगर अधिकारी वर्ग इस स्साले को नहीं पकड़ता तो न जाने कितने को यह मौत के मुंह में झोंक देता.

तेल के उस डिब्बे को भोला निर्निमेष आंखों से देख रहा था जिसे पुलिस ने उसकी दुकान से बरामद किया था. जले हुए मोबिल की मोटी परतों के ऊपर सरसों का तेल तैर रहा था.

भोला को दर्शकों की ओर आंखें उठाने की हिम्मत नहीं हो रही थी. एक ऐसे बिंदु पर वह खड़ा था, जहां दलील की कोई गुंजाइश नहीं थी. उसने घबड़ा कर पनीली आंखों से पुलिस अफसर की ओर देखा, फिर सुरजा के चेहरे पर आंखें गड़ा कर देखने लगा.

अचानक वह गरज पड़ा——सच-सच बता, क्या तुमने तेल में जला हुआ मोबिल मिलाया है? स्साले. . . हरामी मैं तुम्हें जान से मार डालूंगा!

भोला की बातें सुनते ही सुरजा कांप उठा और रोता हुआ बोला——मैंने नहीं किया है. जिस ठौर से तेल खरीदते हो, वहां ही. . .

दर्शकों के बीच से किसी ने व्यंग कसा——जैसा बाप नाटक करता है, वैसा ही बेटा. वाह भाई, खूब रही!

तमाशबीनों की बातें सुन कर भोला ने भी सुरजा को डपट दिया. पुलिस सुरजा की बातें सुन कर एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्चिदानंद धूमकेतु (जन्मः दिसंबर, १९३९) ने कहानियां, उपन्यास, निबंध, एकांकी—सब विधाओं में लिखा है. संप्रति बिहार सरकार के अधीन कार्यरत.

के लिए चौकन्ना जरूर हुई पर कानून के पंजों से वह बच नहीं सका, वह भारत सुरक्षा कानून के अंतर्गत गिरफ्तार कर लिया गया.

लालाजी भोला के गिरफ्तार होने की बातें सुन कर काफी उदास दिख पड़े यहां तक कि रोते हुए सूरजा के माथे पर उन्होंने अपना हाथ भी रख दिया था. रज्जो को धैर्य बंधाते समय भी वे रोने लगे थे.

रज्जो अपने पति के मुंह से लालाजी की उदारता के बारे में सुन चुकी थी. वह उनके प्रति बेमन नहीं हो सकी. गांव के लोग उसकी बढ़ौतरी से जलते थे. शहर में उसका आंसू पोंछने वाला भी कौन था. . .लेकिन सुरजा! उसे लालाजी की हमदर्दी पसंद नहीं थी.

मां ने समझाते हुए कहा था—भगवानी इन्साफ पर भरोसा रखो, बेटा! दुध-फूल का वही न्याय करेगा. मैं जनाना-जात केस-कचहरी के बारे में क्या जानूं?

मां की जिद के सामने यद्यपि सुरजा चुप लगा गया लेकिन खामोश अकुलाहट उसके कलेजे को रौंदती रही. विवशता के कारण आखिर उसे समझौता करना पड़ा.

जार-बेजार रोते हुए लालाजी ने मुकदमे की पैरवी का बीड़ा उठा लिया. प्रत्येक एकांत क्षण में रज्जो का दिल धड़क उठता था, फिर भी वह आश्वस्त थी.

मुकदमे में लालाजी ने काफी दौड़धूप की. रज्जो ने भी अपने पति को छुड़ाने में कोई कसर नहीं उठा रखी. उसके सारे गहने बिक गये. दुकान बिक गयी लेकिन वह अपने पति के निर्दोष होने की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं कर सकी.

★ ★

फैसला सुनते ही रज्जो चीख-चीख कर रोने लगी थी. सुरजा और बिरजा पिता से लिपट कर बहुत देर तक हिचकियां लेते रहे थे. कानून ने भोला को पांच वर्षों की सजा दी थी.

भोला न तो रोया और न बच्चों के साथ अधिक देर तक लिपटा ही रहा. वह अपने प्रश्न का उत्तर न्यायालय कक्ष में खड़े तमाशबीनों की आंखों में ढूंढ़ रहा था. अनुत्तरित प्रश्न की वह लंबी आड़ी लकीर जो उसकी पेशानी पर थिर आयी थी, जिसका उत्तर उसे कटघरे में टंगी हलफनामा तख्ती से नहीं मिला और न लाला घनश्याम दास की तुर्श संवेदनाओं से ही.

कस्बा रज्जो के लिए बिल्कुल अपरिचित बन गया. दुकान की वह भुरभुरी मिट्टी जिसे उसने अपने पति और बेटे के गर्म लहू से सींच कर लसदार बनाया था, उसे अनचीन्ही-सी लगी. उसकी छांव में गुजारे हुए क्षणों को याद कर लज्जो का पोर-पोर टीसने लगा. वह बच्चों को ले कर गांव की ओर चल पड़ी.

उसे अपने आंगन में घुसने की हिम्मत नहीं हुई. सामने खेत के महार पर झकास मारते पेड़ उसे लील जाने को तैयार खड़े थे.

वह फफक कर रो पड़ी.मां को रोते देख कर सुरजा और बिरजा भी रोने लगे. रज्जो को अपना शरीर किसी विषधर सर्प के गुंजलक में फंसा हुआ लगा जिसकी गिरफ्त में हड्डियां चूर-चूर हो रही थीं. पीठ में छिपे फफोले फिर टीसने लगे थे. उसकी मर्मांतक पीड़ा जिसे वह आज तक नकारती आ रही थी, जांत के टीड़े की तरह अपनी पीठ में ठोंका हुआ महसूस हुआ.

फिर न जाने रज्जो को क्या हुआ, वह गरज कर बोली—सुरजा, काट दो इन अंधे पेड़ों को! ये मतहा गाछ जब-तक रहेंगे, तब तक तुम्हारे मुंह का कौर छीना जाता ही रहेगा. इसने तुम्हारे बाप को . . . आगे वह नहीं बोल सकी. उसे लगा,कोई बर्फानी तूफान पहाड़ के उस पार से दौड़ता हुआ आ कर उसके शरीर से टकरा गया है.कमला-बलान की धारा सात परतों वाली जमीन को चीरती हुई इस ओर मुड़ गयी है और उसके तेज बहाव में सारे पेड़ बहते चले जा रहे हैं. . . ☐☐☐

३५ समाहर्त्ता विशेष भू-अर्जन पदाधिकारी, गंडक योजना सं.—२, मोतीहारी (बिहार)

मार्च में प्रकाशित कथा-पहेली का सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार-विजेता

इस बार न्यूनतम १ अशुद्धि पर ७ प्रतियोगियों में से प्रत्येक को ३० रु. का पुरस्कार प्रदान किया जा रहा है. पुरस्कार विजेता हैं :

१. रामनाथ विश्वकर्मा, छोटा जेठा बीड़ी ब्रांच के पीछे, काकागंज, सागर (म.प्र.) २. प्रवीण मल्होत्रा, म. गा. मार्ग, बड़नगर, जि. उज्जैन (म. प्र.), ३. सूर्यदेव सिन्हा आर. ए. क्यू २२।७ एयर फील्ड, कलाइकुंडा, खड़गपुर (प. बंगाल), ४. शशिकांता चिब, म. न. १२२१, सेक्टर १५-बी, चंडीगढ़, ५. शालिकग्राम ठाकुर शिक्षक,प्राथमिक शाला, राहतगढ़, सागर (म. प्र.), ६. रमाकांत मंगल, डी।१४ रंजीत नगर, भरतपुर (राज.) ७. फूलसहाय तमौलया, ग्राम चांदनपुरा, पो. निनावली, जि. जालौन (उ. प्र.)

और यह रहा इस बार का सर्वशुद्ध हल.

१. नसीबो, २. (पृ. २९), ३. सुखबीर, ४. स. ५. जाने किस बंदरगाह पर, ६. (पृ. ४८-४९), ७. वीरेंद्र ८. कासगंज, साहिबाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही-सब जगह

• रामलखन यादव

मैं थोड़ी देर पहले बनारस-मटनी डाउन ट्रेन से उतरा था. दिन के आठ बज रहे थे. चैत का घाम पके खेतों पर पंख पसार रहा था. रोडवेज की बस छूट रही थी. दूसरी बस के आने तक रेलवे स्टेशन पर ही बैठ रहना उचित समझा. गांव का स्टेशन. अगल-बगल फसल भरे खेत. नाम भले एक अक्षर से प्रारंभ होते हैं, पर इस दुल्लहपुर और दिल्ली स्टेशनों में तमाम अंतर-ही-अंतर हैं. एक बात जरूर एक जैसी देखने को मिली. सवारी गाड़ी के चले जाने पर ठीक उसके पीछे एक मालगाड़ी आयी. स्टेशन के करीब आते ही उसकी गति कुछ धीमी पड़ गयी, जैसे रुकने को हो, पर रुकी नहीं. चलती गाड़ी के एक खुले डब्बे से सींकों का बंडल धकेला जाने लगा. दो आदमी बड़ी फुर्ती से बंडल धकेल रहे थे—छपाक्. . छपाक्, दूसरा गिरा. . .छपाक्. . .तीसरा बंडल गिरते ही दोनों गाड़ी से कूद पड़े.

तभी एक डब्बे से १०-१२ वर्ष के एक छोकरे ने बड़े से लाल रूमाल में काले कोयले भर कर लाइन की बगल में फेंकना शुरू किया. एक . . . दो. . . फिर तीसरी बार रूमाल भर कर हाथ में लिये कूद पड़ा. गाड़ी चली गयी. दो-तीन मिनट में ही कालिखपुते तीन बच्चे—दो लड़के, एक लड़की—छोटी-छोटी फटी झोलियां लिये कोयला चुनने लगे. एक खाकीधारी व्यक्ति हाथ में बांस की हरी-हरी सिटकनी को प्लेटफार्म पर रगड़ता मेरे सामने से गुजरा.

थोड़ी ही देर में 'खड़े रहो, खड़े रहो' की आवाज! बच्चे भाग रहे थे. तीन बच्चे. तीनों भागने में होशियार! एक अरहर के खेत के बगल में, तो दूसरा पुलिया के नीचे से हो कर लाइन के कभी इस पार तो कभी उस पार! तीसरा गेहूं की मेड़ों के कभी इस कोने तो कभी उस कोने! खाकीधारी भी कम जिद्दी नहीं, जैसे पकड़ लेने की कसम खा रखी थी इन बंदर के बच्चों को, जो सरकारी धन इस कदर छींट-छांट कर देश को कंगाल बना रहे थे!

रेलवे लाइन को काटती हुई रोडवेज की सड़क गुजरती है. रेलवे स्टेशन के करीब ही बस-स्टेशन भी है. सड़क के किनारों से राही-बटोही तथा खेतों से कामगार यह लुका-छिपी, यह भाग-दौड़, यह धर-पकड़ देख-देख कर किलक रहे थे. मैं स्टेशन के बेंच पर बैठा यह दृश्य देख रहा था — खाकीधारी, पसीने से तर, हार मान चुका था. मेरे सामने दिल्ली का यार्ड साकार हो चला था. . .

वही लड़का. . . कालिखपुता. . . भाग रहा है. दूसरी तरफ छोटी-सी टीन की डिब्बी लिये एक लड़की भाग रही है . . . क्या इस डिब्बी में किसी के जेवर हैं? हो सकता है यार्ड में कोयला चुनते-चुनते किसी के जेवर हाथ लग गये हों. . . बस यही बात है, वरना उस डिब्बी में कोयला कितना आ सकता है! अधिक-से-अधिक पाव भर, आधा किलो! इसीलिए आर. पी. एफ. वाले उसका पीछा कर रहे हैं!

पैसेंजर यह दृश्य उचक-उचक कर देख रहे हैं; हंस रहे हैं. बीच-बीच में मैं भी बरबस मुसकरा पड़ता हूं. . . बड़ी मेहनत के बाद वह लड़का पकड़ लिया गया है. . . वे उसे घसीटते लिये जा रहे हैं. साथ का एक जवान कह रहा है — छड्ड दे, यार! इससे कुछ नहीं मिलना!

—नहीं मिलेगा तो क्या, स्साले की ऐसी पिटाई करता हूं कि फिर कभी इधर ये तो क्या, इसका बाप भी नहीं आयेगा. . . कुछ दे नहीं सकता तो साला एक बोरी भी नहीं पहुंचा सकता!

तो यह दिल्ली नहीं, दुल्लहपुर था — शायद इसीलिए वहां तो कोयला चुनने वाला लड़का पकड़ लिया गया था, पर यहां नहीं पकड़ा जा सका. आंखें दिल्ली से हटीं तो देखा, दूसरी तरफ सींकों के पास खद्दर की सफेद धोती और बंगाली कुर्ता पहने एक अधेड़ सज्जन और वही खाकीधारी खड़े-खड़े बतिया रहे हैं; दोनों की अंगुलियों में सिगरेट है. धुआं और ठहाके ऊपर आसमान में भंवरें बना रहे हैं. क्षण भर में दोनों बगल वाले आम की छाया में चले जाते हैं, क्योंकि धूप अब तेज हो चली है; चैत के महीने में आठ बजे के बाद की धूप का तेज बड़े लोगों से बर्दाश्त नहीं होता. ऊपर आम की टहनियों से टिकोरों के गुच्छे लटक रहे हैं. एक कौआ उड़ा-उड़ा आता है, टिकोरों पर चोंच मारता है — अभी पके नहीं, इसलिए कांव-कांव करने लगता है. कौए की कांव-कांव से दोनों का ध्यान भंग हो जाता है.

* *

मैंने दूसरी बस पकड़ने के लिए अटैची उठा ली. बस-अड्डे को जाने वाली राह उसी पेड़ के नीचे से हो कर गुजरती थी. मैं उनकी बातें सुनने के लिए नाक साफ करने का बहाना बना कर अटैची नीचे रख एक मिनट के लिए रुक गया.

—दीवानजी, आप जैसे आदमी को यहां लगा दिया है. . . इन नीचों के पीछे दौड़ने के लिए!

—क्या कहें, प्रधानजी, शरीफ और बड़े आदमियों का तो अब जमाना ही चला गया!

—क्यों नहीं! आप जैसे आदमी इन सूअर के छौनों के पीछे दौड़ रहे हैं! स्साले पैदा करके छोड़ क्यों देते हैं! इन्हें पैदा करने वाले बाप स्सालों को ही पकड़ कर मरम्मत की जाये तो कुछ मामला बन सकता है!

—अरे साहब, इनके बापों का पता हो तब तो!

—पता क्यों नहीं है, दीवानजी, अपने पुरखों को क्यों भूल रहे हो!? अचानक मेरे मुंह से जब निकल गया, तब मुझे मालूम हुआ कि मेरे अंदर की सुबगती क्रोधाग्नि अब अनायास भभक उठी है. वे दोनों बुरी तरह चौंक उठे थे.

—क्या मतलब आपका! दिमाग तो ठीक है, श्रीमानजी? खाकीधारी बोल उठा.

—मेरा ठीक है, तुम अपना ठीक कर लो. इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेसहारा बच्चों को धूप में दौड़ा कर बड़े हीरो बन रहे हो! है हिम्मत किसी चोर-डाकू का पीछा करने की!

—ओहो! अब पता लगा! तो आप कोई महा-पुरुष हैं! कौन हैं आप? थोड़ा हम भी तो जानें!

साथ का खद्दर-धारी ठिठोली करता बोल उठा—अरे कुछ लगते होंगे, दीवानजी! आप को क्या मालूम!

—हां, मैं जरूर लगता हूं बच्चों का, इसीलिए तो पूछ रहा हूं..

—तो आप क्या लगते हैं, जरा बता तो दीजिए? क्या आप इनके बाप हैं?

—तो तुम समझते हो कि दुनिया में तुम्हारे ही बाप हैं! बाकी लोग बिना बाप के हो गये?

—देखो भाई, ढंग से बात करो, नहीं तो ठीक नहीं होगा! अब वह कुछ तैश में आ गया था और मुझे तुम कहने लगा था.

—जाने दीजिए भाई साहब, क्यों आप लोग झगड़ रहे हैं. एक साथ कई स्वरों को सुन कर ही मैं समझ सका कि अब तक मेरे पीछे और बगल में कई लोग इकट्ठे हो गये थे.

—देखिए भाई, आप ही लोग बताइए. बिना मतलब यह मुझसे उलझ रहे हैं. दुनिया में बहुत लोगों को हम लोग पकड़ते हैं, पीछा करते हैं, हमारा काम ही यही है. यह कह रहे हैं कि बच्चों का पीछा क्यों कर रहे हैं! उन्हें खदेड़ क्यों रहे हैं! बच्चे चोरी कर रहे हैं. . . और इन बच्चों से इनका कुछ लेना-देना भी नहीं है. यह भी होता तो मान लेते . . .

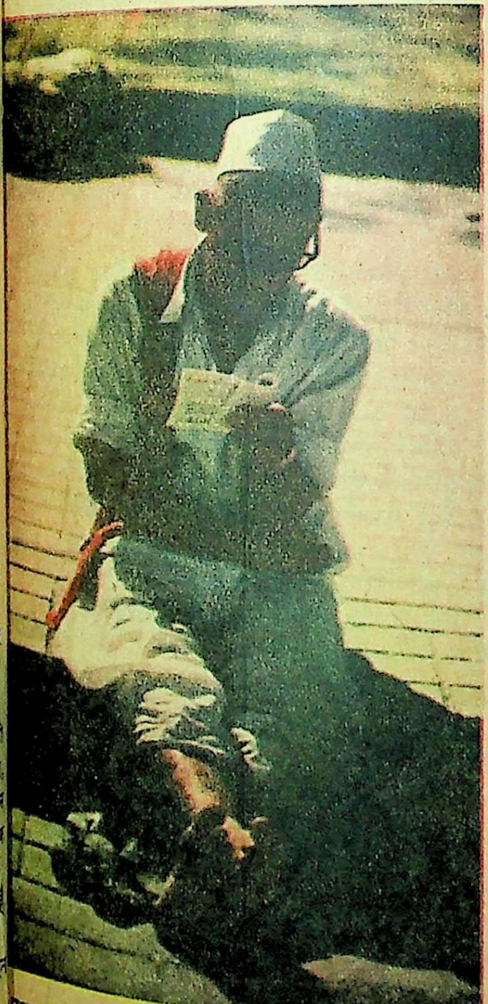

भीड़ से हट कर एक तंदुरुस्त, अधेड़ आदमी, जो सिर पर लाल गमछा बांधे हुए था, सामने आ कर मुझे समझाने लगा — भाई साहब, दुनिया में ऐसा पग-पग पर, चप्पे-चप्पे पर होता है; आप किस-किसको समझायेंगे, किस-किसके पीछे पड़ेंगे? अरे, सुना नहीं है— आराम बड़ी चीज है, ढक के मुंह सोइए, किस-किस को गाइए, किस-किस को रोइए!

मुझे लगा, यह आदमी यहां का कोई गुंडा है, जो खाकीधारी को प्रसन्न करने के लिए पक्षपाती लहजे में बात कर रहा है.

मैंने कहा— आपको अगर अधिक नींद आ रही है तो आप जाके सोइए. मैं आपसे बात नहीं कर रहा. बात जागने वालों से की जाती है.

दूसरे ने कहा—भाई साहब, छोड़िए, कहां अटक गये! कोई कुछ भी करे, हम से-आप से मतलब! अब तो अपने बाल-बच्चों की ही देखभाल कर ली जाये, वही बहुत है.

मुझे लगा कि सभी लोग मुझे एक ऐसा बेवकूफ समझने लगे हैं, जो खामख्वाह हर बात में टांग अड़ाता है. अपनी बात को सार्थक सिद्ध करने के लिए कहा—भाई साहब, आपको पूरा किस्सा मालूम नहीं है कि बात कैसे शुरू हुई. . .

—हां-हां आप ही को अगर मालूम है तो बता दीजिए ये बच्चे किसके हैं! मैं इनके बापों का चालान करवा देता हूं. सिपाही के लहजे से लगा कि वह बात को आगे नहीं बढ़ने देना चाहता था. सब कुछ घपले में डाल कर और बहुमत का पूरा फायदा उठा कर, मुझे जलील कर, छोड़ देना चाहता था. यह समझ कर मैं भी किसी प्रकार से बहुमत को साथ लेने के लिए दूसरे व्यक्ति से काफी सट कर कहने लगा — भाई साहब, बात यह है कि . . ये बच्चे एक आदमी के हैं . . . वह बेचारा गरीब आदमी. . .

—हिम्मत है तो बता दीजिए इनके बाप का नाम! सारा मामला अभी निबट जाता है! खाकीधारी बोल उठा.

—कैसे निबट जायेगा केवल नाम से?

—हां, नाम को क्या समझ रखा है आपने! साले को अभी घसीट कर गाजीपुर भेजवा देता हूं!

अब मैं अधिक तैश में आ गया था. —तो सुनो, इनके बाप का नाम है भूरा, जो मेरे साथ गाड़ी में आ रहा था. और भूरे का चालान होगा तो ये तुम्हारे जो अजीज बगल में खड़े हैं, इनका नाम भी नोट कर लो, चालान इनका भी होगा, और ये सींकें भी गाजीपुर जायेंगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—सींकों के पैसे दिये हैं. मुफ्त की नहीं हैं.

—गाड़ी के चलने में भी पैसे लगते हैं. मुफ्त की गाड़ी नहीं चलती! और पैसे दिये होंगे तो चलती गाड़ी से माल धकेलने के! समझे?

मेरा इतना कहना था कि जुट आये लोगों में खुसर-पुसर होने लगी. वह खद्दरधारी सकपका गया. उसने तथा-कथित दीवानजी के कंधे पर हाथ रखा. उन्हें थोड़ी दूर हटा कर ले गया. फिर तुरंत ही लौट कर कहने लगा —बाबू जी, आपको इन्होंने समझा नहीं था. आप पहले ही बता देते! खैर, अब छोड़िए, दीवानजी भी काफी शर्मिंदा हैं. जाने दीजिए, आइंदा वह ध्यान रखेंगे. . . . आपको प्यास लगी होगी, चलिए पानी पीजिए . . खैर पानी तो दुकान पर पियेंगे, फिलहाल लीजिए, सिगरेट पीजिए . . . कह कर डिब्बी उसने मेरे आगे बढ़ा दी.

खुसर-पुसर करती भीड़ ठहाका मार उठी. संभवतः इसलिए कि आखिर एक सिरफिरे को समझा लिया गया.

मैंने सिगरेट लेने से इनकार कर दिया था, अटैची उठा ली थी और बस-स्टेशन की ओर चल दिया था.

★ ★

सचमुच मुझे प्यास लग आयी थी. पकौड़ी वाले की दुकान पर जा कर पानी मांगा. पुरवे में उसने पानी दिया.

अंदर पानी की तरी पहुंची तो कुछ हंसी आने लगी—आज मैं कैसा हीरो बन गया था, जिसकी पिटाई विलेन द्वारा होते-होते बची. और फिर याद आ गया वह भूरा... भूरे का नाम मेरी जबान पर अचानक न जाने कैसे आ गया था; भूरा तो कानपुर में ही उतर गया था. वह भी जाड़ों में, आज से दो महीना पहले. कानपुर स्टेशन पर आया तो लगा कि प्लेटफॉर्म पर किसी अन्य भूरा का परिवार वैसे ही कराह रहा है. क्या यही भूरा है? वही भूरा, जो दिल्ली में आसाम मेल में मुझसे मिला था. . .

आसाम मेल ठीक पौने नौ बजे आ कर प्लेटफॉर्म पर लग गयी थी. जोधपुर से ही एक एयरमैन युवक से साथ हो गया था. वह बंगाली था, हमउमर था. हम दोनों ने मिल कर कुली को तीन रुपये दे कर ऊपर की बर्थ ले ली थी और आमने - सामने खिड़कियों पर जम कर बैठ गये थे. कड़ाके की ठंड. जनवरी का महीना. भीड़ धीरे-धीरे बढ़ रही थी. तब तक एक व्यक्ति अंदर घुसा—फटेहाल, फटा पाजामा, फटी खाकी कमीज और फटा कोट, जो संभवतः मांगा हुआ लगता था. गोद में उसके एक बच्ची—दो-तीन वर्ष की. पीछे लंगड़ाती, मैली सफेद साड़ी पहने एक औरत, एयरमैन की बगल में पसर गयी. उसने पूरी सीट घेर लेनी चाही. बगल में वह आदमी भी बैठ गया. हम दोनों ने अभी खिड़कियां जकड़ कर बंद कर रखी थीं. एयरमैन ने कहा—खिड़की खोल लो. और स्वयं खिड़की खोलने लगा. खिड़की खोलते ही कैबिन एक बर्फीले झोंके से भर गया. बैठी हुई औरत कराह उठी—माई साहब, दरवाजा बंद कर दीजिए. मैंने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया. मेरी बच्ची को ठंडक लग रही है. . .भाई साऽऽब. . .और वह फिर कराह उठी.

अब की बार मैंने स्पष्ट देखा — उसकी बगल की बांह में उससे सटी एक बच्ची खड़ी गनगन-गनगन कांप रही है. बच्ची खूबसूरत थी. मेरी तरफ टुकुर-टुकुर रही थी. मैंने देखा उस अबोध बालिका की आं... स्पष्ट याचना थी— खिड़की बंद कर दो बाबू, तो ... से बच जाऊं!

मुझे सचमुच दया आ गयी. मैंने खिड़की बंद ... दी. साथी से भी कहा तो उसने हिकारत भरी नि... उस औरत और उसके मर्द पर डाली और खिड़की ... बंद कर एक मैग्जीन निकाल पढ़ने लगा.

थोड़ी देर तक खामोशी रही. वह औरत कृ... भरी निगाह से मुझे घूर रही थी.

थोड़ी ही देर में एयरमैन ने मौन भंग किया—... थिंक दिस पेयर बिलांग्स टु ईस्टर्न यू. पी.

—दादा, आपको कैसे मालूम हुआ? मैंने पूछा.

—बस ऐसे ही. यू. पी. को हम जानता था कि ... इलाका है, पर यहां देखा बंगाल से भी अधिक गरीब... लेकिन एक बात है, पश्चिम वाला कुछ पैसा वाला ... कानपुर से जब पूरब जाता है न, तो ऐसा ही लोग मि... है. . . वॉच, आफ्टर सम टाइम दे विल स्टार्ट बैगिंग!

—दादा, इन फटे चिथड़ों में यहां किसी यू... और किसी बंगाल का सवाल नहीं है. ऐसे फटेहाल ... कहां नहीं मिल जायेंगे?

—सो तो ठीक है. हमारा मतलब आपने ... नहीं किया. हम प्रपोर्शन की बात करता है.

दादा ऊपर बर्थ पर चला गया. कहता गया... देखना, कोई बैठने न पाये. मैं नवभारत टाइम्स की पंक्ति... पर आंखें दौड़ा रहा था, पर मन कहीं और था.

—तुम्हें कहां जाना है, भाई? मैंने मर्द से पूछ लि...

—बस्ती.

—और. . .

इसी बीच कैबिन में हलकी-सी भगदड़ मच ... एक महिला, देखने में टीनेजर, अपने चार लल्लू, ... किट्टी और पूसी के साथ घुस आयी.

महिला ने आते ही कहा— मुझे थोड़ी ही दूर ... है, एक सीट दे दीजिए.

इसके पहले सट कर देह से देह रगड़ते हुए भी लोगों ... बीच घृणा की चीनी दीवार ने बड़े-बड़े फासले बना ... थे. अब ये फासले सिमटने लगे थे. दादा ऊपर से ... आया था. उसने कहा — आप मेरी सीट पर बै... सकता है. महिला हचाक से बैठ गयी.

एक व्यक्ति ने कराहती हुई औरत से कहा ... खिसक क्यों नहीं जाती?

—मुझे दरद हो रहा है.

—क्यों, दरद क्यों हो रहा है! महिला ने ... सिकोड़ कर पूछा.

—बीमार है, बहन जी, पति ने जवाब दिया.

—तो दवा क्यों नहीं करते?

—इससे बड़ी दवा क्या हो सकती है, यह ... दवा ही हो रही है! मैं बोल पड़ा.

महिला ने अचकचा कर मेरे ऊपर निगाह फें...

थोड़ी ही देर में किसी बुड्ढे ने बाहर से ... दी—रानो, वो रानो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिला बच्चों को समेट कर लप-झप करती मेरी तरफ प्रश्नवाचक निगाह फेंकती बाहर निकल गयी.

गाड़ी चली तो उस आदमी से फिर बात होने लगी. उसका नाम भूरा है. . . एक छोटे-से वर्कशॉप में साहब का चपरासी है . . .उसकी बीवी गांव में बीमार हुई, कभी बुखार, कभी पेट में दर्द, फिर पांव में फोड़ा. . . गांव में ठीक न हुई तो वह दिल्ली ले आया. . . सराय रुहेला के पास एक झुग्गी में रहता था. . . वहां और अधिक बीमार हो गयी. . फोड़ा ठीक होता ही नहीं.

मैंने उसे टोका—ऐसे भयंकर जाड़े में फोड़ा!

—क्या जाड़ा, क्या घाम, बाबूजी. यह जनम का घाव है! हम घाव लेके पैदा होते हैं, घाव लेके मरते हैं.

—तुमने किस डाक्टर को इसे दिखाया?

—डा. बनर्जी, दिल्ली के माने हुए सर्जन.

—बनर्जी ने क्या कहा?

—कहा कि इसके पांव में सड़न हो गयी है. कई महीने दवा होगी. ऑपरेशन करना होगा. इसके शरीर में खून की कमी है. उसका भी इंतजाम करना होगा.

—तो क्या इंतजाम किया है?

—क्या करते, बाबूजी, रोटी जुटाने के रास्ते तो हमें मालूम नहीं,भला खून का क्या इंतजाम कर सकेंगे?

—भूरा! भूलते हो न, रोटी जुटायी जाती है, पर खून तो चूसा जाता है!

—बाबू जी, सच है, पर खून चूसने के लिए सूंड़ चाहिए न—मच्छरों, खटमलों को देखिए सूंड़ होती है, हमारी सूंड़ तो पीट कर बराबर कर दी गयी है!

—तो अब इसे वापस क्यों ले जा रहे हो?

—क्या करें बाबूजी? यहां रहने की भी तो जगह नहीं. सरकार के हुक्म से सारी झुग्गियां गिरा दी गयीं तो अपनी क्यों बच जाती! यह कहने लगी कि मैं अब अपने गांव के झोंपड़े म ही मरना चाहती हूं.

—तो इसे गांव में मारने के लिए ले जा रहे हो?

—नहीं साहब, मरने में इसकी मदद करने जा रहा हूं. . .

हम दो-तीन मिनट तक शांत रहे. फिर वह बोल उठा—बात यह है सा'ब, पैदा होने में तो किसी का अधिकार नहीं होता, पर मरने में कुछ लोगों का जरूर हो जाता है. हम गरीबों का न जीने में, न मरने में, कहीं कोई अधिकार नहीं होता.

—यह मर जायेगी तो इस लड़की का क्या करोगे?

—मैं क्या करूंगा! यह बेचारी खुद कर लेगी; अभी तो मौत नहीं जानती; जब जान जायेगी तो किसी की मदद ले लेगी.

मैंने लापरवाही से कहा—तुम तो ऐसे कह रहे हो जैसे मौत में मदद लेना-देना तुम्हारा खानदानी पेशा हो! खैर, तुम्हारा यही बच्चा है?

—नहीं. यह तो सब से छोटी है. दो लड़के और हैं.

* *

तो दोपहर तक अपने घर पहुंच गया. शाम को अपने गेहूं के खेत की मेड़ पर बैठे दक्षिण तरफ के गिरे घर को देख रहा था. पिताजी उधर से गन्ने के खेत को देखते

रामलगन यादव (जन्म १९४३ में) ने एम. ए., एल-एल. बी. तक शिक्षा प्राप्त की है. रेलवे के लेखा विभाग में क्लर्क हैं. साथ ही हिंदी में शोध कार्य भी कर रहे हैं.

हुए आ कर मेरे पास बैठ गये. कहने लगे—रामप्रकाश, इस ढूह पर मैं बबुरी छींट देना चाहता हूं.

—उससे क्या होगा?

—अरे, क्या होगा? एक तो अपना कब्जा, दूसरे थोड़े दिनों में पेड़ हो जायेंगे.

मैं क्षण भर चुप रहा. फिर वह आगे कहने लगे—भाई, हमने तो दुखमोज को कहा था, चकबंदी वालों को पचास-साठ खिला देता, तो यह चार बिस्वा आबादी हो जाता और इसके बदले हमें दूसरी जमीन मिल जाती. पर माना नहीं तो भोगे. आबादी यह है नहीं और अब घर भी नहीं रहा कि उसका कब्जा साबित हो. चारों तरफ हमारा चक है.

—लेकिन उसका घर गिर कैसे गया? मैंने पूछा.

—अरे गिर न जाता तो क्या होता? बरसात के पहले अपने बच्चों को यहीं छोड़ कर अपनी औरत को ले कर बनारस दवा कराने चला गया था. बच्चे कभी पड़ोसी दुखहरन के यहां तो कभी किसी के यहां ठोकर खाते. बरसात होने पर एक दिन घर लौटा. . . तो. . . .

पिताजी रुक गये, फिर बोल उठे—विचित्र-विचित्र बातें दुनिया में होती हैं. . . तो दुखमोज एक दिन बरसात की रात में आया, चांदनी रात थी. घर पहुंचा तो उसका छोटा बच्चा दुखहरन के ओसारे में जगा हुआ था. उसको देखते ही दौड़ा-दौड़ा आया; चिल्लाने लगा—भूख लगी है बाबू, क्या लाये? उसने कहा—गम लाया हूं, बेटा . . . फिर बच्चा दौड़ा-दौड़ा जा कर अपनी सोती बहन को झकझोर-झकझोर कहने लगा—बाबूजी आम लाये हैं, बाबूजी आम लाये हैं. . . सुबह खबर मिली कि रास्ते में दुखमोज की बीवी उसके साथ-साथ ही बेचारी कराहती लौट रही थी; रास्ते में यह जो सिहोर के पास कुआं है न, उसी में कूद पड़ी. रात का समय, बेचारा दुखमोज चिल्ला-चिल्ला कर शांत हो गया, कुएं का पानी ढब्ब-ढब्ब करता शांत हो गया था. . . दूसरे दिन उसका पता नहीं लगा. गांव वाले कहते हैं कि अब वह नहीं लौटेगा. केवल बच्चों को वह खबर देने आया था, पर उनको बता न सका. . .

—तो भूरा सचमुच नहीं लौटेगा? मैंने पूछा.

—कौन भूरा? अरे, मैं तो दुखमोज की बात कर रहा हूं.

—अरे हां, वह भूरा. . .वह तो कानपुर में ही उतर गया. . . यह तो. . . □□□

उत्तर रेलवे कारखाना, लेखा विभाग, जोधपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तह के नीचे • कृष्णकांत प्रवासी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे जेब में पड़े सवा दो रुपये का एहसास फिर काटने लगा था. पड़ोस में कोई एक चम्मच भी शक्कर देने को तैयार नहीं था. और बाजार में शक्कर साढ़े छह रुपये किलो थी. घर में इस समय सवा दो रुपये की ही नकद संपत्ति थी.

—पिता जी तुम्हें पूछ रहे थे. . . मैंने पत्नी से कहा तो वह आटा सने हाथ धो कर पल्लू में पोंछने लगी. तभी दहलीज तक जा कर लौट आयी कि सो गये हैं.

दोनों बगल वाले, मनचंदा और शर्मा, नुक्कड़ वाले खास्तगीर और चौथे नंबर के मकान वाले गोंदड़ी साहब से हम किसी-न-किसी रूप में उधार ले चुके थे. इतनी नौबत तो नहीं आती अगर मैं एक महीने बाद शुरू होने वाले जाड़ों और अपने समस्तरीय समझे जाने वाले लोगों का एक छोटी सीमा तक मुकाबला करने के लिहाज से फुटपाथ पर से विदेशियों के उतारे हुए कीमती जैसे पर सस्ते कपड़े बच्चों के लिए नहीं खरीद लेता. पैंसठ रुपये में तीनों लड़कों के लिए एक-एक पैंट और एक-एक कोट. कपड़े अच्छे थे. एकदम नये और बेशकीमती लगते थे. दूकानदार कह रहा था—- अमरीकी हैं. खास्तगीर साथ ही था.वह वैसे ही कपड़ों के लिए छटपटाता रहा था. लेकिन संयोग से उस तरह के दूसरे कपड़े पूरी मार्केट छान मारने पर भी नहीं मिले थे.

आज २१ थी और हम फूली हुई सांसों से पहली तारीख की प्रतीक्षा कर रहे थे. पत्नी सब डिब्बे और कनस्तर बजा कर दिखा चुकी थी. केवल आधा किलो चावल बचा था. आज उसी की बारी थी. सोचा था, कल की कल देखी जायेगी. बच्चे खा लेते, तब हम दोनों मुंह जुठारते. परंतु पिताजी को आया जान, पत्नी पंकज के यहां से एक भगौना आटा और एक बड़ा गिलास भर चावल उधार ले आयी थी.

बच्चे बाहर से खाना मांगते और ठुनकते हुए आये तो मैंने स्पंजिया की चार-चार मीठी गोलियां उन्हें दे कर टाला.—- अभी बाहर खेलो. वे खाने का इंतजाम होता देख लौट गये.

पिताजी ने आवाज दी—- मोहन! मैं सामने उपस्थित हुआ. बोले—- क्या बहू नहीं आयी? चा बनवा, पीऊं. थोड़ी सुस्ती दूर हो. . . थक गया हूं. . . एक दिन में बाइस-बाइस कोस बिना सुस्ताये पैदल चलता था. . . आज भी बारह कोस चला हूं. नहर पर लोगों ने भतेरा कहा, बस से चलौ, आ रही है. मैंने कहा छोड़ो बस-फस. . . आती रहेगी. . . तुमने इतनी सारी किताबें क्यों जमा कर रखी हैं? इन्हें रद्दी में बेच दो, पैसा खड़ा हो. . .

फिर उन्होंने एक पत्रिका उठा ली, जिसमें मेरी कहानी थी. जेब से टटोल कर चश्मा निकाला और आंखों पर चढ़ा कर पत्रिका के नाम से ही पढ़ने लगे. मुखपृष्ठ पर एक युवती का चित्र था, गहरे गले ... ब्लाउज से जिसके उरोज झांक रहे थे. जैसे छविकार ... इसी बिंदु पर विशेष जोर दिया था. उनकी नजर ... पर से ऐसे हट कर पत्रिका का दाम पढ़ने लगी, जैसे ... में अचानक बहू को मुंह खोले देख लिया हो और वह ... पर कुर्ता टांगने लगे हों.

——इतनी-सी पत्रिका का मूल्य चार रुपये! उन्होंने चकित होते हुए कहा. अरे! 'कल्याण' 'परमार्थ' 'हंसादेश' वगैरा पढ़ा करो. . .ऐसी पत्रिकाएं गृहस्थ ... नहीं पढ़ना चाहिए. उन्होंने पन्ना पलट दिया. अब ... पृष्ठों में विज्ञापन थे. मैं नामालूम ढंग से उठ कर ... आया. अब मैं अपनी जेब में पड़ी रकम के प्रति बिल्कुल निर्मम था.

पत्नी जानती थी. उसने एक लोटे में चाय भर दी और साथ में एक पीतल का गिलास रख कर मुझसे कहा— दे आओ.

मैंने चाय ले जा कर उनके सामने तिपाई पर रख दी. उन्होंने चाय पीते हुए कहना शुरू किया —- तुम देखते थे कि मैं नौकरी के साथ कितने धंधे करता था. खेती, हकीमी, मेले में लिखाई, व्यापार. . . तब कहीं इतनी बड़ी गृहस्थी खे पाता था. तुम्हारा मुझे पता नहीं चलता क्या करते हो! तुम्हारी आमदनी-खर्च कुछ भी तो. . . अपनी छोटी बहन की शादी के लिए कुछ जमा किया है?

——आं. . . अं. . .! अस्पष्ट-सी आवाज मेरे मुंह से निकली, जिसका अर्थ न हां था, न न.

उन्होंने खाली गिलास भरने का इशारा किया और बात का सूत्र फिर उठा लिया—- रामसनेही कह रहे थे कि उनके दामाद को अब आठ सौ मिलने लगे. तुम ... और वह हो तो एक जैसे ओहदे पर. . . खैर, तुम नहीं बताते, न बताओ. वह बोले जा रहे थे—- तुम्हें ... सौ मिलें, चाहे हजार, मुझे कुछ नहीं चाहिए. सुनते हुए अच्छा लगता है, तबीयत सिहाती है. रामसनेही ने ... दामाद की बात कही और खुशी मुझे तुम्हारे बारे ... सोच कर हुई.

मुझे पहली तारीख को ३०८ रुपये पकड़ाने के बाद टिप के लिए घूरती कैशियर की आंखें याद हो आयीं. दो साल पहले ही तो मैंने उन्हें अपनी तनखाह बतायी थी. और जब सौ रुपये खुशी-खुशी उन्हें दिये थे तो छूटते ही कहने लगे थे कि रामसनेही का दामाद तीन सौ रुपये हर महीने घर भेजता है और खुद ... परिवार सहित शहर में ठाठ से रहता है. तुम ये कैसे. . . मैंने तो कभी मांगे नहीं. . . सौ दे रहे हो. . . अच्छा, ... कर रहे होगे, अच्छी बात है. ये भी रख लो. मुझे प्रसन्नता है, जमा करना चाहिए. . . रखो. मैं कतई असंतुष्ट नहीं हूं. तुम देखते हो, घर में कोई भी कमी नहीं है. तुम लोग सुखी रहो.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं उनको चोट नहीं [illegible] इस प्रसन्नता के मोह ने मेरे ओठ ही सिल दिये. .

दरवाजे की आड़ में चूड़ी खनकी तो मेरी दृष्टि उस तरफ उठ गयी. वह भी देखने लगे. पत्नी थी. वह कुछ कहते, इतने में उसने झुक कर उनके पांव छू लिये.— जीती रहो! दो बार कहा. पर उन्होंने नहीं पूछा कि अभी कहां गयी थीं? पत्नी कुछ ठिठकी, फिर चली गयी. वह चाय सुड़कते रहे. मैं पिछले महीने प्रकाशित अपनी कहानी के पारिश्रमिक के संबंध में विचार करने लगा. बार-बार पत्र लिखने पर भी संपादक ने कोई उत्तर नहीं दिया था.

* *

उसी समय शोर मचाते हुए तीनों बच्चे फिर आ पहुंचे— मम्मी खाना दो, भूख लगी है. और वे सब कमरे में आ गये. पिता जी को सबसे बड़े लड़के ने आज शायद तीसरी बार और शेष दो लड़कों ने दूसरी बार ही देखा था. वे सहमे-से खड़े थे. पिता जी ने उन्हें पास बुला कर उनके सिरों पर हाथ फेरा, फिर झोले में से निकाल कर एक सेब दिया और कहा— जाओ, मिल-बांट कर खाना. बच्चे खुश हो कर भाग गये.

भोजन करने के बाद वह कहने लगे—चारपाइयां कम पड़ेंगी न? मेरा बिस्तर जमीन पर लगा दो. फिर बहुत कहने के बाद चारपाई पर ही लेटने को राजी हुए. घर में दरी पर बिछाने लायक कोई चादर नहीं थी. इसलिए पंकज के यहां से नयी बेडशीट मांग लायी गयी. उन्होंने उसे देर तक सराहते हुए कहा— इसे मैं ले जाऊंगा. घर में आये-गये के लिए हो जायेगी. तुम दूसरी खरीद लेना. उनका इतना खूबसूरत भ्रम तोड़ने में मैंने स्वयं को फिर असमर्थ पाया.

वह तो सो गये और खर्राटे लेने लगे. मैं जागता-सोचता रहा—कल सुबह का नाश्ता और फिर भोजन. . . कैसे होगा? अब पास एक पैसा नहीं बचा. बच्चों की गुल्लकें भी हम खाली कर चुके थे. मुझे एक तरकीब सूझी. मैंने सोचा, अभी बच्चों को जगाऊं. फिर. . .

• सूरज एन. शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं दूसरे कमरे में गया. [illegible] तीनों बच्चे आड़े-तिरछे लेटे थे और तनिक-सी जगह में घुटने तोड़े बैठी पत्नी एक पुराना स्वेटर, जिसे कल उधेड़ कर उसने बुनाई डाली थी, आज फिर उधेड़ रही थी. उसने बड़ी-बड़ी पलकें उठा कर मुझे देखा और बेबस मुसकरा दी. मैं एक अजीब कशमकश के कारण उसके आकर्षक लगने की स्वीकृति को नहीं झेल पाया. दूसरे क्षण मुझे आश्चर्य और उससे ईर्ष्या होने लगी कि स्त्री होना कितना सुरक्षित है! . . .पति अपने आप पत्नी की ढाल बन जाता है. फिर 'है, नहीं भी है' जैसे उदार तर्कों में फंसने के बजाय मुझे उसकी बेफिक्री पर झुंझलाहट हुई. कई क्षुब्ध स्थितियों में उसने कहा था—जो लाओगे, पका दूंगी, मुझे क्या? मैं कोई मर्द थोड़े हूं! फिर खाने की बात को वह अपनी फटी धोती, गहनों के अभाव, अपने इंजीनियर भाई की संपन्नता का हवाला और मेरी बाबुई विपन्नता. . .जाने कहां-कहां उलझा दिया करती थी. पत्नी-स्वभाव के इस असहयोगी अंश से मैं बार-बार चोट खा कर तिलमिलाया हूं, चिल्लाया हूं और बच्चों को पीटा है. पड़ोसी इकट्ठे हुए हैं. उन्होंने मुझे समझाया है, तो मैं उनको उत्तर देना चाहते हुए भी नहीं दे पाया हूं—कि मैं जानता हूं बच्चों से कैसा व्यवहार करना चाहिए. मैंने मनोविज्ञान, दर्शन पढ़े हैं, तुम से चौगुना उपदेश दे सकता हूं. . .हराम की रकम कमाते हो, तभी महीने के आखिर में भी मजे होते हैं.

मगर मैं ऐसी स्थिति के बाद वास्तव में किसी से कुछ नहीं कह पाता: लोगों के उपदेशों की याद करता, रोता. . रामायण में सुकून ढूंढ़ता या फाकामस्ती के शेर पढ़ता, लेकिन फिर भी मैं जान नहीं पाता और. . .वही दौवारा घटने लगता.

मैंने पत्नी के रुख का खयाल किये बगैर तीनों बच्चों को उठाया, वे बैठ कर झूमने लगे. मेरे हिलाने पर वे कबूतर की तरह लाल आंखें खोल कर मूंद लेते. मैं उन्हें फिर हिला कर कान में बुदबुदाता—कल सवेरे बाबा जी से कहना, बाबा जी, पैसे दीजिए, हम लोग मेला देखने जायेंगे. . .शब्बास, भूलना नहीं. उसके बाद मैं सफाई देने के लिए हंसा और पत्नी से बोला—हां-हां, बच्चों को पिता जी के करीब लाने की कोशिश कर रहा हूं. . .ये बिदकते जो हैं! अपनों को भी नहीं जानेंगे तो. . . पत्नी मुसकरा कर बोली—पिता जी मुझे भी तो मेले के लिए पैसे देंगे, मांग लूं?

—यस! आइडिया! . . .मगर मुझे तो नहीं देंगे. मैंने पत्नी के कथन में छिपे व्यंग्य की उपेक्षा करते हुए कहा. और मैं एक बच्चे को कंधे पर टांग कर अपने बिस्तर पर दूसरे कमरे में चला आया.

* *

रात भर मुझे अनिद्रा के दौरे आते रहे. पिता जी को गहरी नींद में सोते देख मैं फिर ईर्ष्यालु हो उठा कि बुढ़ापे में भी इतनी अच्छी नींद आ सकती है! . .जवानी नींद के लिए व्यर्थ ही बदनाम है. मैंने कुछ 'लिखने' का यत्न किया, पर आज मनःस्थिति नहीं बनी.

ताक़त
मर्द की शान मर्द की पहचान

इस ताक़त को बनाये रखने के लिए, सदाबहार चुस्ती, फुर्ती और नौजवानी की सी उमंग के लिए ओकासा स्वास्थ्यदायक टॉनिक टिकियाँ लीजिये। ओकासा टॉनिक टिकियों की अनोखी शक्ति से आपके शरीर और दिमाग़ को लगातार नयी ताक़त मिलती है।
ओकासा की टिकियों पर चाँदी चढ़ी रहती है।

ओकासा
टॉनिक टिकियाँ
पुरुषों के लिए चांदी वाली
हार्मो-फ़ार्मा लिमिटेड लंदन-बर्लिन का उत्पादन
सभी बड़े-बड़े केमिस्टों के यहां मिलता है।
OKASA CO. PVT. LTD.
12A Gunbow Street, P.B.No.396,
Bombay-400001.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबेरे वह शौचादि से जल्दी निवृत्त हुए. रात के बचे थोड़े दूध, चाय-पत्ती और चीनी से कल शाम की चाय से आधी चाय बन पायी. चाय के लिए जिद कर रहे बच्चों को घुड़क कर पत्नी ने आधी-आधी बासी रोटी पानी और नमक लगा कर पकड़ा दी. रोटी खाते हुए बच्चों को मैंने फिर उनके 'कार्य' के संबंध में 'ब्रीफ' किया.

आधा लोटा चाय देख कर पिता जी असंतुष्ट लगे, मगर उन्होंने सिर्फ इतना कहा कि जाओ, तुम लोग भी पियो.

तीनों लड़के आये और उनके पास ठिठक कर खड़े हो गये. वह फूंक-फूंक कर चाय पी रहे थे. मैंने आंखों से बच्चों को इशारा किया कि कहो! मगर उनके मुंह से बोल नहीं फूटा. वैसे खोपड़ी खाये रहेंगे, इतना शोर मचायेंगे कि पूरा मोहल्ला जाग जाये. अब इनकी जबान को लकवा मार गया! वे बड़े ध्यान से उन्हें चाय पीते हुए देख रहे थे. तभी सबसे छोटा किट्टू बोल पड़ा—पापा, हम भी चाय पियेंगे.

—अच्छा, चा पियेगा! अभी ले! कैसी बात कह दी? लल्ला के लिए भई बरतन लाओ, राजा साहब चा पियेगा. उन्होंने उसे गोद लेने को हाथ बढ़ाया तो वह मुझसे चिपट गया और मैं उसे यह कह कर वहां से हटा लाया कि तेरी मम्मी चाय दे रही है, वो देखो! मगर वह जोर-जोर से रोने और हाथ-पैर फटकारने लगा. पत्नी को दिया तो उसने धमाक् से उसकी पीठ पर दो हाथ मारे और ब्लाउज से बाहर स्तन खींच कर उसके मुंह में ठूंस दिया और बड़े गुस्से से मुझे घूरने लगी. मैं पिता जी के पास खड़े रह गये दो बच्चों को देखने लगा कि देखो खड़े हैं, जरा भी इनमें चतुराई नहीं! मैंने तो ये दिन देखे हैं. देखना, तुम्हें भीख ही न मांगनी पड़े, उल्लुओ!

पिता जी ने पूछा कि कैसे खड़े हो, तब भी नहीं बोले. जी में आया कि जाऊं, इनके धरूं दो-दो हाथ और कान पकड़ कर बाहर. . .पर मैंने वहीं से उनका नाम ले-ले कर बुला लिया. जब वे पास आये तो मैंने पूरी घृणा के साथ मुंह बिगाड़ कर उन्हें देखा. वे भीगे चूहे की तरह सिकुड़ गये. मैंने प्रकट में धीरे से कहा—चलो, पढ़ो बैठ कर.'

कमरे में पिता जी चाय पी चुके थे, क्योंकि उन्होंने उसांस लेते हुए बड़े जोर से कहा—भगवान् हो! फिर बोले—मोहन, तुझे याद है कि छोटा था, तब तेरा कितना लाड़ हुआ. . .दूध तू बिना फैलाये कभी नहीं पीता था! अब यह चा पीता है. खैर शहर में दूध नहीं मिलता, और सुविधाएं तो हैं. दुःख तो इस बात का है कि बचपन से कभी तुझे अलग नहीं किया. इधर छह साल से जाने तुझे क्या. . .और उनके स्वर से लगा कि वह रोने लगे हैं. फिर स्वर में सामान्यता लाने की कोशिश करते हुए बोले—जरा इधर आना, मोहन.

मैं गया तो कहने लगे—वैसे तो मतलब भर को हैं. मैं सोचता हूं, नीमसार जाऊंगा. जरूरत के लिए पचास रुपये ले आ, रख लेता हूं. सुन कर मैं अवाक् और निरुत्तर था, पर इसे वह मेरी स्वीकृति समझ रहे थे.—जा, ले आ, अब चलूंगा. आठ बजे बस जाती है. वहां आज यज्ञ शुरू हो गया होगा.

कृष्णकांत प्रवासी (जन्म : २ सितंबर, १९४०, उत्तर प्रदेश के हरदोई जिलांतर्गत ललुआमऊ गांव गांव में) ने पहले कविताएं लिखीं, फिर जब अभिव्यक्ति के लिए व्यापक कैनवस की जरूरत महसूस हुई तो कहानी लिखना शुरू किया. कुछ रचनाएं प्रकाशित.

पत्नी चौके में थी. मुझे लगा, दीवारें घूम रही हैं. . . दूसरे कमरे में खड़े हो कर देखते हुए मुझे पत्नी की आकृति धुंधली लगने लगी. . .आंखें पोंछी तो देखा, वह इधर पीठ किये बैठी थी. मैं उसके संदूक की चाबी ढूंढ़ रहा था. वह मिल भी गयी. एक सोने की चूड़ी बची थी शायद, निकाल लूं! लेकिन संदूक खड़केगा और वह जान जायेगी. फिर अभी हाय तोबा. . .मैंने चाबी वापस रख दी.

मैंने पलंग पर से तीनों बच्चों के कपड़े उठाये और दबे पांव बाहर निकल आया.

खास्तगीर घर पर ही था. मैंने बड़ी गर्मजोशी के साथ उससे कहा—ले भाई, ये रही तेरी पसंद! तू बहुत जान छिड़कता था न इन कपड़ों पर. . .मैं उस दूकानदार के घर से ले आया. यार, वह तो मेरी पुरानी जान-पहचान का निकला!

—बैठो तो सही. उसने चमकीले दांत दिखाते हुए कहा. अरे, चाय आ रही है, नहीं तो तुम्हारी भाभी नाराज होंगी. . .ऐसी क्या बात है. . .?

—चाय तो रोज पीते हैं. भाभी नाराज होंगी तो हम दोनों मना लेंगे. तू जल्दी से रुपये दे, वह मेरे घर पर बैठा है. . . हां-आं, पैंसठ के मैंने लिये थे न. मैंने कहा, पहचान निकल आयी तो तेरे लिए पांच छुड़ा लिये—यानी साठ ले आ फटाफट. अभी नहाना है और दफ्तर जाना है.

★ ★

पिता जी को बस में बैठा कर लौटा . . .बच्चे और पत्नी. बदहवास थे. पत्नी डरते-डरते बोली—परसों धूप में सुखाये थे इनके कपड़े, फिर यहीं पलंग पर रख दिये थे, मिल नहीं रहे हैं. एक-एक सामान उलट कर देख लिया. . .कोई बाहरी आया भी नहीं तबसे. . .

—दर्जी को दे आया हूं ठीक करने के लिए, ढीले थे न. मैंने उन्हें समझाया, तो बच्चे आश्वस्त हो कर अपने बस्ते उठा कर पढ़ने चल दिये. पत्नी ने कहा—खाना खा लीजिए, नहीं तो दफ्तर के लिए देर होगी.

किंतु मैं सोच रहा था कि पत्नी को अभी बता दूं या बाद में कि. . . □□□

टी ५ ए, बड़ी लाइन, स्टेशन के सामने, शाहजहांपुर (उ. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गिद्ध

● नर्मदेश्वर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अपने आंगन में खाट में धंसा हुक्का गुड़गुड़ा रहा है. सामने छप्पर पर मृत मवेशियों के चमड़े सूख रहे हैं. छप्पर के पीछे इमली का पेड़ रह-रह कर चर-मरा उठता है. गिद्धों के विशाल पंखों से टकरा कर हवा खड़खड़ा उठती है. वह जानता है कि गिद्ध की आंखें बड़ी तेज होती हैं. कहीं कोई मवेशी मरा कि ये लगे टपकने. पास ही आज फिर कोई मवेशी मरा होगा. पंद्रह-बीस दिनों से कोई दिन ऐसा नहीं गुजरा है जिस दिन दो-चार मवेशी नहीं मरे हों. गांव ही नहीं पूरी पंचायत के आधे से अधिक मवेशी इस महामारी के शिकार हो चुके हैं.

उसकी बछिया भी कई दिनों से बीमार है. वह खूंटे से बंधी छटपटा रही है. उसका सारा शरीर चेचक के फोड़ों से भर आया है. दो दिनों से उसने कुछ भी नहीं खाया है, मुंह भी नहीं चलाया है. जब से सुई पड़ी है, उसकी हालत और अधिक बिगड़ गयी है. फिर भी, जब तक सांस तब तक आस. रजपतिया सिलवट पर उड़हुल के फूल पीस रही है. शायद इस दवा से कुछ फायदा हो. बहुत मुश्किल से पिछले साल उसने इसे तीस रुपये में खरीदा था. लगता है उसके रुपये पानी में ही जायेंगे. बछिया के बचने की कोई उम्मीद अब नहीं है.

तब वह मालिक की बनिहारी करता था. किसी तरह रोटी चल जाती थी. मालिक थोड़ा मुंहफट आदमी था. जरा-सी बात पर उसके मुंह से गाली ही बरसती थी. सुबह-सबेरे मालिक का गर्दभ स्वर चौखट से टकराता था — अरे निमचनवा, साला दिन भर सोता ही रहेगा क्या रे? कई बार कह कर थक गया कि मेरा काम करना है तो पौ फटते ही हाजिर हो जाओ. लेकिन इस हरामखोर के कान पर जूं तक नहीं रेंगती. वह कंधे पर अंगोछा रखता और चुपचाप आंखें मलता बाहर निकल जाता था. बिना कुछ कहे-सुने.

वह जानता था कि मालिक की बातों का जवाब नहीं दिया जाता . एक कर्जखोर का बेटा कुछ कह सकने के काबिल भी नहीं रहता. मालिक ने हमेशा हाथ खोल कर उसको सहायता दी थी. जब कभी खर्ची घटी, मालिक ने अनाज की बोरियां खोल दीं. यह बात जरूर थी कि यदि उन्होंने सावन में एक मन दिये तो अगहन में उससे डेढ़ मन खलिहान में ही वसूल लिये. उसके बाप ने जीवन भर मालिक की खिदमत की. लात-जूता खा कर भी कभी मुंह नहीं खोला. मरते वक्त वह मालिक के पांव कभी नहीं छोड़ने की हिदायत भी दे गया था उसे. उसने अपनी मर्जी से मालिक का काम छोड़ा भी नहीं था. मालिक ने उसे खुद ही छोड़ दिया था. उसे बनिहारी से हटा दिया था.

तंबाकू का एक गहरा कश खींच कर वह ढेर सारा धुंआ उगलता है. अगहन की वह धुंध भरी सुबह उसे खूब याद है. उन दिनों कटनी चल रही थी. बधार में धान के पयार सूखने के लिए पड़े थे. वह, उसकी बीवी और बारह साल की उसकी बिटिया [illegible]ने मिल कर तीन सोरहिया काटा था. तीन सोरहिया यानी सोलह तिया अड़तालिस बोझा. सोलह में एक बोझा बनिहारे का होता है. इस तरह उन अड़तालिस बोझां में तीन बोझे उसके अपने थे. उन बोझों को ढो कर खलिहान में पहुंचाना था.

सभी बनिहार और उनकी बीवियां बोझा ढोने में व्यस्त थे. करीब एक दर्जन बच्चे, जिनमें उनके बच्चे भी शामिल थे, खेतों में गिरे धान के टूटे बाल बीन रहे थे. हालांकि मालिक का सख्त हुक्म था कि बिना बोझा ढोये कोई भी बाल नहीं बीनेगा. लेकिन उन बच्चों को भला कौन रोके.वह अपने को भी तो नहीं रोक पाया था. बच्चों के साथ वह भी धान के टूटे बाल बटोर रहा था. उसे डर था कि बोझा ढोने तक खेतों में एक भी बाल बचेगी ही नहीं चुनने को. बच्चों के बीच बच्चा बना वह बाल बीन ही रहा था कि न जाने कहां से मालिक भूत की तरह आ धमका. मालिक के मुंह से गालियां छुरछुरी की तरह निकल पड़ी थीं. वह भी उसकी बीवी और जवान बिटिया के मुंह पर. उसे लगा था कि उसका सारा पौरुष मर गया हो. मालिक ने फटकारते हुए कहा था — साले भुनभुना रहे हो? मारते-मारते चमड़ी उधेड़ दूंगा. समझ क्या रखा है आखिर? इतने दिनों तक मुझे बेवकूफ बनाते रहे और मैं जान कर भी अनजान बना रहा. तुम्हारे देखा-देखी सभी बनिहार बिगड़ गये. अभी परसों नये बैल की पूंछ तोड़ डाली. मेरा जो नुकसान हुआ उसे कौन भरेगा— तुम्हारा बाप? कर्जा तो चुकता नहीं कमीने से. तुम क्या जानो कि बैल क्या होते हैं —— जिंदगी भर तो उनकी चमड़ी छुड़ाये. अब समझा कि मेरे खूंटे पर बैल क्यों नहीं टिकते. आज से मुझे तुम्हारी कोई जरूरत नहीं... समझे कामचोर, नमकहराम, साला, बहन. . .

समझा तो वह कुछ भी नहीं था लेकिन इतना याद है कि उसकी मुट्ठियां बंध गयी थीं. उसका सारा व्यक्तित्व ऐंठ गया था. फिर भी वह सारा अपमान पी कर रह गया था. आखिर वह कह भी क्या सकता था? शायद मजबूर था वह. खलिहान से अपने तीन बोझे उठा कर घर ले आना भी उसकी मजबूरी ही थी. मालिक ने उसके हक को साफ नकार दिया था. उसके बोझे खलिहान में ही रोक दिये गये थे. बनिहारी में मिला एक बीघा खेत भी उसे काटने नहीं दिया गया था. बोझे उसके घर में पकड़े गये थे. पंचों ने उस पर चोरी का इल्जाम और पचास रुपये का दंड लगाया था. वह अपना जुर्म कबूल नहीं कर पाया था और न ही जुर्माने की रकम अदा कर पाया था.

जुर्माना देता भी कहां से? यह तो उसका खानदानी पेशा था जो बुरे दिनों में काम आया नहीं तो वह बीवी-बच्चों के साथ भूखा मर गया होता. तब से वह मृत मवेशियों के चमड़े छुड़ाता है. चमरुआ जूते बनाता है. नाधा-जोती बांधता है, रजपतिया बटोर लायी गयी हड्डी की गठरी ले कर शहर जाती है और किसी तरह गृहस्थी की गाड़ी खीचता है, उसके कंधों पर बांस की रगड़ खा कर बन आये काले खुरदरे निशान साफ नजर आते हैं. रोज-रोज मरे डांगर ढोना उसे अच्छा नहीं लगता. मरे जानवर शायद और भारी हो जाते हैं. उनके बंधे पैरों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

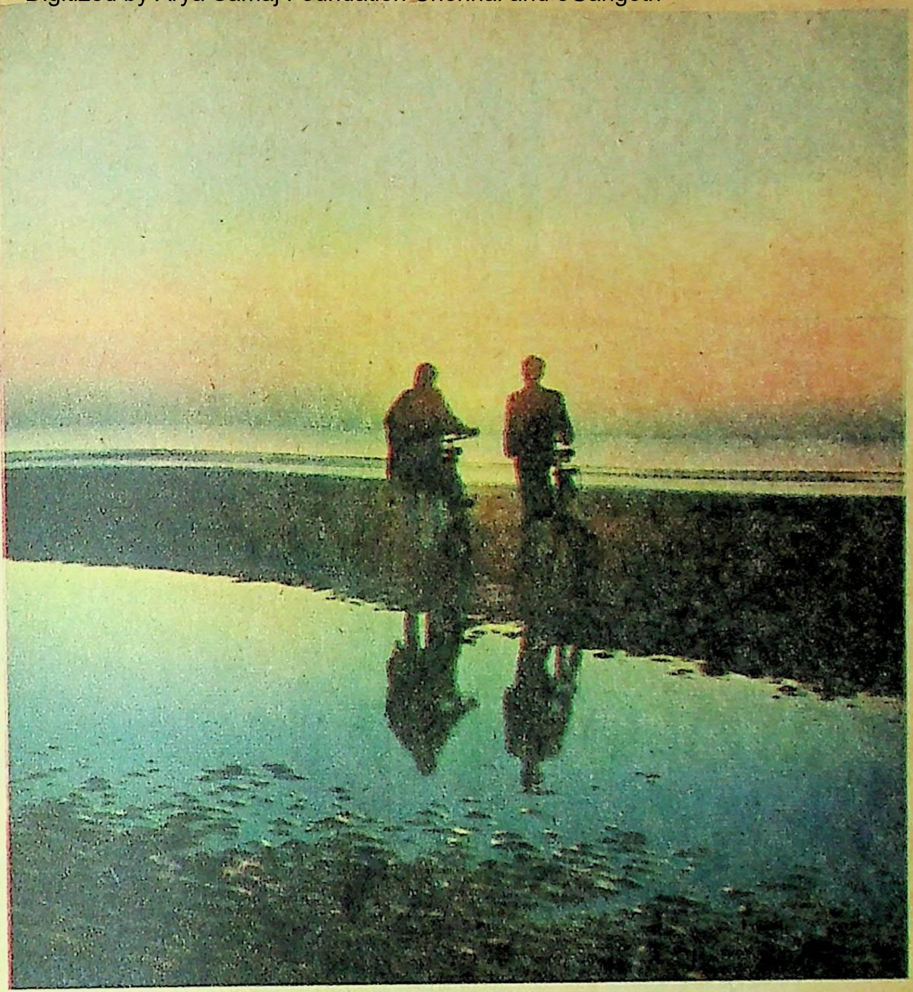

• वी. पी. दत्ता

बांस लगा कर उठा ले चलना कोई आसान काम नहीं, वह हांफ जाता है. पर यह उतना बुरा नहीं लगता जितना सर पर हड्डी की गठरी ले कर चलना.

कुछ ही दिन हुए, वह हड्डियों का पिंजर सर पर लादे शहर जा रहा था. सोमारु अहीर अंगोछे से अपनी नाक दबाये बगल से गुजर गया था. शायद हड्डी की बदबू उसे असह्य लग रही थी या कि निमचन का सामीप्य उसे काट खाये जा रहा था. उसे अपने आप से घृणा हो आयी थी–– उस दिन. सर पर हड्डी देख कर कोई उसके पास नहीं ठहरता. परिचित भी मुंह फेर कर जल्दीबाजी में निकल जाना चाहते हैं, न वह किसी से बतिया सकता है और न ही कोई थोड़ी देर उसके नजदीक रुक सकता है.

—क्यों सोमारु दादा, यह छान–पगहा लिये इधर कहां जा रहे हो? तुम्हारी भैंसें तो पहाड़ पर रहती हैं न? वह अपनी उत्सुकता पर काबू नहीं रख पाया था.

—जले पर नमक छिड़कना ठीक नहीं निमचन. तुम्हें पता नहीं है कि मेरी बीसों भैंसें पहाड़ पर ही स्वाहा हो गयीं इस बीमारी में. जब भैंसें ही नहीं रहीं तो छान-पगहा रख कर क्या होगा. इन्हें गंगा मईया को चढ़ाने जा रहा हूं. यह कहते हुए उसकी आंखें डबडबा आयी थीं.

अपनी जिंदगी में उसने इतनी भयंकर महामारी कभी नहीं देखी. उसने थाने के पास लोगों को बतियाते सुना है. वे कह रहे थे कि शहर के बाहर उस कुंए पर पत्थर के जो दो खंभे हैं उनमें भी चेचक के दाने निकल आये हैं. पत्थर को चेचक निकल गया तब बाकी ही क्या रहा? काली माई ने महदेव बो को सपना दिया है कि गांव श्मशान बन कर रहेगा. पंडित जी ने शांति का जो तरीका बतलाया है, वह है तो बड़ा महंगा, लेकिन सुना है, मालिक नौ मन का पुआ बनवायेंगे. सब पुए जमीन में गड्ढ़ा खोद कर गाड़ दिये जायेंगे और उनके ऊपर घी का हवन होगा.

निमचन को यह ओझाई और झाड़-फूंक एक धोखा लगता है. उसका बड़ा लड़का बीमार था. नागा बाबा ने कहा था कि जीन महाराज की दुआ से वह ठीक हो जायेगा. उन्होंने खूब झाड़ा-फूंका. जीन महाराज को मुर्गा चढ़ाया और दारू की बोतल भी ढरकायी. लेकिन जाने वाला चला गया. रजपतिया कई दिनों तक सुबकती रही थी. नागा बाबा का सारा जंतर-मंतर धरा का धरा रह गया था. लेकिन ओझाई की तरह यह सुई-दवाई भी एक लफड़ा ही है क्या?

बहुत सोर्स-पैरवी और दौड़-धूप के बाद बी. डी. ओ. साहब ने डाक्टरों के साथ गांव का दौरा किया था. गांव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीठ का दर्द ?

आयोडेक्स मलिए, जो पीड़ा हरे, अच्छा करे

दूसरे बाम पीड़ा से आराम भले पहुंचाएं, आयोडेक्स आराम पहुंचाने के साथ साथ अच्छा भी करती है. क्योंकि इसमें आयोडीन मिली है.

जोड़ों और मांसपेशियों की पीड़ा के लिए एकमात्र बाम—आयोडेक्स.

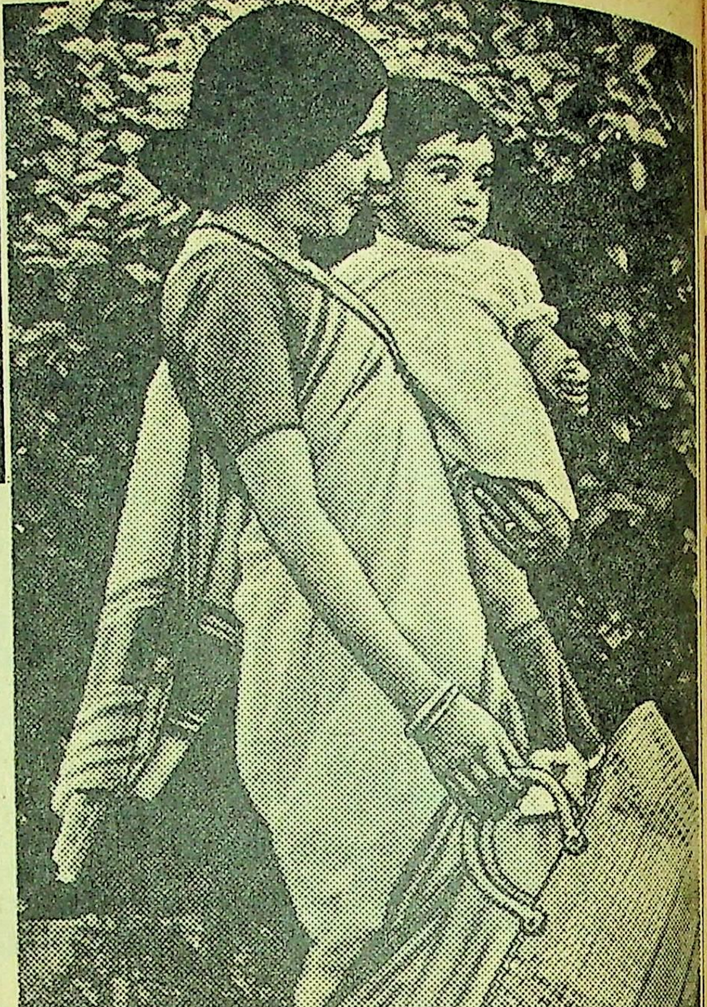

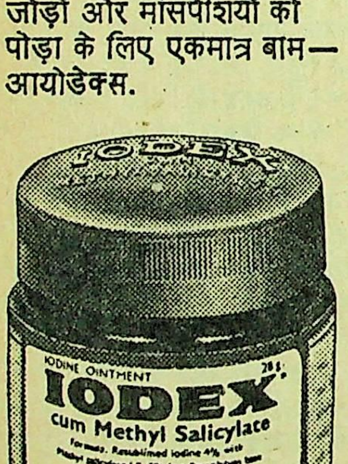

आयोडेक्स मलिए-अपने काम पर चलिए

लिंटास-IODEX. 1-140

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सारे मवेशी जब सुबह आठ बजे काली माई के सामने वाले परती छवर पर जुट आये, तो डाक्टरों ने उन्हें सुई देना शुरू किया था.सुई देते-देते उनके हाथों की नसें तन आयी थीं. वे जल्दी-जल्दी सुई धोंप रहे थे. कई बार तो दवाई बाहर जमीन पर गिर कर पसर गयी थी. उसकी बछिया को भी सुई दी गयी थी.

लेकिन बावजूद सुई–दवाई के उनमें से अधिकांश मवेशी नहीं बच पाये. और कल ही एक सरकारी कर्मचारी दीवालों पर जगह-जगह लिख गया है कि चेचक की बड़ी गोटी की खबर देने वाले को सौ रुपये दिये जायेंगे?

वह हुक्के को खाट के सहारे खड़ा कर के जम्हाई लेता है.एक गिद्ध इमली की डाल झकझोरते हुए ऊपर उड़ जाता है. दूसरे गिद्ध भी अपने डेनें फड़फड़ाने लगते हैं. उनकी बीटों से सारा पेड़ चितकबरा हो गया है. ये गिद्ध भी अजीब जीव हैं. ये जब तक कुछ मरा नहीं देख लेते, तब तक दिखलायी नहीं देते.इतना धीरज कोई और जीव नहीं रख सकता. ये मवेशियां के मरने तक न जाने कहां छिपे इंतजार करते रहते हैं.

और यह गौरैया भी एक चिड़िया है जो हमारे घरों में ही मौज से रह लेती है. छप्पर में उनके घोसले अब भी मौजूद हैं. हालांकि निमचन अपने हाथों से उन्हें कई बार उजाड़ चुका है. एक गौरैया उस टूटे आईने में बार-बार चोंच मार रही है जिसे रजपतिया ने दीवाल पोतते वक्त बड़ी खूबी से चिपका दिया था.

वह आईने तक जाता है. आईने में इमली का पेड़ हिलता नजर आता है. शायद ये घिनौने गिद्ध पंख फड़फड़ा रहे हैं. एक गिद्ध छप्पर पर आ बैठता है. उसे पंडित जी की बात याद आती है. उन्होंने कहा था कि जिस घर पर गिद्ध बैठ जाये उसमें रहना अच्छा नहीं होता. अब भला बना – बनाया घर छोड़ना या उसे तोड़ कर नया बनाना क्या संभव है ? वह भी तब जब रोज ही गांव पर गिद्ध मंडराते रहते हैं, कुत्ते हड्डियां तोड़ते दौड़ते-फिरते हैं और सारा गांव कब्रिस्तान की तरह मृत मवेशियों से पटा पड़ा है.

पुआल पर सुलाया हुआ उसका तीन साल का लड़का मूत कर रोने लगता है. रजपतिया उसे गोद में ले कर पुचकारती है. उसका रोना बंद नहीं होता. वह अपना स्तन निकाल कर उसके मुंह में ठूंस देती है. वह चुप हो जाता है.

—इस तरह बार-बार मुंह क्या देख रहे हो? पंचों ने तुम्हें बुलाया है. आखिर कब जाओगे? वह बच्चे का सर सहलाती है.

—आज कहीं जाने का मन नहीं करता. लेकिन पंचों का बुलावा है तो जाना ही पड़ेगा. और वह अपना अंगोछा सर पर लपेटते हुए बाहर निकल जाता है.

काली माई का स्थान खचाखच भरा है. लड़के तमाशबीन की तरह खुश नजर आते हैं. चबूतरे पर मालिक के साथ पंच लोग बैठे हैं. निमचन की आंखें मालिक से टकराती हैं.मालिक मूंछ पर ताव दे कर गरदन हिलाता है. भीड़ के बीच में बैठे तीन ओझे पचरा गा रहे हैं. वे स्प्रिंग वाले सांपों की तरह झूम रहे हैं. रह-रह कर वे अपने हाथों की सरसों थाली में मारते हैं. उनसे कुछ हट कर एक फंदा नीम की मोटी डाली से लटक रहा है.

अचानक एक ओझा चिहुक कर गंभीर हो जाता है. उसकी निगाहें मालिक से मिल कर नीचे झुक जाती हैं. वह अपनी भारी आवाज में भीड़ को शांत हो जाने का आदेश देता है.

बच्चों की उछल कूद थम जाती है. वह ऐलान करता है कि सभी भूत और सायर थाली में जुट आये हैं.इस महामारी का कारण निमचन चमार है. उसने अपना गड़ा भूत उखाड़ दिया है. गांव के डीह-डहवार नाराज हो गये हैं. ऐसी हालत में तो हाहाकार मच जाना चाहिए. लेकिन धरती पर पुण्य अभी बाकी है. यह पृथ्वी तो धरम-करम पर ही टिकी है. पंच बुदबुदाने लगे हैं. भीड़ मुखर हो उठी है.

भीड़ को चीरती हुई मालिक की आवाज उभरती है—भाइयो, निमचन के चलते सारा गांव तबाह हो गया है. उसने हमें बर्बाद कर के रख दिया. आखिर सच बात सामने आ ही गयी. इसने धंधा चलाने के लिए अपना गड़ा भूत उखाड़ दिया है. हुआ क्या, हम सभी जानते हैं. पंचायत यह हुक्म देती है कि निमचन को झूल रहे फंदे में उल्टा लटका दिया जाय. किसीको एतराज है?... तो किसी को नहीं.

भीड़ शांत रहती है. निमचन सर के बल फंदे से लटका दिया जाता है. उसका चीखना-चिल्लाना कुछ काम नहीं आता है. उसकी आवाज भीड़ में खो कर रह जाती है. भीड़ छंटने लगी है. उसकी बीबी चिल्लाती आती है—मेरी भी बछिया मर गयी है — उसे किसने मारा है मालिक? वह काली माई के चबूतरे पर सर पटकती है. मालिक जा चुके होते हैं.

निमचन का चेहरा लाल हो गया है.उसकी आंखों में खून उतर आया है. वह कुछ भी बोल नहीं पाता. नीम के ऊपर चारों ओर गिद्ध मंड़राने लगे हैं. □□□

सिकरिया, सासाराम (बिहार)

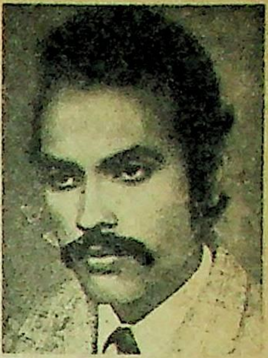

नर्मदेश्वर (जन्म : १५ फरवरी, १९४६) ने अंग्रेजी में एम. ए. किया है पत्र-पत्रिकाओं में छिटपुट रचनाएं प्रकाशित. संप्रति अधिवक्ता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वापसी • मंदा पांडे

घोंघा कहीं का! काली सूरत. . . सामने के दांत टूटे हुए. . .सफाचट, गंजा सिर . . .फुटबाल के मैदान जैसा . . . जब देखो चला आता है. लेकिन दफ्तर जो उस का ठहरा! कैसी घिनौनी नजर से देखता है! कल मेरी साड़ी क्या जरा-सी ऊंची हो गयी. . . कमबख्त कुत्ते की तरह लार टपकाने लगा! . . .

आखिर एक-न-एक दिन तो इस बला को झेलना ही था. वह छोटा-सा कैबिन, जिसमें कल मैं उसकी पी. ए. बन कर बैठती थी, आज खाली पिंजरे की तरह पड़ा है और पंछी पर फड़फड़ाता हुआ उड़ गया. . .

कमबख्त. . . एक दिन कहता था— तुम एलिजाबेथ टेलर लगती हो. . . और कहते-कहते मेरे कंधे तक हाथ बढ़ाने लगा था.

उफ! . . . कितनी घुटन थी! हमेशा अपनी बीवी की बुराई करता था मेरे सामने. छि:! ये मर्द कितने घिनौने होते हैं! एक औरत को पाने के लिए दूसरी को कितना गिरा देते हैं! लेकिन आज मैंने उसे गिरा दिया है.

आज तमाम दुनिया मेरे लिए सुहावनी बन गयी है. बस-स्टॉप की लंबी-लंबी कतारें. . . जिनमें मैं भी अभी-अभी तक शामिल थी, देख कर आज मुझे जरा भी खीज नहीं हुई. घंटा भर खड़ी रही, मगर फिर भी आज मेरे पैरों में या मेरी कमर में दर्द नहीं हुआ, जो रोजाना मुझे एक मरीज की तरह घर की ओर खींच कर ले जाता था. . .और ऐसे महसूस होता था कि मेरी जिंदगी का एक-एक दिन ये बस की कतारें नोच लेंगी और मुझे मौत की ओर घसीट ले जायेंगी. मगर यह सब आज नहीं हुआ. होगा भी कैसे? . . .

आज तो मेरे पर निकल आये हैं. . . दोनों बाजुओं में दो सफेद पर. . . इतने खूबसूरत! और मैं उनके सहारे उड़ रही हूं. . .

★ ★

आज बस में कंडक्टर और एक यात्री के बीच जो झगड़ा हुआ, उसमें मुझे और ही आनंद आया. अगर मैं आज इस दशा में न होती तो मुझे समूची मनुष्य जाति से घृणा-सी हो जाती. उनके साफ-सुथरे और सजीले लिबासों में से झांकने वाली नग्नता तथा उनके कमीनेपन को देख कर मेरा दिल रो उठता. अंदर-ही-अंदर. लेकिन, आज मैं उन झगड़ों के मजे ले रही थी. बड़े चाव से मैं सब तमाशा देख रही थी. उस झंझट में कंडक्टर ने मेरे दस पैसे भी वापस नहीं किये.

घर की ओर मुड़ने वाली गली में मैंने प्रवेश किया और मेरे पैरों में पहिये लग गये. मैं दौड़ने लगी. जंजीरें मैंने तोड़ दी थीं, क्योंकि मैं उस शिकंजे से बचना चाहती थी. दूर भागना चाहती थी. जल्द-से-जल्द.

उस मनहूस आदमी के. . . यानी बॉस के टेबल पर मैंने इस्तीफा यों फेंक दिया मानो मैं बॉस थी और वह मेरा पी. ए. इस्तीफा हाथ में उठाये हुए उसने दोबारा मुझसे पूछा, क्या मैं सचमुच इस्तीफा दे रही हूं या दो दिन बाद मेरा इरादा बदल जायेगा? मैंने तैश में आ कर कह दिया कि मेरा इरादा पक्का है. . . मैं इस्तीफा वापस नहीं लूंगी. . . कभी नहीं, कतई नहीं.

उसके चेहरे की निराशा देख कर उस पर एक साथ तिरस्कारपूर्ण तरस आया था. कमीना कहीं का! शिकार हाथ से छूट जाने पर जैसे उसका दिल टूटा जा रहा था.

★ ★

पांच बजे ऑफिस से निकली तो सब-की-सब लड़कियां मुझे ईर्ष्या भरी नजरों से देख रही थीं. उन सब में अब मैं ही एक खुशनसीब थी, जिसे दस से पांच तक पिसना नहीं पड़ेगा. . . न उस अंधेरे कैबिन में जाना पड़ेगा. न एक गंजे. . . . मोटे. . .काले-कलूटे, बदसूरत आदमी को विश करना पड़ेगा. . . . जिसकी शक्ल देखते ही नफरत होती है. . . मुझे कहना चाहिए, होती थी.

लाख-लाख शुक्र है कि अब उसके दर्शन नहीं होंगे, न ही पल-पल उसकी मूर्खता भरी बातों के आगे सर झुकाना पड़ेगा. खैर. . . अब मैं उसके बारे में क्यों सोचूं?

अब तो मुझे अपनी चिंता होनी चाहिए. बिगड़ी को बनाना जो है! मेरी नौकरी को ले कर हम-दोनों पति-पत्नी में जो संघर्ष इन दिनों चल रहा है, उसकी वजह से एक तनाव पूरे घर को घेरे रहता है. समझ में नहीं आता उसे कैसे कम करें. सब धागे बिखरने लगे हैं. कहीं-कहीं पर तो इतने महीने हो गये हैं कि कब टूट जायेंगे, इसका कुछ भरोसा नहीं.

★ ★

बच्चे को सुलाने के बाद मैं लेटी ही थी कि उनके हाथ का स्पर्श अपने शरीर पर अनुभव किया. उसी तरह गर्म और नरम हथेली. . . जिसका पहला स्पर्श पहली बार मेरे जीवन में एक नया संचार ले कर आया था. . . वह स्पर्श. . . जिससे मेरे शरीर के रोम-रोम में सिहरन-सी पैदा हो जाती थी. आज वही केवल एक गर्म हाथ बन कर मेरे शरीर पर जाने कहां-से-कहां विचर रहा था. . . और मैं एक जिंदा औरत. . . एक ठंडी लाश की तरह. . . उस काले, घिनौने, घोंघे को भूलने की कोशिश कर रही थी. उनके हाथ के पीछे एक छाया मंडरा रही थी. . . किसी काले, लंबे-लंबे बालों वाले वासनापूर्ण हाथ की. शायद यह हाथ उसी घिनौनी छाया का था, जिसे मैं भूलना चाहती थी. यह छाया न जाने क्यों मेरी रातों को भी मुझसे छीने जा रही थी.

—सो गयीं क्या?

—उंहूं!

—फिर. . . क्या बात क्या है?

—यूं ही. कुछ मन नहीं कर रहा है.

—बहुत थक गयी हो क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—हां. बहुत. . . अब ऊब-सी गयी हूं.

इतना ही कह पायी कि वह चीख उठे—हां-हां,क्यों नहीं! अब तुम मुझसे ऊब गयी हो! मैं सब समझता हूं. मर्दों की तरह काम करती हो न! कमाती हो, इसलिए उनकी सभी आदतें भी तुम में आनी ही चाहिए. . . तुम्हें भी परिवर्तन चाहिए. . .

—यह तुम क्या कह रहे हो!

—मैं देख रहा हूं. कुछ दिनों से . . . तुम बदली-बदली सी लग रही हो. . . क्या कोई और. . .

—भगवान के लिए बस करो. मुझे समझने की कोशिश करो. . .

और यह कहते-कहते उस अंधेरे में मेरी आंखें डबडबा आयीं. तकिया गीला होता रहा. . . और. . . रात कुंवारी-की-कुंवारी ही बीत गयी.

● ★

सुबह उठी तो निश्चय कर लिया था कि अपने पति के लिए दुनिया की वह हर चीज ठुकरा दूंगी, जो मेरे रास्ते में आयेगी, चाहे वह मेरी नौकरी हो या मेरी कोख की संतान.

जीते-जागते अपने प्यार की हत्या होते मैं देख रही थी. हमेशा यही डर बना रहता. . . . कहीं यह दरार बढ़ती न जाये. कहीं उस खाड़ी में दो प्यार भरे दिल चकनाचूर हो कर अदृश्य न हो जायें. कहीं यह दरार हम दोनों के बीच एक दीवार बन कर हमें एक-दूसरे से अलग न कर दे.

दिन भर यही सोचती रही. . .और टाइपिंग में सैकड़ों गलतियां करती रही. . . फिर क्या?. . . उस मनहूस की डांट-डपट और जहरीली नजर तीर के समान मेरे दिल में घुस कर मेरी बोटी-बोटी काटने लगी. उफ! चार पैसे के लिए यह सब सहना जरूरी है? ऐसी नौकरी हरगिज नहीं करूंगी! और आज ही इस्तीफा दे दूंगी. हम दोनों के बीच बढ़ती हुई दरार को नौकरी से त्यागपत्र से भर दूंगी. इस जानलेवा संघर्ष का अंत कर दूंगी.

अब नये सिर से जिंदगी शुरू करनी है. अब चौबीस घंटे तुम्हारी ही खातिरदारी करूंगी. . .

आज सब कह दूंगी. हां. ऐसे तो पहले कहा नहीं था. कहती भी कैसे? मुंह फुलाये जो रहते हैं. एकदम खबर दे कर चकित कर दूंगी. खुश हो जायेंगे. आलू की कचौरियां बहुत पसंद हैं उन्हें. आयेंगे तो आज जी भर कर खिलाऊंगी.

★ ★

लेकिन मेरे पूरे मनसूबों पर पानी फिर गया. मैंने घर में कदम रखा तो वह पहले से ही घर पर थे. खिड़की से बाहर झांक रहे थे. मैंने जोर से सैंडल की आवाज की ताकि वह घूम कर देखें. लेकिन वह मेरे पास फटके भी नहीं. जाने कहां खो गये हैं!. . .

मैं सीधी रसोई में चली गयी. एक स्टोव पर चाय चढ़ा दी. दूसरे पर कचौरियां तैयार कीं. मगर इतने में न कोई रसोई में आया, न किसी ने बात की.

—अरे, तुम्हारी तबीयत खराब है क्या? सामने टी-पॉट पर ट्रे रख कर मैंने उनके चेहरे की तरफ देख कर पूछा. उनका मुंह कुछ उतरा-सा था. और मैं यहां इतनी उत्तेजित थी, अपनी खबर सुनाने के लिए! लेकिन इन्होंने खाने में चुपचाप ऐसा मन लगाया जैसे कई दिनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंदा पांडे पिछले दस-बारह साल से आकाशवाणी में हैं. ललित कलाओं में उन्हें विशेष रुचि है. गायन, नृत्य, चित्रकला, लेखन—प्रत्येक क्षेत्र में इनका दखल है. संप्रति आकाशवाणी में कार्यक्रम-अधिकारी.

से भूखे हों. . . देखते-देखते मेरी आंखें भर आयीं.

—कैसी बनी हूं? . . . . देखो अब तुम्हें कोई तकलीफ उठानी नहीं होगी. समझे? खूब आराम रहेगा. . .

उन्होंने निगाहें उठाये बिना ही पूछा— मतलब?

मैंने मुलायम स्वर में कहा—अब मैं तुम्हें अपने प्यार और सेवा से सराबोर कर दूंगी. सारी दुनिया को ठुकरा कर तुम्हारी लौंडी बन कर रहना शायद मेरी खुशनसीबी होगी. . .

लेकिन उनके चेहरे पर वही उदासी, वही मायूसी. . . और वही अंधकार. जैसे कोई भावना उनको प्रभावित या उत्तेजित कर ही नहीं सकती. खाना अधूरा छोड़ कर उठ खड़े हुए. मेरा उल्लास, मेरा आनंद, गुब्बारे से हवा की तरह निकल गया. मैं उन्हें सर लटकाये देखती रही.

एक हारे हुए सिपाही की तरह सोचने लगी, कितनी अभागिन हूं! कल रात पति को सुख न दे सकी, जो उसका अधिकार होता है. क्या वह अब मुझे कभी माफ न करेंगे? ऐसे ही मुझसे खिंचे रहेंगे? खुद तड़पते, मुझे भी तड़पाते रहेंगे? क्या सारी जिंदगी इसी कशमकश में गुजरती रहेगी? क्या कहूं उनसे? अपनी ओर से क्या सफाई पेश करूं? गलतफहमी की दीवार कैसे हटाऊं?

दिन भर की परेशानियां, सारी मजबूरियां मुझसे मेरी रातों का सुख-चैन छीन ले जाती हैं. लेकिन अब ऐसा नहीं होगा. मैंने सब का अंत कर दिया है. अब मैं केवल तुम्हारी हूं और तुम्हारे लिए ही रहूंगी. . . थाम लो मुझे अपने बाजुओं में. अब मैं और बरदाश्त नहीं कर पाऊंगी. . .

क्या यह सब मैं उनसे कह दूं? अभी कह दूं? नहीं-नहीं, अभी नहीं. . .तो फिर कब? . . .

★ ★

रात फिर आ गयी. अंधेरा फिर छा गया. और. . . और आज मैं जिंदा लाश नहीं थी. नयी-नवेली दुल्हन की तरह मांग में सिंदूर भरे हुए थी. मैं अपनी मंजिल की ओर बढ़ रही थी. वह मेरे पास लेटे. बिल्कुल शांत, गंभीर. . . न जाने क्या सोच रहे थे. मेरे हाथों का स्पर्श पा कर भी उनमें हलचल पैदा नहीं हुई. सोच रही थी कि लाज-मर्यादा के सब बंधन तोड़ कर पिछली रात [illegible] लेकिन ऐसा न हो सका. रात काफी बढ़ चुकी थी. मेरी चिंता भय में परि होने लगी.

—आखिर बात क्या है? परेशान क्यों हो?

—कुछ नहीं.

—क्या मुझे कभी माफ नहीं करोगे?

—किसलिए?

—मैं वास्तव में बड़ी लज्जित हूं. जो हुआ, भूल जाओ. क्या एक रात की भूल का मुझे सदा के दंड भोगना पड़ेगा? और यह कहते-कहते मेरे थर हुए हाथ उनके हाथों पर जा पहुंचे. लेकिन उन कुछ भी असर नहीं हुआ. वह उसी तरह गंभीर, शांत चिंतामग्न पड़े रहे.

—तुम्हें मेरी कसम! मुझे माफ कर दो. फिर कभी नहीं होगा. भूल जाओ, जो हुआ.

—ऐसी कोई बात नहीं है. मानसिक वेदना के कारण ऐसा कभी-कभी हो जाता है. आज मेरी भी स्थिति है, जो शायद कल तुम्हारी रही होगी. एक-न-एक दिन तो तुम्हें बताना ही पड़ेगा. . . . मुझे नौकरी से मुक्त कर दिया गया है. मुझे अपनी ईमान का यही फल मिला है. मैं रिश्वतखोरी का अंत चाहता था. . . और रिश्वतखोरों ने मेरी रोटी का अंत कर दिया! मुझे ही तबाह कर दिया. शायद मु भी चले. सुनती हो? . . .एक ईमानदार, नेक और नाह को यह सजा मिली. अपना फर्ज निभाने का हश्र हुआ. . .

मैं अवाक् रह गयी. नियति कितना क्रूर खिल कर रही थी हमारे साथ! एक तरफ मैं इस्तीफा दे निश्चित होना चाहती थी, और दूसरी तरफ यह कसूर के दंड भोग रहे हैं. . .

—तुम चिंता क्यों करते हो? मैं तुम्हारी पत्नी आखिर जीत एक-न-एक दिन तुम्हारी ही होगी. बताया तक नहीं? क्या मैं तुम्हारे लिए इतनी बेगान चुकी हूं? कुछ सोचते हुए मैंने कहा—न सही, जब सब ठीक नहीं हो जाता, हम केवल मेरी तनख्वा गुजारा कर लेंगे. . .

और फिर वही काला, घिनौना, घोंघे जैसा अपने टूटे हुए दांत लिये मेरे सामने मंडराने लगा. . .

—हि : हि :! बाई, तुम आ गयीं! मैं न कह सोच लो, कहीं तुम्हारा इरादा बदल न जाये! मैं तो तुम्हारा अपना ही हूं! . . .

★ ★

तकिया उसी तरह गीला होता रहा. रात बीत गयी. पता नहीं यह रात कुंवारी थी या सु लेकिन मैं जरूर दूसरे दिन वही थी. . .पर-कटे की तरह पिंजरे में लौट आयी थी. . . उसी तरह बॉस के दरवाजे पर खड़ी कह रही थी— मे इन सर. . .?

फ्लैट नं. ५, स्नेहल बाग,
सहजीवन नगर, पर्वति, पूना-९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतियां

उपन्यास

[श]वयात्रा

[लेख]क : [?]वदेश भारती
[?]बरा प्रकाशन, कलकत्ता-२६

[बे]कारी, अकेलापन, अ-प्रेम, संत्रास, युवा-आक्रोश. . . ; [क]भी न खत्म होने वाली शवयात्रा.' [य]ह अधूरा वाक्य उपन्यास खोलते [ही] सामने आ जाता है. तबियत [हो]ती है, इसमें कुछ शब्द और जोड़ [दि]ये जायें— अधूरापन, 'लॉ ऐंड [आ]र्डर' के नाम पर फैली अव्यवस्था, [कुं]ठा, पीढ़ियों का टकराव, दिशा-[हीन]ता, अर्थहीन आधुनिकता, राज-[नी]ति, कलकत्ता और आत्महत्या. [श]ायद इस तरह वह वाक्य पूरा [हो] सके और साथ ही यह उपन्यास [भ]ी. सारा उपन्यास एक रील है [जो] इस वाक्य को कई खंडों में [पू]रा करती है.

उपन्यास एक शवयात्रा से [प्रा]रंभ होता है और कई शव-[या]त्राओं की तैयारी पर समाप्त [हो] जाता है. यह उपन्यास भार-[ती]य, विशेष रूप से कलकत्ता की, [म]ानसिकता का एक महत्वपूर्ण [द]स्तावेज है. यह बंगाल या [क]लकत्ता की 'केस हिस्ट्री' है जो [डि]माई साइज के ६३ पृष्ठों में पूरी [हो] गयी है. मर्ज सामने है, उसके [का]रण भी स्पष्ट हैं. लेकिन इलाज [को]ई नहीं या यह भी कह सकते [हैं] कि इलाज के लिए आवश्यक [उ]पकरणों और व्यवस्था की कमी [है.] ऑपरेशन टेबल पर मरीज का [सा]रा शरीर उधड़ा पड़ा है, लेकिन [उ]सकी सिलाई के लिए उपयुक्त '[धा]ग' नहीं है, गैस सिलेंडर तो हैं [ले]किन उसे जोड़ने वाली 'कीप' [न]हीं है. डॉक्टरों ने जो दस्ताने [हा]थों पर चढ़ा रखे हैं, वे इतने [गं]दे हैं कि उनके छूने से नये रोगों [की] संभावना पैदा हो जाती है. [म]तलब यह कि सब कुछ अधूरा [औ]र खतरा बढ़ाने वाला ही है.

हर जगह एक भीड़ है और इस भीड़ का हर आदमी अकेला है, हर आदमी पराया है, हर आदमी एक-दूसरे से निर्लिप्त और एक दूसरे के प्रति शंकालु है. हर आदमी एक-दूसरे से कतरा कर चलना चाहता है और टकरा कर चलता है और यह टकराहट न अनजाने की है और न जानी-बूझी. बस है, तो है. परिस्थितियां ही कुछ ऐसी बन गयी हैं कि वह न कतराने से बच सकता है और न टकराने से ही. यह स्थिति कुछ अजीब-सी अवश्य है, लेकिन इसे नकारा नहीं जा सकता.

वे दोनों एक ट्राम में एक-दूसरे से कतराते रहे थे और ट्राम में आग लग जाने के बाद एक-दूसरे से टकरा गये थे. बस यहीं से कहानी प्रारंभ हो गयी है और एक लड़की की आत्महत्या से गुजर कर श्मशान, पुलिस स्टेशन, गोलियों, आंसू गैस, दिशा और दूरी की सीमाओं से आगे निकल गयी है.

उस लड़की ने आत्महत्या इसलिए की, क्योंकि वह सिर्फ देह के स्तरों पर नहीं जीना चाहती थी. उसका धनी पिता उसके शरीर को यंत्रणाएं देता था और उसका बेसहारा प्रेमी उसके सिर्फ शरीर में सहारा ढूंढ़ता था, शरीर को सुख देता था. लेकिन दोनों ही उसकी मानसिकता से आंखें मूंदे रहना चाहते थे. दोनों ही के सामने प्रेम नहीं था, सिर्फ तर्क थे अपने-अपने बचाव के.

पूरी कहानी में बस यही एक दायरा है जो कई टुकड़ों में बंटा हुआ है. उन टुकड़ों के बीच के फासले में और भी कई दायरे जुड़ गये हैं और उन्हीं जुड़े हुए दायरों में कलकत्ते की सारी 'डिस्टर्ब्ड लाइफ', सारी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और विद्रोह की स्थितियां सिमट आयी हैं और लेखक के शब्दों में इन्हीं टूटते-बनते दायरों में आदमी 'पागल घोड़े' की तरह दौड़ता रहता है.

□□

युगे-युगे प्रेम

लेखिका : आशापूर्णा देवी
अनुवादक : हंसकुमार तिवारी
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर (प्रा.) लि., हीराबाग, पो. बॉ. ३६२२, बंबई-४

सामाजिक कथाओं के नाम पर परिकथाएं बुनने की परंपरा बंगला में बहुत पुरानी है. इन उपन्यासों में आप हर चीज पायेंगे— प्रेम, घृणा, करुणा, परिवार और उसके पात्र, गली-मोहल्ले, बाग, अमराइयां वगैरा— जो यह भ्रम जरूर देंगी कि जो कुछ आपके सामने आ रहा है, वह यथार्थ-परक है. लेकिन अ-यथार्थ या अति-यथार्थ शायद उतनी बुरी चीज नहीं है और न ही उतनी भ्रामक भी जितनी अधूरा या मात्र दिखाई देने वाला यथार्थ हो सकता है.

आशापूर्णा देवी का उपन्यास **'युगे-युगे प्रेम'** भी यह भ्रम तो देता है कि इसके पात्र इसी दुनिया के पात्र हैं लेकिन उनकी चिंताएं— यानी लेखिका की चिंताएं— उन लोगों की चिंताएं हैं जिनके लिए प्रेम ही सर्वोपरि है, जैसे जिंदगी में और कुछ महत्वपूर्ण है ही नहीं. इन पात्रों के तनाव और उन तनावों से संबद्ध त्रासदी— पति-पत्नी के संबंधों का टूटना— रोजमर्रा के संघर्षों का परिणाम कतई नहीं है. पुस्तक के फ्लैप पर आशापूर्णा देवी का विज्ञापन इन शब्दों में किया गया है : 'नारी जीवन की मर्मांतक पीड़ा को शब्दों में उतारने वाली बंगला की मूर्धन्य लेखिका.' और उपन्यास : 'मानव-मन की छटपटाहट और व्यर्थ के मानाभिमान का हृदय-स्पर्शी अंकन!' देखना यह है कि बंगला के 'लोकप्रिय' और 'मूर्धन्य' कथाकार मानव की जिजीविषा, उसके रोजमर्रा के संघर्षों, उसके अपमानबोध और आंतरिक-बाह्य तनावों तथा उसके लगातार टूटते रहने को कब अपनी रचनाओं का विषय बनायेंगे.

□ त्रि. जे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिक्रमा • गौरीशंकर कपूर

हमारी तमाम बौखलाहट की वजह वह शराब की बोतल थी, जिसमें हमें किसी नन्हें-से जीव का एहसास हुआ था. बस क्या था, हमारी उन तमाम महत्वाकांक्षाओं को पर लग गये, जो सदा हमारे जेहन में छायी रहती थीं. यह खासकर इस वजह से भी था कि हम तीनों ने आपस में चंदा करके उस बोतल का जुगाड़ किया था.

अपनी आदत के अनुसार किशन ने जरूर हमें एक बार चेतावनी देने की कोशिश की थी—अबे, यह ब्लैकमेलिंग तुमसे हो ही नहीं सकेगी. ब्लैकमेलर दूसरे ही होते हैं!

लेकिन जिस सुनहरे भविष्य की कल्पना हमने की थी, उसका आकर्षण इस कदर दुर्दम्य था कि किशन जैसा निराशावादी भी उसमें बह गया.

—क्यों नहीं हो सकेगी? बोतल को मैंने ध्यान से एक तरफ रखते हुए जोश से कहा था. ब्लैकमेलर भी तो तेरे-मेरे जैसे इनसान ही होते हैं! मैंने प्रकाश की तरफ देखा था.

कुछ क्षण सोच कर प्रकाश ने कहा—राजा की बात ठीक है. फिर कुछ और रुक कर उसने कहा था—पचास हजार मांगेंगे इस बोतल के बदले में.

—पचास हजार! मेरा दिल यकायक उछल कर हलक तक आ गया था.

—क्यों, नहीं देगा? . . हेल्थ डिपार्टमेंट में रिपोर्ट कर दें तो उसका लाखों का नुकसान हो जायेगा.

प्रकाश ने अपनी बात इस पुख्तगी से रखी थी कि मुझे और किशन को उससे सहमत होना ही पड़ा.

मैं उन दिनों लगभग बेकार था. इधर-उधर किसी पत्रिका में एकाध लेख-कहानी वगैरा छपवा कर किसी तरह अपना गुजारा कर रहा था. नाटे कद का सांवला किशन एक प्रकाशन संस्था में सेल्समैन था और पतले-दुबले, इकहरे प्रकाश की घड़ीसाजी की एक छोटी-सी दूकान थी. तीनों की आमदनी लगभग एक जैसी थी. किसी-किसी इतवार को हम तीनों मिल-बांट कर शराब की बोतल का इंतजाम कर लेते थे. शराब पी कर हम ऊंची-ऊंची आवाज में गजलें गाते और सरकार के हवाई समाजवाद पर लंबी-लंबी बहसें करते.

ऐसी ही एक शाम को जब हम शराब की बोतल ला कर पीने बैठे तो किशन की निगाह उसके अंदर तैरती किसी चीज पर अटक गयी. उसने शौकिया तौर पर कुछ बायॉलोजी पढ़ी हुई थी. प्रकाश बोतल खोलने ही वाला था कि किशन ने चिल्ला कर कहा—प्रकाश, इसके अंदर कुछ है!

प्रकाश ने लापरवाही से जवाब दिया—हां, इसके अंदर कुछ है! और बोतल के ढक्कन पर जोर-आजमाइश का पोज बनाया.

झपट कर किशन ने बोतल उसके हाथ से छीन ली और रोशनी के सामने रख कर उसे परखने लगा.

—कोई खास चीज है? मैंने उसके चेहरे को पढ़ते हुए पूछा.

—मुझे लगता है, इसमें कोई नन्हा जा...
उसने किसी नतीजे पर पहुंचते हुए कहा.

—नन्हा जानवर ही होगा. बत्तीस रुपये...
ह्वेल मछली तो भरने से रहे! प्रकाश ने कहा औ...
के लिए हाथ बढ़ाया.

किशन ने बोतल उसकी पहुंच से परे करते...
इसमें वाकई कुछ है. यह बोतल हमें हेल्थ...
को दे देनी चाहिए.

—हेल्थ डिपार्टमेंट को क्यों दें? हम कंपनी...
मेल क्यों न करें? मुझे यकायक कुछ सूझा...
क्षणों के लिए कमरे में चुप्पी छा गयी. इसी दौरा...
महत्वाकांक्षाएं जाग कर हमारे सामने मुंह बाये...
गयी थीं.

* *

अगला तमाम दिन बहुत व्यस्तता में कटा...
सावधानी से बोतल को एक जान-पहचान के फो...
के पास ले गये और उससे बोतल के उस हिस्से...
खिचवाया, जहां हमें जानवर के तैरने का अंदेशा...
को बहुत सावधानी से वापस ले जा कर हमने...
कमरे में रखा. कुछ अजीब बात थी कि बोतल...
को ले कर हम तीनों में अप्रगट रूप से अविश्वास...
वातावरण उपस्थित हो चुका था, जिसके तनाव...
का एकजुट रहना और भी आवश्यक हो चला था...
की हालत में हम तमाम दिन फोटोग्राफर की...
इर्द-गिर्द चक्कर काटते रहे. हमारा भविष्य...
अंदर तैरती अज्ञात वस्तु पर निर्भर हो गया था.

शाम को फोटोग्राफर ने हमें उस अज्ञात...
वस्तु के बड़े प्रिंट दे दिये. प्रिंट की तरफ देखते ही...
चिल्लाया—यह मेंढक का बच्चा है! उसने हमारी...
ऐसे देखा जैसे कह रहा हो, मैंने कहा था...
बातचीत के बाद तय यह किया गया कि...
डॉक्टर को दिखाया जाये.

हमारे पड़ोस का एक डॉक्टर हमारा परि...
हमारी बोहीमियन जिंदगी की वजह से वह...
बर्ताव करता था, कि हम इनसान न हो कर...
के वे जीव हैं, जो लुप्त होने से बच गये हैं. जब ह...
उसके पास ले गये तो उसने एक नजर प्रिंट पर डा...
एक हम लोगों पर, और कहा—क्यों, क्या बात है...
ही तो है यह! उसके कहने का अंदाज कुछ ऐसा...
वह हमारे किसी भाई से ही हमारा परिचय करा...

खैर. तो किशन की बात ठीक ही थी. अब...
हमारे सामने यह था कि ब्लैकमेल कैसे किया जाये...
हजार हमारे लिए बहुत बड़ी रकम थी. हम तीनों...
कर जिंदगी में इतने रुपये नहीं देखे थे. फिर...
वालों से पैसे कैसे मांग लिये जायें?

—यह बात तो तय है कि सौदा हो जरूर...

• दुर्गेश भारती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश ने हमारे गिरते हुए विश्वास को संभाला. अब सवाल यह है कि सिलसिला शुरू कैसे किया जाये.

किशन काफी देर से चुप बैठा था. बोला—–मेरे खयाल से राजा जाये. . .सूट-बूट-टाई लगा कर. उसने मेरी आंखों में झांका. मैं अनिश्चित-सी हालत में गुप-चुप बैठा हुआ था. चालू स्टैंडर्ड के हिसाब से मैं खूबसूरत माना जा सकता था. लंबा कद, गठीला जिस्म और गोरा रंग. मैंने नोट किया, किशन मुझे सिर से पैर तक प्रशंसा भरी निगाह से देख रहा है.—–कम-से-कम पचास हजार मांगने वाली सूरत भी तो होनी चाहिए! उसने मुसकरा कर कहा और मैं झेंप गया.

—बहुत पसंद आ रहा है यह तुझे! प्रकाश ने किशन की तर्जे-निगाह की तरफ इशारा किया और दोनों ठहाका मार कर हंस पड़े.

★ ★

इसी बीच घट चुकी कुछ बातें मैं और स्पष्ट कर दूं. पचास हजार रुपये प्राप्त होने का हमें इस कदर गहरा विश्वास हो गया था कि हमने खाली वक्त में कुछ योजनाओं की रूपरेखा बना ली थी. मसलन किशन का खयाल था कि एक प्रकाशन संस्थान खोला जाये, जिसके संपादक का कार्यभार मैं संभालूं, बिक्री का किशन और छपाई का प्रकाश. इसी तरह प्रकाश मार्केट में पगड़ी दे कर एक शानदार दूकान खोलना चाहता था. हमने अपने ऑफिस के लिए कबाड़ी मार्केट में आवश्यक सामान भी देखा था. बस,पैसे हाथ आने भर की देर थी.अपनी महत्वाकांक्षाओं के जिन भूतों को हमने जीवित कर दिया था, अब वही हमारे इर्द-गिर्द खड़े अपने खाली हाथों को नचा-नचा कर हमें पागल किये दे रहे थे. हमारे चेहरों-जिस्मों पर एक रहस्य भरा तनाव छाया हुआ था,जिसकी वजह से हम खुद पड़ोसियों से कुछ अलगाव महसूस करते थे.

★ ★

खैर. अगले दिन हम तीनों डिस्टिलरी के दरवाजे पर पहुंचे. डिस्टिलरी का फैलाव देख कर एक बार हमने एक-दूसरे की तरफ मौन रूप से देखा. मुझे अंदर जा कर जनरल मैनेजर से बातचीत करनी थी, इसलिए मैं अपनी सबसे शानदार पोशाक, सफेद बुश्शर्ट-पैंट में था.

—डर लग रहा है! किशन ने मुसकरा कर इस तरह कहा जैसे मुझे चैलेंज कर रहा हो.

—किस बात का डर? मैंने अतिरिक्त आत्मविश्वास से उसके चैलेंज को उड़ाने का प्रयत्न किया.

—–इसमें डरने की क्या बात है? बात करनी है और पैसे ले लेने हैं! प्रकाश ने बात को और हलका करते हुए कहा. उसे किशन का निराशावादी दृष्टिकोण कभी भी पसंद नहीं था.

किशन हंसा—अच्छा, जा. मैं और प्रकाश यहीं खड़े हैं. फोटोग्राफ ले लिये हैं न?

—हां. मैंने जेब में फोटोग्राफ टटोलते हुए कहा. अच्छा तो मैं जाता हूं, क्षण भर रुक कर अचानक मैंने कहा.

जरूर मैं कोई बड़ा आदमी लग रहा हूंगा, जो किसी दरबान या चपरासी ने मुझे नहीं टोका. ऑफिस में पहुंच कर मैंने रिसेप्शनिस्ट लड़की से कहा कि मैं जनरल मैनेजर से मिलना चाहता हूं.

—उन्होंने आपको मिलने का वक्त दिया है क्या? लड़की ने अविश्वास भरी दृष्टि से देखते हुए जब यह कहा तो मुझे लगा, जैसे मेरा कद छोटा होता जा रहा है.

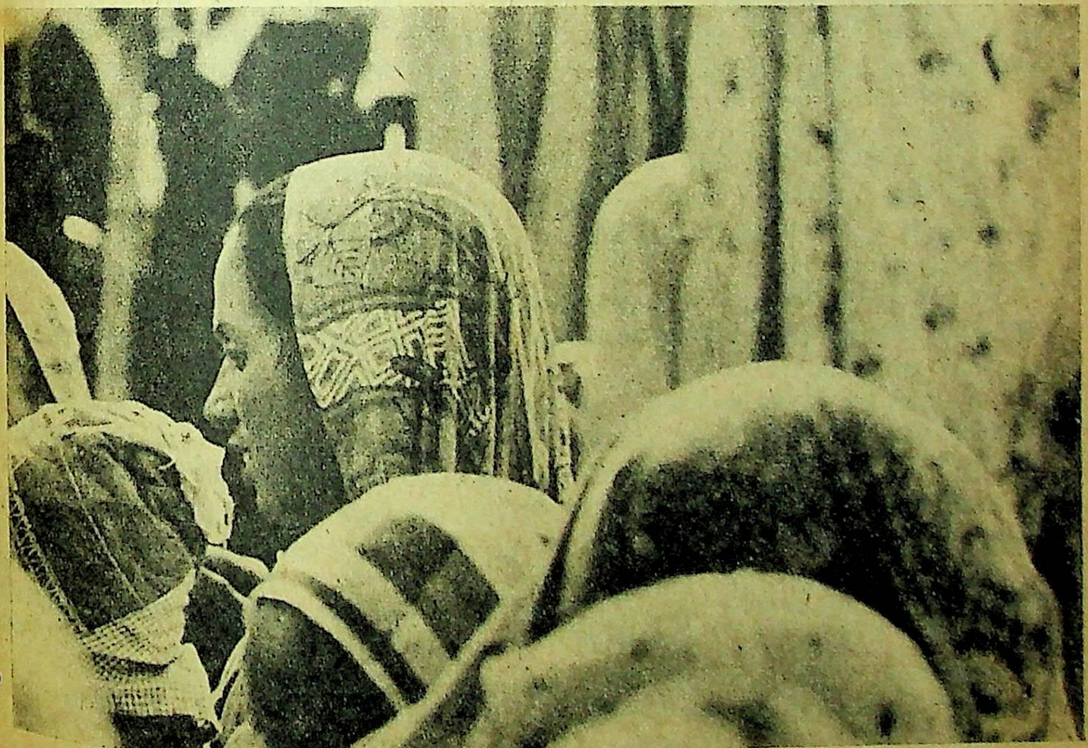

● सुनील भारती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—नहीं. मैंने सूखे होठों पर जीभ फेरते हुए कहा, लेकिन यह उन्हीं का काम है.

लड़की ने जैसे मेरी बात अनसुनी कर दी और फोन उठा कर जनरल मैनेजर से बातचीत की. थोड़ी देर बाद फोन पर हाथ रख कर मुझसे पूछा—कैसा काम है?

—उन्हीं को बताना है. तब तक मैं कुछ आत्मविश्वास बटोर चुका था. वह चुस्ती से अपनी सीट पर से खड़ी हुई और मुझे इशारा करते हुए कहा—आइए.

जिस शानदार ड्राइंगरूम में मुझे बैठाया गया था, उस तरह की जगह जिंदगी में पहली बार मैं देख रहा था. फूलदार गलीचों से ढका फर्श, गुदगुदे सोफे, खिड़कियों-दरवाजों पर रंग-बिरंगे परदे और दीवारों पर टंगी पेंटिंग्स—अपने कल्पनालोक में भी मैंने यह सजावट नहीं देखी थी.

तभी मेरे दायें कोने का एक दरवाजा धीरे से खुला और एक अधेड़ व्यक्ति अंदर आ गया. सेहत से भरा-पूरा कद्दावर जिस्म और मुंह में पाइप. वह अपनी सहज चाल से चलता हुआ मेरे सामने वाले सोफे पर आ कर बैठ गया.

—कहिए, भारी आवाज उसके गले से निकली.

—मुझे जनरल मैनेजर साहब. . .मैंने जल्दी से कहने की कोशिश की ताकि मैं कहीं भूल न जाऊं.

—मैं ही हूं, वह आवाज फिर गूंजी.

—जी. . .जी. . . सहसा मैं रुक गया और मुझे लगा, मैं गिड़गिड़ा रहा हूं. अपनी इस हास्यास्पद स्थिति पर मुझे काफी गुस्सा आया और मैंने क्षोभ से कुछ ऊंची आवाज में कहा—दरअसल बात यह है कि हमने आपकी कंपनी की एक बोतल खरीदी थी, जिसमें मेंढक का बच्चा निकला. कह कर मैंने जनरल मैनेजर की तरफ देखा. वह अपलक आंखों से मुझे देखता हुआ पाइप का धुआं उड़ाये जा रहा था.

—फिर? उसने जरा पाइप हटाया और कहा, आप वह बोतल दे कर दूसरी बोतल ले जाइए.

—सिर्फ बोतल! मैं उत्तेजित हो उठा. नहीं, आप पचास हजार रुपये दीजिए! मैंने झटके से कहा और फिर थक कर यूं ढीला पड़ गया जैसे बहुत मुश्किलों से अपनी मंजिल पर पहुंचा होऊं.

इस बार उसके चेहरे पर मुसकराहट उभरी. उसके चेहरे से साफ झलक रहा था कि वह मेरी वास्तविक स्थिति का अनुमान लगा चुका है.

—ओह, तो आप ब्लैकमेल करने आये हैं! वह फिर मुसकराया. और अगर आपको पचास हजार न दिये जायें तो?

—तो. . . तो आपका बहुत नुकसान होगा! मैंने आवाज में धमकी जैसा असर लाने की कोशिश की.

—पर आपके भी तो बसों के किराये खर्च होंगे, कह कर वह ठठा कर हंसा. उसके तीखे मजाक से मेरा चेहरा उतर गया और मैं झल्लाहट भरी आवाज में बोला—हम वह बोतल हैल्थ डिपार्टमेंट वालों को दे देंगे.

—देखिए मिस्टर, अब उसने संजीदगी से कहा, अगर आपकी बोतल में कोई ऐसी चीज है. . उसकी बात खत्म होते-न-होते मैंने उसके हाथ में वह फोटोग्राफ थमा दि[ya] जो बोतल के अंदर तैरते मेंढक के बच्चे का था. उ[सने] क्षण भर के लिए फोटोग्राफ देखा और आगे कहा—[...] है. . आप वह बोतल मुझे ला दीजिए, मैं आपको उ[सके] बदले किसी महंगी शराब की एक बोतल और एक [...] बीयर की बोतलें दे दूंगा.

मैंने उसकी तरफ असफलता और निराशा से दे[खा]

—ज्यादा-से-ज्यादा मैं दो कैरेट बीयर दे स[कता] हूं, उसने सौदा किया.

—नहीं, आप पचास हजार रुपया दें. मैंने आ[खि]री बार जिद्दी स्वर में कहा.

वह खड़ा हो गया. उसने पाइप का एक लंबा क[श] खींचा और कहा—तो फिर ठीक है. आपको जो करना [है] कीजिए. जब कभी आप मेरे सौदे पर राजी हों, फोन क[र] लीजिएगा. . .कह कर वह शानदार ढंग से टहलता हु[आ] कमरे से निकल गया.

★ ★

कुछ दिनों से हम जिस सपनीली दुनिया में छलां[ग]... अभ्यस्त हो चुके थे, जनरल मैनेजर के निर्णय से हमने [उ]से यकायक लोप होता महसूस किया. अब हमारे सामने अ[स]लियत मुंह फाड़े खड़ी थी. चूंकि हम जेहनीतौर पर [उ]से पूरी तरह अस्वीकार कर चुके थे, इसलिए अब उसमें वापस जाना न सिर्फ हमें अपनी जबरदस्त हार मह[सूस] हुई, बल्कि हमने खुद को इस स्थिति के सिलसिले [में] मानसिक तौर पर अयोग्य पाया. हम प्रतिशोध [की] भावना से कटखने कुत्तों की तरह भूंकने लगे.

—साला ऐसे बात कर रहा था जैसे सरकार [वह] खुद ही चला रहा हो! मैं गुर्राया.

—चलो, हैल्थ डिपार्टमेंट में दो. हरामजादे को म[जा] आ जायेगा! किशन भी तैश में आ गया था.

—देखना, हैल्थ डिपार्टमेंट में हमारे जाने की ख[बर] मिलते ही साला हमारे पीछे दौड़ेगा! प्रकाश ने कहा.

★ ★

गोल-मटोल आकार, गंजा सिर, कंजी आंखें—[वह] हैल्थ ऑफिसर था. उसने हमारी बात ध्यान से सु[नी]... फोटोग्राफ पर नजर दौड़ायी और फिर अपनी म[...] आवाज में बोला—हम ऐक्शन जरूर लेंगे, आप [...] बोतल ला दीजिए.

—आप फोटो की बुनियाद पर काम शुरू कीजि[ए] हम आपको बोतल ला देंगे. तेजी से मैंने उसकी बात [का] जवाब दिया और अपने साथियों पर एक नजर [डाली].

अफसर ने अपनी गोल-गोल, कंजी आंखें मु[झ पर] कुछ क्षण टिका कर कहा—देखिए, जनाब, बिना [बोतल] हाथ में आये हम काम शुरू नहीं कर सकते.

—क्यों? प्रकाश ने पूछा.

—देखिए, इस कंपनी वाले सरकार को हर [साल] लाखों रुपया टैक्स में देते हैं. अगर हम बिना किसी [ठोस] बुनियाद के ऐसी कंपनी के खिलाफ कोई केस खड़ा [करें] तो हमारी नौकरी खतरे में पड़ सकती है.

कम-से-कम मुझे तो उसकी बातों से साफ ल[ग] रहा था कि वह हमें फुसला कर बोतल ले लेना [चाहता]...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरीशंकर कपूर ने अमृतसर और दिल्ली में शिक्षा पायी; दिल्ली, केरल, कलकत्ता और फिर दिल्ली में ही नौकरियां कीं. संप्रति दिल्ली टेलिविजन में हैं. एक कविता-संग्रह प्रकाशित.

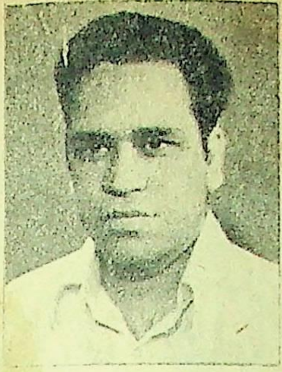

है, इसलिए मैंने जवाब दिया—हम आपको लिख कर देते हैं कि सचमुच बोतल हमारे पास है.

कंजी आंखों वाले ने मुझे घूरा और अपनी महीन आवाज को और भी महीन बना कर बोला—देखिए जनाब, आपने कभी यह सोचा है, आपकी हैसियत कंपनी के मुकाबले में क्या है?

इस बार जवाब किशन की तरफ से आया. उसके चेहरे पर तमतमाहट थी और आवाज में तीखापन—आपको हमारी बेइज्जती करने का कोई हक नहीं है! आप अगर केस नहीं करना चाहते हैं तो मना कर दीजिए. आओ प्रकाश, चलो राजा. . .हम यह खबर अखबारों में छपवायेंगे. . .फिर देखेंगे. . .

—जरूर-जरूर छपवाइए, कंजी आंखों वाले ने आंखें मिचमिचायीं.

—साला, हमसे बोतल ले कर खुद ब्लैकमेल करना चाहता था! वापस जाते हुए मैं गुस्से में बड़बड़ाया.

* *

अंदर-ही-अंदर हम तीनों इस बात से सहमत हो चुके थे कि पचास हजार रुपये अब हमें नहीं मिलेंगे.

हमारे अगले कुछ दिन अखबारों के दफ्तरों में गुजरे. हम जहां भी जाते, हमसे पहले बोतल मांगी जाती. हम उन्हें बोतल देने से इनकार करते तो वे हमें समझाते—देखिए, इतनी बड़ी कंपनी से हम फिजूल में झगड़ा मोल नहीं ले सकते. वे हर साल हमें हजारों रुपयों का एडवरटिजमेंट देते हैं. अगर हम ऐसी कोई रिपोर्ट छाप दें तो आप ही सोचिए, हमारा काम कैसे चलेगा!

हम तीनों को लगा, हम थक गये हैं. अब किसी तरह के सोच-विचार की कोई जरूरत नहीं रह गयी थी. मैं कमनी गया, बोतल दी और चुपचाप एक वॉट ६९ और दो कैरेट बीयर की बोतलें ले आया.

तीन दिन, तीन रात हम शराब के नशे में औंधे पड़े रहे. चौथे दिन से जिंदगी फिर अपने पुराने ढर्रे पर आ गयी थी—किशन अपनी सेल्समैनी में डूब गया था; प्रकाश अपनी घड़ीसाजी के दुकान में—और मैं. . .मुझे लग रहा था, एक बढ़िया कहानी के लिए मुझे सटीक कथ्य मिल गया है. और यह तय है, इस पर मैं कभी-न-कभी कहानी लिखूंगा जरूर. □□□

ए १०१५, राणा प्रताप बाग, दिल्ली—७

जल्द आराम पाने के लिए तेज़ असर और विश्वसनीय एनासिन लीजिए

तेज़ असर—एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है।

विश्वसनीय—एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है।

एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।

तेज़ असर और विश्वसनीय
एनासिन
भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा

A/2/8-74

Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● योग जॉय

अगिहाने ● सुरेंद्र सुकुमार

जो बात मैं कहने जा रहा हूं आप भले ही उसे कहानी समझें पर कहानी नहीं है, एक सत्य घटना है. अब स्वाभाविक है, आप पूछेंगे कि मैं सत्य घटना क्यों सुना रहा हूं?

तो उसके उत्तर में क्या कहूं?

यों समझ लीजिए कि अपने मन का बोझ हलका कर रहा हूं. आप सुन लें तो कृपा होगी और किसीको तो सुना भी नहीं सकता. डर लगता है. मैं ही क्या, उनसे तो सभी डरते हैं: मेरे गांव के ही क्या शहर के भी. प्रभाव भी तो बहुत है उनका. सत्ता में भी उनका प्रभाव है. इसीलिए कल जब शहर के स्थानीय समाचार पत्र में यह घटना प्रकाशित कराने गया तो उसने साफ इनकार कर दिया— कहने लगा— भाई! क्या पेपर बंद करवाओगे?

वैसे वो घटना मेरे गांव के अधिकांश व्यक्तियों ने देखी है पर किसीने किसीसे उसकी चर्चा नहीं की आप भी किसीसे नहीं कहें. कहीं उनके कानों में भनक पड़ गयी तो— बाप, रे बाप— सड़ाक. . . सड़ाक. . . कोड़े पड़ेंगे पीठ पर जैसे दुल्लन की पीठ पर पड़े थे.

आप सोच रहे होंगे, म क्या बके जा रहा हूं? अनेक प्रश्न आपके मस्तिष्क में उभर रहे होंगे.

जैसे. . .

—दुल्लन कौन है? उसकी पीठ पर कोड़े क्यों पड़े? किसने मारे?

—वह कौन है, जिनका भय इतना व्याप्त है?

—वह घटना क्या है, जिसे मैं सुनाना चाहता हूं?

अच्छा तो पहले मैं यह बता दूं कि दुल्लन कौन है, उसकी पीठ पर कोड़े क्यों पड़े? नहीं, यदि पहले यह बतादूं कि वह कौन हैं जिनका भय इतना व्याप्त है तो ठीक रहेगा.

तो सुनिए. वह हैं मेरे गांव के भूतपूर्व जमींदार के वारिस. नाम नहीं लूंगा. वैसे उन्हें सब कुंवर कहते हैं. दो भाई हैं, बड़े को बड़े कुंवर साहब और छोटे को छोटे कुंवर साहब कहते हैं. उनके बारे में कुछ बताऊं उससे पहले आप मेरे गांव की सही-सही स्थिति के बारे में सुनिए.

मेरा गांव शहर से पांच किलोमीटर दूर एक रोड पर स्थित है. गांव की आबादी मुश्किल से एक हजार होगी. गांव के अधिकांश मकान कच्चे हैं बीच में कुंवर साहब की पक्की हवेली गरीबी का उपहास उड़ाती खड़ी है. इस गांव में पहले एक जमींदार थे करीब हजार बीघा खेती के मलिक. अंग्रेजों की कृपा से रायबहादुर का खिताब मिला. सब राजा सहाब कहते थे. ये सब बातें मैं संक्षेप में सुना रहा हूं क्योंकि मुझे पूरी घटना भी तो सुनानी है. संभवतः आपके पास समय कम होगा.

हां, दुर्भाग्य से राजा साहब के कोई संतान नहीं थी तो उन्होंने अपना वारिस अपने दूर के भतीजों को घोषित किया और चल बसे.

भतीजों ने इतनी बड़ी जागीर पहले कभी नहीं देखी थी पर मेरे बिचार से उन्होंने जमींदारी टाइम के फिल्म अवश्य देखे होंगे एवं उसी टाइप के उपन्यास पढ़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● प्रेम जॉय

जागीर मिलने पर कुंवर साहब कहलाने लगे—छोटे कुंवर साहब घर पर ही रहते हैं और बड़े सत्तारूढ़ दल से संबंधित होने के कारण कभी लखनऊ, कभी दिल्ली—मतलब—बाहर ही रहते हैं. कभी-कभी आते हैं.

मैं कह रहा था कि उन्होंने जमींदारी टाइप के पिक्चर देखे होंगे, उपन्यास पढ़े होंगे. यह मैं इसलिए कह रहा था कि उनके कार्य-कलापों से ऐसा प्रतीत होता है. जब कुंवर साहब व उनके घर की कन्याएं कोई भी शाम को घोड़े पर बैठ कर, बंदूक ले कर निकला करते हैं तो उनकी आंखों में वही चमक होती है जैसी कि मैंने पिक्चरों में जम्मींदारों की आंखों में देखी है. उनकी आवाज में वही कड़क है जैसी कि जमींदारी टाइप के पिक्चर या उपन्यास के हीरो की आवाज में होती है. वे स्वयं को बिल्कुल उसी ढंग से निभाने की कोशिश करते हैं. अत्याचार भी वैसा ही करते हैं. उनकी पहुंच बहुत दूर तक है, इसलिए सामान्य व्यक्ति उनसे डरते हैं.

अब मैं आपको दुल्लन वाली बात बताऊं! दुल्लन हमारे गांव का एक मात्र धोबी है. सभी के कपड़े वही धोता है. कुंवर साहब के कपड़े भी सालाना कुछ नाज के ऐवज में धोता है. चार बच्चों का बाप है, एक औरत है, एक बूढ़ा बाप है. है नहीं, था.

जिस दिन घटना घटी, जो मैं आपको सुनाऊंगा, उससे तीन दिन पहले दुल्लन की बकरी कुंवर साहब के खेत में चली गयी. थोड़ा नुकसान भी कर दिया. फिर क्या था? कुंवर साहब ने दुल्लन को बुलवा भेजा. दुल्लन का बाप भी साथ में गया.

दुल्लन के बाप ने लाख कहा—साहब, मारिए नहीं, जुर्माना कर दीजिए. पर उसकी एक न सुनी. उसीके सामने दुल्लन की पीठ पर कोड़े बरसने लगे...सड़ाक... एक, सड़ाक....दो सड़ाक....तीन चार....पांच... और न जाने कितन ?

दुल्लन के बाप से न देखा गया, वो उसी दिन गांव छोड़ गया. आज तक नहीं आया.

किसी ने भी दुल्लन को यह सलाह नहीं दी कि थाने में रिपोर्ट कर दे. क्योंकि सभी जानते हैं कि दरोगाजी और एस. पी. का उनकी हवेली में रोज ही चाय-पानी, खाना-पीना होता है.

मैंने दबी आवाज में उससे कहा था कि कुंवर साहब के कपड़े धोना बंद कर दे, तो उसने कहा—भईया, क्या कह रहे हो? ताल पर कपड़े धोना भी बंद करवा देंगे. मैं यह भूल गया था कि गांव का एक मात्र तालाब भी उन्हींके अधिकार में है. अब आप ही बताइए, है न उनका भय स्वाभाविक?

हां, तो—अब मैं असली घटना पर आऊं. यह घटना दुल्लन वाली घटना के तीन दिन बाद घटी.

घटना से पहले मैं यह बताऊं कि घटना जिसके साथ घटी ? वे कौन थे ? कहां से प्रारंभ करूं ?

पंचायत घर से ? या अगिहाने से ?

अगिहाने से ही सुनाता हूं.

अगिहाने को आपके यहां क्या कहते हैं, नहीं जानता. पर हमारे क्षेत्र में अगिहाना ही कहते हैं. हां कहीं-कहीं अलाव भी कहते हैं. पर इतना बताऊं कि अगिहाना गड्ढा खोद कर बनाया जाता है और उसमें आग जलायी जाती है. सर्दी की रात्रि में उस जलती आग के पास काफी-काफी रात गये तक लोग बैठते हैं और तापते हैं.

जिस दिन दुल्हन वाली घटना घटी उसी दिन रात्रि में हम कई लोग अगिहाने पर बैठ कर ताप रहे थे. शाम का झुटपुटा हो गया था. दुल्लन की घटना को ले कर सभी दुखी बैठे थे. तभी दूर से कुछ व्यक्ति आते दिखाई दिये. नजदीक आने पर देखा, उनमें एक बूढ़ा था, उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ करीब अठराह वर्ष की एक लड़की, एक जवान लड़का, एक जवान औरत और एक करीब बारह वर्ष का लड़का था. कुल मिला कर पांच प्राणी थे. उन लोगों के पास सामान के नाम पर कुछ पोटलियां थीं, बस ! वेशभूषा से वे लोग मुसलमान लग रहे थे.

वे लोग अगिहाने के पास खड़े हो गये.

—मइया! कहीं रात में रुकने को जगह मिल सकती है? बूढ़े ने प्रश्न किया. वे लोग सर्दी से ठिठुर रहे थे.

कुछ उत्तर देने से पहले मैंने उनसे कहा—अगिहाने पर बैठ लो, सर्दी लग रही होगी और वे लोग जैसे इस प्रतीक्षा में ही थे. हम लोगों ने स्थान बनाया और वे बैठ गये.

वार्तालाप के दौरान पता चला वे लोग गरीबी से परेशान हो कर अपना गांव छोड़ कर मजदूरी करने निकले हैं.

जवान लड़का बूढ़े का बड़ा पुत्र, जवान औरत उस लड़के की पत्नी , जवान लड़की बूढ़े की पुत्री और वह छोटा लड़का बूढ़े का छोटा पुत्र था.

—रात को कहीं सर छुपाने की जगह मिल जाती ? सरकार ! बूढ़े की आंखों में प्रश्न चिन्ह था. मुझे उनकी स्थिति देख कर दया आ गयी और मैंने उन्हें अपनी रिस्क पर पंचायत घर के वरामदे में ठहरने को कह दिया.

पंचायत घर में जब उन्हें छोड़ कर चलने को हुआ तो मैंने इनसानियत के नाते पूछा— खाने का इंतजाम है आपके पास?

बूढ़ा तत्काल बोला— है सरकार. सब है. रोटियां पड़ी हैं, खा लेंगे.

मुझे उसकी आवाज कहीं दूर से आती-सी लगी. तमी छोटा लड़का बोल पड़ा— नहीं! अब्बा झूठ बोलते हैं, हमारे पास कोई रोटियां-बोटियां नहीं हैं, हम लोगों ने कल से खाना नहीं खाया है.

—चुप रह हरामजादे, मुझे खा ले, बूढ़े ने अकड़ कर बच्चे को डाटा.

मैंने कहा— बाबा, क्यों डाटते हो ? बच्चा भूखा है तो कहेगा नहीं? चलो बेटे, मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें खाना खिलाऊंगा. यह जानते हुए भी कि पूरा परिवार भूखा है मैंने उस बच्चे से ही कहा.

मैं बच्चे को बुला लाया और खाना खिलाया मन में दुःख भी था कि एक पूरा परिवार भूखा सोयेगा पर क्या करता? मैं तो खुद. . . .?

मुझे पूरी रात छटपटाहट रही, न जाने कब आंख लग गयी. प्रातः देर से उठा. उठते ही पंचायत घर गया. वहां वे नहीं थे. लोगों के द्वारा पता चला कि कुंवर साहब की हवेली में काम पर लग गये हैं.

काम क्या था?

पुरानी हवेली की एक कच्ची दीवार को खसाना और उसकी मिटटी आघा फर्लांग दूर एक गड्ढे में डालना.

शाम को उन्हें पंचायत घर में स्थान नहीं मिला. मैंने उन्हें अपने कमरे के दालान में रुकने को कह दिया, वहीं उन्होंने ईंटों का चूल्हा बना कर रोटी बनाने का कार्य

सुरेंद्र सुकुमार (जन्म : १७ मई, १९५२, कोड़ियागंज, जिला अलीगढ़ में) बी. एस-सी. करने के बाद एल- एल. बी. के छात्र हैं, पिता शासकीय सेवा में हैं, इसलिए इन्हें अनेक तरह के अनुभव पाने का मौका मिलता रहा है.

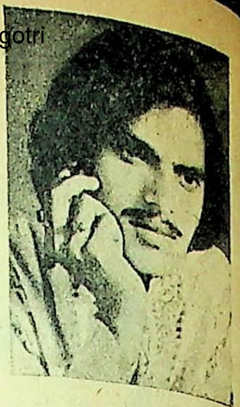

प्रारंभ कर दिया. तभी मेरा वार्तालाप प्रारंभ हो गया. मुझे बूढ़े से ज्ञात हुआ कि कुंवर साहब का कार्य ठेके पर तय हुआ है. उतना सब कार्य पचास रुपये में तय हुआ है. मैं चौंक गया. वह कार्य कम-से-कम दो सौ रुपये का था. इन बेचारों को तो काफी दिन लग जायेंगे.

मुझे न जाने क्यों उस परिवार से सहानुभूति होने लगी.

—दोपहर खाना खाया था ? मैंने प्रश्न किया.

—नहीं सरकार ! हम लोग तीन वर्ष से दिन में एक ही टेम खाते हैं. पहले जरूर कुछ अजीब सी गुड़-गुड़ी लगती थी पेट में. पर अब आदत हो गयी है. . बूढ़े ने कहा. मुझे अपने गले में कुछ फंसा-फंसा लगा, मैं अकारण खकारने लगा.

रात्रि में प्रकाश के लिए मैंने उन लोगों को एक मिट्टी के तेल की ढिबरी दे दी और मैं कमरे में सोने चला गया.

मेरे कमरे की खिड़की उसी दालान में खुलती है जिसमें वे ठहरे थे. काफी रात तक मैं उनके विषय में सोचता रहा. तभी मुझे कुछ कुन-मुनाहट सुनाई पड़ी. मैं अपनी जिज्ञासा न रोक सका. खिड़की खोल कर उसके सहारे खड़ा हो गया. मैंने देखा, बूढ़े की लड़की और छोटा लड़का पास-पास सो रहे थे. बूढ़ा अलग एक कोने में टखनों को पेट में छुपाये पड़ा था. जवान लड़का और उसकी पत्नी एक कोने में कुछ फासले से अलग-अलग लेटे थे, तभी मैंने सुना, छोटा लड़का अपनी बहन से कह रहा था— आपा! थोड़ा चिपट जाओ न, ठंड लग रही है.

लड़की ने उसको चिपटा लिया.

—थोड़ा कसके चिपटो न ! लड़का फिर बोला.

लड़की ने और कसके चिपटा लिया.

—थोड़ा और कसके, बहुत ठंड लग रही है. लड़का फिर घिघियाया.

—अब क्या करूं? जा अगिहाने के पास लेट जा. लड़की ने कहा और जैसे यह प्रस्ताव लड़के को जंचा, वह उठा और अगिहाने के पास जा कर लेट गया, कुछ चीथड़े अपने ऊपर डाल लिये. अगिहाना अब भी सुलग रहा था. मैंने देखा, अगिहाने के पास कुछ कुत्ते लेटे थे. पहले तो वे गुर्राये पर फिर चुप हो गये. संभवतः समझ गये होंगे कि उन्हींकी बिरादरी का है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी मेरी दृष्टि लड़के की बहू पर पड़ी उसकी अंगिया लगभग फटी थी वो प्राय: अर्ध-नग्न-सी पड़ी थी. उसे देख कर मुझे कुछ भी महसूस नहीं हुआ. जबकि छोटे कुंवर साहब की पत्नी का बड़े गले का ब्लाउज देख कर शरीर में एक लकीर-सी खिंच जाती है. . .

बहुत देर हो गयी बकते-बकते संभवत: आप बोर हो गये होंगे. इसलिए घटना पर आता हूं.

हुआ यह कि वे लोग काम करके सो गये. उसी रात कुंवर साहब की घोड़ी खो गयी. दिन भर तलाश किया, नहीं मिली. तब कुंवर साहब ने परिणाम निकाला, हो न हो. . . यह लोग चोर हैं, इन्हीं लोगों ने किसी तरह से घोड़ी गायब करवायी है. फिर तो— कुंवर साहब ने बूढ़े को, उसके लड़के को, बच्चे को यानी कि पूरे परिवार को बेहरमी से पीटा और रात भर अपनी हवेली में कैद रखा.

दूसरे दिन कुंवर साहब ने गांव में पुलिस बुलायी. दरोगाजी पूरे परिवार को थाने, यह कह कर ले गये कि पूछताछ करेंगे.

हवेली से जब वह परिवार निकल कर जा रहा था तो दृश्य देख कर मेरे रोंगटे खड़े हो गये. बूढ़ा और उसका लड़का लंगडा रहे थे. लड़के की बहू और छोटा लड़का रो रहे थे. पर लड़की चुप थी! एक दम चुप! चाल में कुछ लड़खड़ाहट थी, चेहरे पर सूनापन था. पूरे परिवार ने भरे नेत्रों से मुझे देखा पर लड़की ने एक बार भी नहीं.

मैं सब कुछ समझ गया था.

एक हूक-सी मेरे मन में उठी, वहां खड़े रहना मुझे दुष्कर कार्य जान पड़ा और मैं वहां से हट गया.

दूसरे दिन कुंवर साहब की घोड़ी पास के गांव में मिल गयी. किसी तरह से अपने आप ही खुल गयी थी उसी दिन थाने से वह पूरा परिवार लौटा अपनी पोटलियां लेने.

वह दृश्य दिल दहला देने वाला था. गांव के बहुत से लोग एकत्रित थे. बूढ़े का परिवार लड़खड़ाता हुआ फटे हाल आ रहा था. सभी के चेहरे पर आंसुओं की खुश्क लकीरें थीं. पूरे गांव में मुर्दनी छायी हुई थी. किसीका साहस उनसे कुछ भी पूछने का नहीं हुआ. पूरा परिवार थाने में हुई 'पूछ-ताछ' के बाद लौटा था.

वह और नजदीक आये.

मैंने देखा, गौर से देखा, लड़की के गालों पर खरोंच के निशान थे, आखें सूजी हुई थीं. दोनों आखें लाल थीं, एकदम लाल. मुझे लगा, जैसे ये आंखें नहीं, दहकते हुए अगिहाने हैं. आज किसीको भी ठंड नहीं लगेगी, मैं फुसफुसा उठा.

वे लोग नजदीक आये, दालान से अपनी पोटलियां उठायीं और चल दिये, जिधर से आये थे, उधर ही.

—सलाम सरकार! बूढ़े ने चलते समय कहा.

इस बार उसका सरकार कहना चुभ गया.

—सरकार मैं नहीं हूं. सरकार कुंवर साहब हैं, सरकार दरोगा जी हैं. मैं बड़बड़ाया.

चलते-चलते मैंने एक बार फिर उस लड़की की ओर देखा—उसकी आंखें अब भी मुझे अगिहाना लग रहीं थीं. और उसकी गर्माहट से मेरा रोयां-रोयां झुलसा जा रहा था. □□□

गोरहा, एटा (उत्तर प्रदेश)

एक लघुकथा

शंका समाधान

● **शैलेंद्रनाथ**

मैं कुंडली-फुंडली में विश्वास नहीं करता. रविश! डी. आइ. जी. साहब ने कहा. न सिर्फ उनके विचार वरन ड्रेसिंग गाउन से लेकर केवल अंग्रेजी समझने वाला उनका कुत्ता तक—सभी कुछ उनकी आधुनिकता का परिचायक था. वधू-पक्ष के साथ आया युवक बुरी तरह प्रभावित था. लेकिन उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि इतने आधुनिक हो कर भी उन्होंने दहेज जैसी कुरीति को कैसे स्वीकार कर लिया था. दहेज में चालीस हजार नगद कैसे ले लिया था.

मैं कुंडली-फुंडली में विश्वास नहीं करता, रविश! उन्होंने कहा—चौबीस साल की उम्र में लड़का स्टेट बैंक में प्रोबेशनरी अफसर है. इसी से उसका भूत-भविष्य सब पता चल जाता है.

—लगन-मुहूरत का बखेड़ा छोड़िए, समझे न? मैं इन सब में विश्वास नहीं करता. डेट, साहब, आदमी अपनी कनवीनिएंस देख कर रखेगा.

युवक बिलकुल समझ नहीं पा रहा था. . .कि भला कैसे इन्होंने. . .

वर्दीधारी खानसामा ट्राली पर चाय-नाश्ता लाया. युवक चकित था कि आखिर कैसे इन्होंने. . .

—ए रिली! उन्होंने बरामदे पर से गुजरते हुए किशोर को पुकारा—बाहर जा रहे हो? रिमेंबर टू हैव ए हेयर कट. बाल जरूर छंटवा कर आना. और एल्स आइ वोंट एलाउ यू इन. लग्न और मुहूर्त जैसे शब्दों के उच्चारण में उन्हें भले ही कठिनाई होती थी. लेकिन अंग्रेजी का उनका उच्चारण सर्वथा दोष रहित था. युवक अभी तक अचरज में था.

—मेरा पोता है, उन्होंने स्वर में बिना वात्सल्य रस घोले हुए कहा—मैं ये झबरंले बाल रखना पसंद नहीं करता. मुझे इससे नफरत है. नकलचियों की तरह हर वेस्टर्न क्रेज को फौलो करना! आइ हेट इट. अरे अपना दिमाग लगाओ. पश्चिम से वह लो जो वहां बेस्ट है, पूरब से वह लो जो यहां बेस्ट है. टेक दि बेस्ट फ्राम एव्रीव्हेयर. □□□

युवक राहत एवं प्रसन्नता से मुसकराया. गुत्थी सुलझ चुकी थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• अनिलदास

राकेश के पहले/राकेश के साथ
राकेश के बाद
यादों का एक लंबा सिलसिला

चंद सतरें और (२२)

• अनीता औलक

पिछले अंक में आपने पढ़ा है कि देश-विभाजन ने अनीता औलक के परिवार को भी विभाजित कर दिया था. वह जगह-जगह स्थापित हो रहा था और उखड़ भी रहा था. इस बीच राकेशजी का अनीताजी के घर से भी परिचय बढ़ रहा था. राकेशजी के पत्र आने लगे. अनीताजी ने घर में कह दिया कि वह राकेशजी से शादी करना चाहती हैं. घर में हंगामा हो गया. राकेशजी से उनका मिलना-जुलना बंद कर दिया गया. एक दिन उन्होंने चुपके से शादी की और बंबई चले आये. उन्हें फिर दिल्ली वापस जाना पड़ा. अम्मा की मृत्यु के बाद राकेशजी स्वयं को थका हुआ महसूस करने लगे थे. अब आगे पढ़िए...

सब कुछ तेज रफ्तार से नीचे की ओर उतर रहा था. पता नहीं कितने-कितने दिन कितनी-कितनी देर हम दोनों साथ बैठ कर बीते सालों में बनी और टूटी जिंदगी की याद करते. राकेशजी कहते थे कि जिंदगी के कितने थपेड़े उन्होंने अकेले खाये और झेले हैं— आखिर यह सब मेला इंसान किसलिए लगाये रहता है. इस किस्म की बातें राकेशजी, पाल और मैंने बैठ कर पहले भी कितनी बार की थीं. लेकिन इन दिनों तो सचमुच जैसे वह हार ही गये थे.

अंतिम हथौड़ा उन्हें अपने भाई के हाथों खाना पड़ा. राकेशजी चाहते थे कि मां इस चिंता को लिये मरी कि बीरेन अभी तक जिंदगी में जमा नहीं है. इसीसे इस बार राकेश जी ने मां के देहांत पर आये अपने भाई बीरेन से कहा कि वह चाहते हैं कि मां की इच्छा को उसे अब पूरा कर देना चाहिए. राकेशजी चाहते थे कि वह अब हमारे साथ रहे जिससे हम लोगों को भी मां का जाना इतना न महसूस हो, और यदि इससे उसकी जिंदगी भी सुधर सकेगी तो मां की आत्मा को शांति मिलेगी.

लेकिन जैसा कि शुरू से ही था. दोनों भाई कभी एक नजरिये से नहीं देख सके. भाई का कहना था कि जितना भला उन्होंने अपने मित्रों का किया है उतना भला उन्होंने कभी अपने भाई का न चाहा है, न किया है.

राकेशजी ने समझाने की जितनी कोशिश की तो उससे कहीं ज्यादा मैंने उसे मां का स्नेह और ममत्व देने की कोशिश की लेकिन व्यर्थ. उन दिनों श्याम हमारे यहां ठहरे हुए थे. उनसे या फिर ओंप्रकाशजी और राकेशजी की बहन से कुछ भी छिपा हुआ नहीं था, जो उन दिनों उन भाइयों में चल रहा था.

जिस दिन बीरेन को जाना था राकेशजी ने श्याम से अशोका में कमरा बुक करने के लिए कह दिया था जिससे कि वह उस समय घर पर न रहें जब वह जा रहा हो—क्योंकि यह उनको सह्य नहीं होता. मुझे वह पीछे छोड़ गये थे और कह गये थे कि जब वह चला जाये तो मैं उन्हें इतला दे दूं.

इन सब किस्सों के बाद राकेशजी अब अंदर से क्षत-विक्षत हो चुके थे. किसी रिश्ते, किसी दोस्ती या किसी कमिटमेंट में अब उन्हें विश्वास नहीं र गया था और अगर विश्वास न तो उसे फिर से जोड़ने या मजबूत करने की हिम्मत बाकी नहीं रह गयी थी. सारा-सारा दिन या तो गुमसुम बैठे रहते या फिर पुरवा को गोदी में ले कर ढेर-ढेर-सा प्यार देते रहते. सारी-सारी रात मुझे पास बिठाये रहते. कहते—पता नहीं क्यों बिल्कुल अकेला होने से दहशत होने लगी है मुझे—मेरे पास बैठो— मुझे अकेला नहीं छोड़ो.

फिर एफ. एफ. सी. की मीटिंग मद्रास में होनी तय हुई. वह नहीं जाना चाहते थे लेकिन दो मीटिंग वह एक साथ स्लिप नहीं कर सकते थे. इसीसे जाना उन्होंने मंजूर कर लिया था. यद्यपि जाने का बिल्कुल भी मन नहीं था. बोले—बस चौथे दिन लौट आऊंगा. इतने में गुजराल साहब के यहां मीटिंग हुई और तय हुआ कि एशियन थ्येटर कान्फ्रेंस के लिए उन्हें बंबई जाना पड़ेगा. राकेशजी ने बहुत इनकार किया लेकिन श्री गुजराल नहीं माने. सुरेश अवस्थी जानते हैं कि अगर श्री गुजराल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना अनुरोध न करते तो वह बिल्कुल भी नहीं जाते.

घर आ कर बोले— अन्ना, मुझे बंबई भी जाना पड़ेगा. रह लोगी इतने दिन अकेली? यह पहली बार थी जब सचमुच मुझे भी लग रहा था कि पीछे अकेली होऊंगी अम्माजी नहीं थीं. अंदर से भले ही मुझे कैसा भी लग रहा था लेकिन इस आश्वासन से कि शायद घर से निकल कर उनका थोड़ा डाइवर्जन हो जायेगा— मैं बोली— हां राजे, आपको जरूर जाना चाहिए— लेकिन अगर फोन कर सकें तो अच्छा लगेगा.

मैंने उन्हें जितना भी हौसला दिलाने की कोशिश की लेकिन वह सच ही मन से नहीं गये. चलने से पहले बोले— अब कभी कहीं नहीं जाऊंगा अन्ना, मैं बहुत थक गया हूं.

चलने से पहले मैंने उनसे वादा लिया कि वह भाई-भाभी से जरूर मिलने जायेंगे. . .कभी अपनों से भी रुसवा हुआ जाता है! राकेशजी ने मुझसे वादा किया था.

बंबई से उन्होंने पहले अपने होटल से फोन किया— पुरवा से गदगद हो कर बात की— मैं जल्दी आ रहा हूं पुरु. फिर यही बात गिरधारीजी के घर की और यही बात कमलेश्वर के पास से की. उनके पास एक ही बात कहने को रह गयी थी 'मैं जल्दी घर आ रहा हूं.'

उस बार बंबई में वह तकरीबन प्रत्येक मित्र से मिले और बहुत अच्छी तरह से मिले. लौट कर आयें तो बोले — अन्ना, अब मैं कहीं नहीं जाना चाहता. क्योंकि कहीं जाता हूं तो अब मैं असुरक्षित महसूस करता हूं – मुझे लगता है कि मेरी अन्ना और मेरे बच्चे मुझसे छिन जाते हैं.

कितनी बार कहने को मन होता है कि क्यों इतनी बहकी-बहकी बातें करने लगे हो लेकिन इतनी नाजुक स्थिति हुआ करती कि कुछ कहे नहीं बनता था, सिर्फ साथ बैठ कर रो लेते थे.

लौट कर राकेशजी ने बताया था कि दो दिसंबर को कमलेश्वर दिल्ली आयेगा— और रात को खाना घर पर ही खायेगा. पिछली बार क्योंकि कमलेश्वरजी को चोप्स बहुत पसंद आयी थी इसलिए वही बनायी गयी. शाम को राकेश जी को थोड़ी देर के लिए प्रेस क्लब जाना था, इसलिए मुझसे कह गये कि जैसे ही कमलेश्वर आये मुझे फोन कर देना, लेकिन जब मेरा फोन रात ९ बजे तक नहीं आया तो उन्होंने फोन किया — कमलेश्वर तो नहीं आया?

—नहीं, मने कहा.

—फिर मैं यहीं से खाना खा कर जाऊंगा. किसीने उस दिन खाना नहीं खाया. अगले दिन राकेशजी देर तक सोते रहे फिर दिन में कुछ देर यों ही अपनी स्टडी में बंद रहे.

राकेशजी, स्मृतियां और मित्र—श्री जवाहर चौधरी और कमलेश्वर

शाम का सुरेंद्र तिवारी और ओंप्रकाशजी ने क्लब में टेबल्स खेलने का प्रोग्राम बनाया हुआ था जो कि किसी-न-किसी वजह से कैंसिल हो गया. राकेशजी उन दिनों अजीब स्थिति में जीते थे.

जरा-सा प्रोग्राम इधर से उधर हो जाता था तो बच्चों की तरह मुंह लटका लेते थे और उदास हो जाते थे.

उस मूड के आने से पहले ही मैंने कहा—चलो एशिया –७२ चलते हैं. राकेशजी तुरंत मान गये—लेकिन जा नहीं सके.

चार दिसंबर की सुबह घर खचाखच भरा हुआ था — उसके लिए कि जिसे अब किसी की जरूरत नहीं थी– वह तन से अवश्य कुछ हद तक वहां था लेकिन मन और आत्मा से वह बहुत दूर उड़ान भर चुका था— यह पहली और अंतिम बार थी, जब उसे अपने आस-पास किसी की जरूरत नहीं थी– वह अकेला रहना चाहता था– लेकिन जिंदगी कितनी क्रूर है. जीते जी कुछ और, चले जाने के बाद कुछ और. . .

राकेशजी चले गये थे — इसका दुःख इसलिए इतना नहीं था कि मुझे और बच्चों को अकेला छोड़ गये – बल्कि इसलिए कि उन्हें जीने का शौक था – उन्हें जिंदगी से बहुत मोह था. वही एक व्यक्ति था, जिसे जीना आता था. जिसने लोगों को जीना, हंसाना, खेलना सिखाया था.

जिंदगी में शुरू से ही उन्हें संघर्ष और चुनौतियों का सामना करना पड़ा था इसलिए उनसे घबरा कर जीवन-अंत समस्याओं का समाधान है, यह उन्होंने कभी नहीं माना था. इसीसे मुझे इस बात की राहत जरूर है कि उन्हें नहीं पता चला जब जीवन-अन्त हुआ, क्योंकि वह उसे न सह पाते.

अगले अंक में

यारों का यार चला गया सभी को अविश्वसनीय और स्तब्ध अवस्था में छोड़ कर. . .

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समांतर कहानियों पर एक समांतर परिचर्चा

● सुभाष

२३ फरवरी, '७५ को 'संवेदना' ने 'दि इंडियन आर्ट स्टूडियो,' देहरादून, में 'समांतर' कहानियों पर परिचर्चा का आयोजन किया. 'संवेदना' देहरादून की एकमात्र ऐसी अनौपचारिक साहित्यिक संस्था है, जिससे यहां का हर सृजनशील रचनाकार जुड़ा हुआ है. परिचर्चा की अध्यक्षता शिवानंद नौटियाल जी ने की तथा संयोजन सुभाष पंत ने किया. परिचर्चा में इन कवि-लेखकों ने भाग लिया: सर्वश्री श्याम प्रकाश, गुरुदीप खुराना, सुरेश उनियाल, आनंद दीवान, जितेंद्र शर्मा, इंद्रकुमार कक्कड़, मदन शर्मा, देशबंधु, नवीनानंद नौटियाल, धीरेंद्र अस्थाना एवम् श्रीमती कृष्णा खुराना. इनके अतिरिक्त काफी लोग प्रेक्षक के रूप में भी उपस्थित हुए.

परिचर्चा : एक संक्षिप्त रपट

सुभाष पंत—हमारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश बहुत तीव्रता से विसंगतियों का शिकार होता जा रहा है. हम दोगले अर्थतंत्र में छटपटा रहे हैं, तथा चारों ओर से साजिश और भ्रष्टाचार के शिकार हैं. ऐसी स्थिति में 'रूपवादी' लेखन को त्याग कर लेखक सामान्य जन का पक्षधर हुआ है और उसने 'समांतर' लेखन की शुरुआत की है. 'समांतर' लेखक क्या ऐसी विसंगतियों में अपने पूरे दायित्व का निर्वाह कर रहा है? अक्तूबर से दिसंबर '७४ के **'सारिका'** समांतर विशेषांकों की कहानियों को रेखांकित करते हुए अपने विचार स्पष्ट करें.

श्याम प्रकाश—आज हर तरफ से आदमी पर आर्थिक और राजनीतिक दबाव पड़ रहे हैं, जिनकी वजह से आदमी अपने को बेहद भिंचा हुआ-सा महसूस कर रहा है. सामान्य आदमी के साथ जो कुछ घटित हो रहा है, उसकी सही तस्वीर ही 'समांतर' कहानी है. यह समय की मांग के अनुरूप एक सही शुरुआत है. इन कहानियों में पुरानी कहानी से अलगाव साफ झलकता है. आज की स्थिति में 'रूपवादी' लेखन कतई स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह कहीं समय को अपने में समेटता नहीं है. 'समांतर' कहानियों में भाषा-शिल्प को 'शो' करने वाली कोई बात नहीं है. बात इतनी स्पष्ट, सीधी और तेजी से कही गयी है कि वह सीधे असर करती है. आज आदमी की स्थिति बिल्कुल ऐसी है, जैसी **'विस्फोट'**, **'आतंक भरा सुख'**, **'तपती हुई जमीन'**, **'शहादतनामा'**, **'असंबोधित देवदास'** आदि कहानियों में दिखायी गयी है.

देशबंधु—आज आम आदमी के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यक्तित्व को पूर्णतः खोखला कर देने का षडयंत्र सामने आया है. इसके पीछे है आज की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था. यह मुमकिन नहीं था कि आम आदमी के निरंतर पिसते हुए अस्तित्व, और उसे अभाव में डाल कर उसकी चेतना की हत्या के सुनियोजित षडयंत्र को देख कर आज का लेखन चुप्पी साध लेता. यह एक चीख के रूप में 'समांतर' नाम से प्रकट हुआ है, जो आम आदमी की दारुण स्थिति से सीधे संबद्ध है. 'समांतर' लेखन को एक जरूरत के रूप में लाने का श्रेय **'सारिका'** तथा उसके सहयोगी लेखकों को जाता है. 'समांतर' विशेषांकों की अधिकतर कहानियां पहली बार ऐसे निर्मम मूड में सामने आयी हैं, जो विचार-परिवर्तन की प्रक्रिया के लिए जरूरी है जैसे **'आदमी'**, **'विस्फोट'**, **'तमाशा'**, **'आंदोलन'** आदि. 'रूपवादी' लेखन ऐसे में वक्त के विरुद्ध एक घटिया साजिश ही हो सकता है.

कृष्णा खुराना—मैं श्या[म] और बंधु की बात से एग्री कर[ती] ... पिछली कहानियां किसी खा[स] विशेष विषय की विशेष सम[स्या] को ले कर चली थीं, जिनका ... सौंदर्य से या आपसी संबंधों ... सेक्स से था. आज स्थिति ... रूप से बदली हुई है. उसका ... सामाजिक, आर्थिक और राज[नीतिक] दबाव है, और यह भी ... गया है कि हम इनसे उब[र नहीं] सकते. मुझे ऐसा लगता ... जो परिवर्तन हमें लाना है, ... लिए ऐसी कहानियां लिखा ... बहुत जरूरी है. मैं 'समांतर' ... का स्वागत करती हूं. ए[क बात] महसूस होती है मुझे इन क[हानियों] में कि ये सिर्फ दशा का ... करती हैं, 'सफर' कर रहे ... की तकलीफों को सही ढंग ... रही हैं, लेकिन इससे आगे हम ... करेंगे, क्या सोल्यूशन होना चा[हिए] ऐसी बातें भी आनी चाहिए.

आनंद दीवान—मुझे ... इन कहानियों में नारेबाज[ी] ... ज्यादा है.

कृष्णा खुराना—मैं इससे ... मत नहीं हो सकती. मुझे ... कहानियों में ऐसा लगा कि ... गहराई से महसूस करके ... गया है. बल्कि मैं तो यह ... कि ये जीवन के ऐसे कटु ... हैं जिन्हें कहने का इससे ... लेखक साहस ही नहीं जुटा ...

सुरेश उनियाल—आम आ[दमी] पीड़ित है और इसके ... कई शक्तियां हैं जो उसे ... कर रही हैं, जैसे ... पूंजीवाद, और नौकरशाही ... तीनों का एक तालमेल ह[मारे] में बना हुआ है. इनके स्वार्थ ... में इस तरह जुड़े हैं कि इन्हों[ने] ... आदमी के खिलाफ एक ... बना लिया है. आम आ[दमी की] पीड़ा का समांतर कहानी ... हुआ है. किंतु जब एक ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी अपने त्रास के चित्रण इन कहानियों में देखता है, 'कैथारसिस' हो जाता है. तरह त्रास की वैल्यू कम हो है. इस तरह से जिस लड़ाई ए आदमी को तैयार करना ससे ये कहानियां उसे दूर ती हैं. 'समांतर' कहानियां आम आदमी की ही बात हैं तो इन्हें अलग नाम देने या जरूरत है?

कृष्णा खुराना—आप नाम कर क्यों बैठ जाना चाहते हैं? नाम कृष्णा न हो कर रमा भी कता था. इसका विश्लेषण जरूरी नहीं कि कृष्णा में फलां-फलां गलतियां हैं. बस इतनी ही है कि उन कहानियों की पहचान के लिए 'समांतर' दिया गया है, जो दोगले अर्थ- और पूंजीवाद से दबे आदमी कहानियां हैं.

सुभाष पंत—उनियाल जी की से सहमत नहीं हुआ जा सकता. 'समांतर' कहानियां पढ़ने के बाद मेरी आंख से दो मन आंसू निकले कि मेरा 'कैथारसिस' जाये. मुझे तो इन कहानियां ने दा ही कचोटा है.

सुरेश उनियाल—मैं नहीं ता सभी कहानियां. कुछ बहुत त कहानियां आयी हैं इनमें, **'वाङ्‌ चू'**, **'परायी प्यास का सफर'**, **'शहादतनामा'** आदि.

जितेंद्र शर्मा—इन कहानियों है तो बिल्कुल साफ है कि आम आदमी की छटपटाहट को बहुत रूप से इनमें उतारा गया है. आदमी शुरू से ही गलत रहा कभी उसने एक बोतल शराब लिए गलत आदमी को वोट दिया, कभी थोड़ी-सी सुविधा के लिए. कता एक ऐसा स्रोत है जो सदा से नीचे को बहता है. जब ऊपर आदमी भ्रष्ट हो गये तो नीचे के मी ने यह महसूस करते हुए कि यह गलत रास्ता है, उसी का अनुसरण किया. ये कहानियां इन सब चीजों को खोलती हैं. ये कहानियां यथास्थिति का वर्णन ज्यादा हैं. मेरा व्यक्तिगत विचार यह है कि इन कहानियों को अधिक जीवंत और बोल्ड होना चाहिए ताकि क्रांति की भूमिका बनने में ये कारगर सिद्ध हो सकें.

आनंद दीवान—'समांतर' लेखक ने पिछली जड़ताओं और संकीर्णताओं से छुटकारा पाने का भरसक प्रयत्न किया है. शुरुआत का विषय बहुत ही उपयुक्त और उपयोगी है. पर कहीं ऐसा न हो कि एक बहुत बड़ी जमात बतौर फैशन इसे ओढ़ कर मुखौटों की तरह इस्तेमाल करे. यह लेखन संघर्षरत दुखी प्राणी, उसके आक्रोश और छटपटाहट तथा भ्रष्टाचार व अन्याय पर तीखे प्रहार की सही तस्वीर उजागर करता है, जो कि समय की सही मांग है. **'विस्फोट'**, **'परायी प्यास का सफर'**, **'अंधेरे का सैलाब'**, **'निर्वासित'**, **'तपती हुई जमीन'**, **'शहादतनामा'**, **'आतंक भरा सुख'**, **'रिसता हुआ बिंदु'**, **'मजमेबाज'** आदि कुछ कहानियां ह जो 'समांतर' के प्रति बेहद आस्था जगाती हैं.

धीरेंद्र अस्थाना—'सामान्य-जन और सहयात्री लेखन' के अंतर्गत आने वाली मामूली आदमी की कहानियों को पहचान के लिए 'समांतर' नाम मिलना उपयुक्त ही है. आदमी के दुख-दर्द के साथ-साथ चलने वाली इन कहानियों ने रूपवादी लेखन को एकदम नकारा और अपने समय के सत्य से जुड़ीं. आम आदमी ने आज नारे का रूप धारण कर लिया है. डर बराबर है कि कहीं 'समांतर' कहानी भी इसे नारे के रूप में प्रयुक्त न करने लगे. फिलहाल इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इसके अंतर्गत आने वाली कहानी ने कहानी को एकदम बदल दिया है. ये सही मायने में दोगली अर्थ-व्यवस्था और पूंजीवादी दलाल सरकार के दमन के बीच टूट रहे आदमी की संघर्षरत जिंदगी के कड़वे पक्ष को उद्घाटित करती हैं. कहीं-कहीं काफी तीखी और मारक चोट भी हो जाती है—**'विस्फोट'**, **'परायी प्यास का सफर'**, **'तपती हुई जमीन'**, **'सिपाही की कैद'** और **'आदमी'** आदि कहानियां व्यवस्था के [illegible] हो रहे आदमी की लड़ाई में सीधे तौर से शामिल हैं और बेहद तल्खी के साथ व्यवस्था पर चोट करती हैं.

मदन शर्मा—तनिक भी संदेह नहीं कि 'समांतर' कहानी ने एक अच्छे उद्देश्य को ले कर हिंदी कहानी को एक नया यथार्थवादी मोड़ देने का प्रयास किया है. आम आदमी की समस्याओं, परेशानियों, अंतर्द्वंद्वों तथा उच्च वर्ग द्वारा फैलायी अव्यव्यवस्था के कारणों तथा परिणामों पर ये कहानियां रोशनी फेंकती हैं.

पर इस बात की पूरी संभावना है कि 'नयी कहानी' की तरह समांतर कहानी भी फैशन का जामा बनेगी तथा बहुत-से लेखक इस 'बैनर' के नीचे निश्चित-सी सीमाओं में बंध कर नपी-तुली बात लिखने लग जायेंगे. फिर भी यह कहना बहुत आवश्यक होगा कि गत कुछ वर्षों से हिंदी कहानियों में जो विकृति आयी थी, वह 'समांतर' कहानी के माध्यम से कम हुई है.

इंद्रकुमार कक्कड़—'फैंटेसी' और 'रिपोर्ताज' का रूप धारण किये हुए ये कहानियां बस कहानियां मात्र बन कर आयी हैं. **'सारिका'** के नवंबर अंक में यद्यपि कामतानाथ ने काफी दलीलें दी हैं, परंतु मेरा एक प्रश्न है कि मंटो की कौन-सी कहानी अपने समय की 'समांतर' कहानी नहीं थी? 'समांतर' विशेषांकों की कुछ कहानियां अपना प्रभाव छोड़ती हैं पर इसलिए नहीं कि वे समांतर-असमांतर या नयी कहानी अथवा अकहानी हैं, बल्कि इसलिए कि वे आज के आदमी की कहानी हैं. कहानियां तभी सफल हो सकती हैं, जब लेखक व पाठक के हृदय का 'टैलिप्रिंटर' कार्य सुचारु रूप से चल सके.

गुरुदीप खुराना—'समांतर' लेखन-मंच के रूप में सामने आया है. संपादकीय और लेखों को पढ़ कर ऐसा मालूम होता है कि आज की सारी विसंगतियां केवल दोगले अर्थतंत्र के कारण उत्पन्न हुई हैं. यह एक 'फैक्टर' तो जरूर है, पर यही एक कारण नहीं है, और भी कारण हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर दिन बचत का दिन हो सकता है अगर.........

अगर आप बचाने का संकल्प करें ! वेतन का दिन भी एक ऐसा ही दिन है । लेकिन जब तक आप बचाने का संकल्प नहीं करेंगे आपके वेतन का दिन भी खर्च का ही दिन रहेगा ।

जब आप बचाने का संकल्प करें (आज ही क्यों नहीं ?) तो डाकघर आवर्ती जमा में धन लगाने पर विचार करें । इस खाते में जमा किये गए 10 रु० 5 वर्ष में 750 रु० हो जायेंगे । यह 9.25% चक्रवृद्धि ब्याज के बराबर होता है ।

और यदि आप दो वर्ष तक नियमित रूप से 10 रु० महीना बचाते हैं तो आपका 750 रु० का बीमा हो जाता है । खातेदार की असमय मृत्यु पर उसके वारिस को बिना कुछ अतिरिक्त जमा कराये 750 रु० का पूरा भुगतान दिया जाता है ।

ब्योरे के लिए सम्पर्क कीजिए :

समीपस्थ डाकघर

अथवा

राष्ट्रीय बचत संगठन
पोस्ट बाक्स नम्बर 96
नागपुर

davp 74/309

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...से हमारी पुश्तैनी गुलामी आदि. ये कारण इन कहानियों में 'रिफ्लैक्ट' नहीं होते. वैसे 'समांतर' कहानी ने 'नयी कहानी' को 'डाइनामाइज' जरूर किया है. पर कामतानाथ, इब्राहीम शरीफ आदि के लेख पढ़ कर ऐसा लगता है कि बाकायदा एक 'केस' तैयार किया गया है, यह 'प्रूव' करने के लिए कि 'समांतर' एक 'एचीवमेंट' है जो पहले नहीं था. यह एक शाब्दिक जालसाजी है.

नवीनानंद नौटियाल——कुछ साल पहले एक फिल्म आयी थी, सत्यजित की 'प्रतिद्वंद्वी.' उस फिल्म में प्रतिद्वंद्वी एक अनिश्चित-सा आदमी था. यानी उसका कोई अस्तित्व नहीं था, निराकार ब्रह्म की तरह. अब स्थिति एकदम साफ है. दुश्मन हमारे सामने है, पूरी व्यवस्था के रूप में. उसके बारे में जो कहानियां लिखी जा रही हैं, वे इसी परिवर्तन की द्योतक हैं. आज रोटी अपने अहम रूप में सामने आयी है, उसका हल सीधे व्यवस्था के हाथ में है. धूमिल की एक कविता है :

'एक आदमी/ रोटी बेलता है,/ एक आदमी रोटी खाता है./ एक तीसरा आदमी भी है./ जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है/ वह सिर्फ रोटी से खेलता है./ मैं पूछता हूं—— यह तीसरा आदमी कौन है/ मेरे देश की संसद मौन है.'

यह सीधी स्थिति है. जो इस पर नहीं लिखेगा, वह ईमानदार लेखक नहीं है. अभी हमने चीजों को सहज लेना शुरू नहीं किया है. बिहार का आंदोलन हमने जे.पी. का आंदोलन बना दिया, और उसकी पूजा करने लगे. 'समांतर' को भी हमने कमलेश्वर का आंदोलन बना दिया है, जबकि यह समय का आंदोलन है.

सुभाष पंत——अब अगले प्रश्न पर आया जाये. प्रश्न है—— समांतर कहानियों ने कहानियों को व्यापक कैनवस, नये आयाम और भारतीय परिवेश दिया है, या 'समांतर' लेखकों ने कहानी को पीछे लौटाया है?

श्याम प्रकाश——जिन कहानियों का यहां जिक्र आया है, वे समय की जरूरत के तहत स्वीकार की गयी हैं. सही साहित्य हमेशा समय के साथ चलता है. दुर्भाग्य से पिछले दौर की कहानियों में यह बात नहीं थी. आज की कहानी ने नये नये विषयों को ग्रहण किया है, और बहुत आयाम खोले हैं. इनका परिवेश भारतीय है. रही कहानी को पीछे लौटाने की बात, उससे मैं सहमत नहीं हो सकता.

कृष्णा खुराना——कहानियों का परिवेश पूर्णतः भारतीय है, जो एक सही बात है. हां, व्यापक आयाम वाली बात को सोचना होगा. 'समांतर' की अधिकतर कहानियां 'लोअर मिडल क्लास' की कहानियां हैं, क्योंकि वही सबसे ज्यादा दबा हुआ है. समाज की और भी बहुत-सी समस्याएं हैं, जिन्हें 'समांतर' अभी छू नहीं रहा है.

सुरेश उनियाल——इस तरह के नारे 'नयी कहानी' के साथ भी लगे थे. लगाते रहिए, मुझे कोई ऐतराज नहीं.

जितेंद्र शर्मा—— नये आयाम और भारतीय परिवेश तो इन कहानियों में है ही. पीछे लौटने की बात से मैं सहमत नहीं, बल्कि इन्हें अभी और बोल्ड और आगे की कहानी बनना है.

नवीनानंद नौटियाल——खुशी की बात है, काफ्का-काम्‌ को इन्होंने उतार फेंका है और कहानियों को अपनी जमीन दी है.

सुभाष पंत–अब तीसरे और अंतिम प्रश्न पर आया जाये. प्रश्न है—— समांतर कहानियों की यात्रा साहित्य से जीवन की ओर है या जीवन से साहित्य की ओर?

श्याम प्रकाश–समांतर कहानियों की यात्रा जीवन से साहित्य की ओर है. जो कुछ जीवन में घटित हो रहा है, वही साहित्य में आ रहा है.

देशबंधु——यह एक ऐसा प्रश्न है जैसे यह पूछा जाये कि एक क्लर्क की यात्रा घर से दफ्तर की ओर है, या दफ्तर से घर की ओर.

धीरेंद्र अस्थाना—— निस्संदेह आज कहानी की यात्रा जीवन से साहित्य की ओर है.

गुरुदीप खुराना——ये कहानियां निस्संदेह जीवन से साहित्य की ओर हैं. पर इन्हें साहित्य ही की चीज बन कर नहीं रह जाना चाहिए.

शिवानंद नौटियाल–समांतर पर यह परिचर्चा बहुत सफल रही. सभी ने उन्मुक्त रूप से अपने विचार व्यक्त किये. किंतु समांतर पर एक परिचर्चा पर्याप्त नहीं है, क्योंकि विचारों का कोई अंत नहीं है. मैं संयोजक महोदय से निवेदन करूंगा कि वे इस पर और परिचर्चाओं का आयोजन करें.

सुभाष पंत–हम अध्यक्षजी की बात से पूर्णतः सहमत हैं. हम समय-समय पर बैठते रहेंगे और अपने विचार-विमर्श को आगे बढ़ायेंगे. □□□

● व्यंग्य-विचार : कालिदास सेन

लेखन-फोबिया

लक्षण : नयी पौद के दिनों से ले कर गर्दिश के आखिरी दिन तक दिल और दिमाग के दौरे पड़ते हैं. लिखते-लिखते एकाएक रोगी खांसने लगता है. मर्ज बढ़ता जाता है और साथ-साथ कर्ज भी.

चिकित्सा : आम आदमी से परहेज करे और क्रांति के स्वप्न न देखे. जो कुछ लिखना हो चम्मच से लिखे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

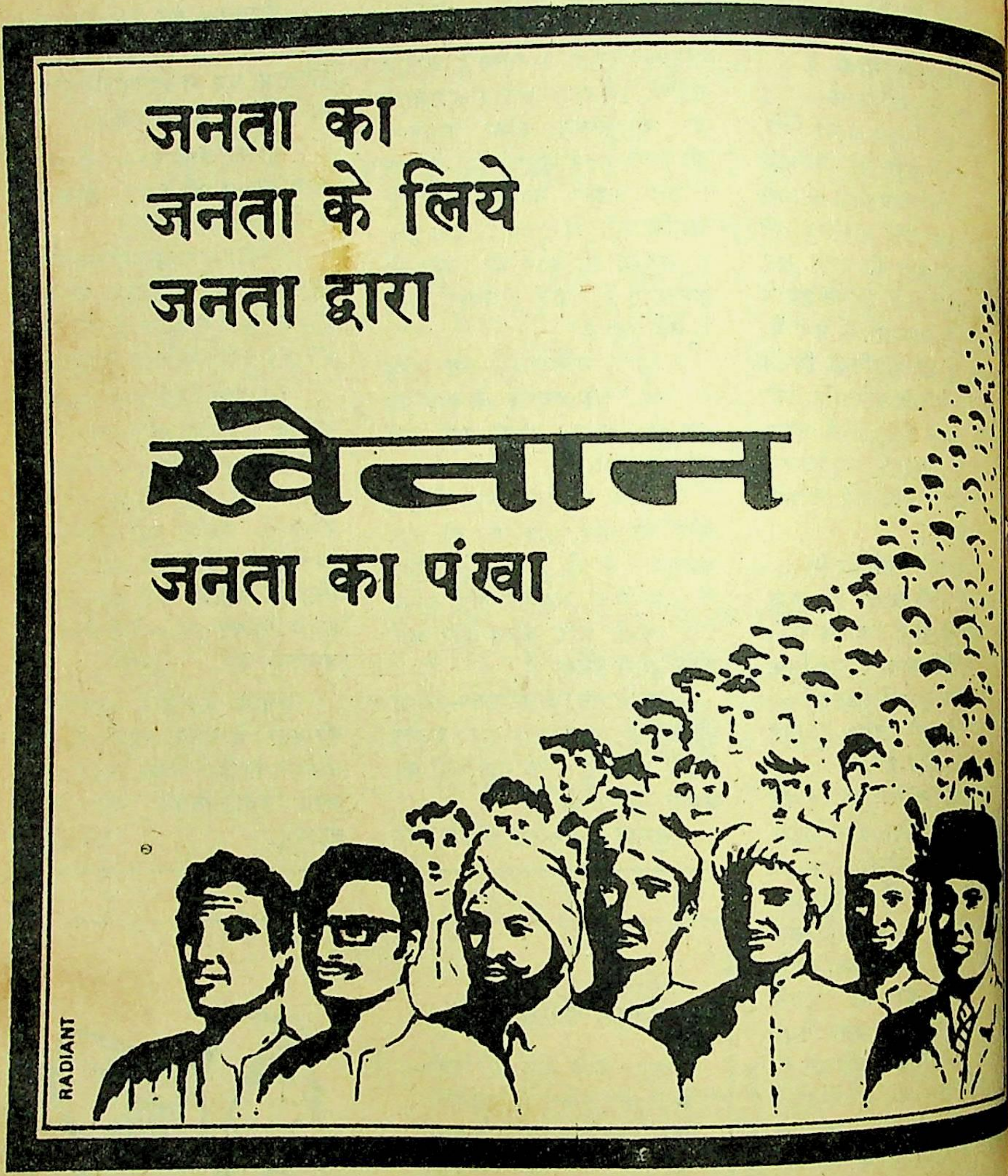

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेज़र से त्वचा कटाकर और खूँटे-से
बाल उगाकर झेंपते रहिए या...

एन् फ्रेंच
हेयर रिमूवर से
रेशम-सी कोमल त्वचा पाइए

शेविंग ? नहीं, यह तो पुरुषों के लिए है। फिर त्वचा कटने और बाल कड़े उगने का भी डर। तो ? इसके लिए एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर लगाइए। कैसे ? बिल्कुल आसान है : अनचाहे बालों पर क्रीम लगाइए; थोड़ी देर ठहरिए, फिर गीली रूई से पोंछ डालिए। यह त्वचा के नीचे जाकर कार्य करता है। देखा बाल ग़ायब। आपकी त्वचा हफ़्तों मुलायम। तो छोड़िए रेज़र, एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर अपनाइए।

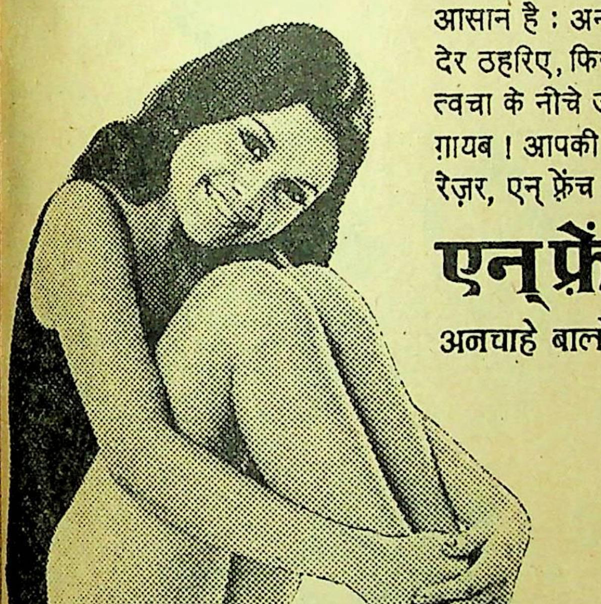

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर
अनचाहे बालों को हटाने का मनचाहा क्रीम

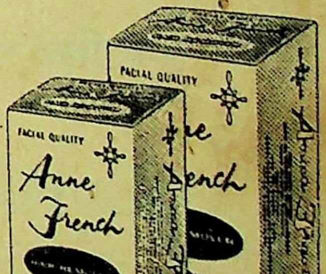

Licensed user of TM : Geoffrey Manners & Co. Ltd.
126HR-203 Hin

२ साइज में सुलभ : ४० ग्रा. और ७५ ग्रा.

बेनेट कोलमेन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई-१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-१; कलकत्ता आफिस : १३ १ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट; लंदन आफिस : ... मिडिलसेक्स, यू. के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar